सर्वमान्य, सर्वप्रिय, सर्वोपयोगी, वैराग्य धर्मग्रन्थ

श्री वैराग्य शतक

अर्थ, भावार्थ, दृष्टान्त सहित

प्रथम भाग—(पूर्वार्ध)

लेखक—

कविराज पूज्य श्री उमेदचन्द जी महाराज के शिष्य

मुनि श्री विनयचन्द जी महाराज.

अनुवादक तथा प्रकाशक—

वाडीलाल एस. शाह.

हे० नोघरा, किनारी बाजार, देहली

मूल्य मात्र

गयादत्त शर्मा के प्रबन्ध से गयादत्त प्रेस बडा दरीबा देहली में मुद्रित।

श्रीमान् सेठ केसरीमलजी साहब गुगलिया

का

आदर्श चरित्र.

श्री भर्तृहरि जी नीति शतक में कहते हैं —

वाञ्छा सज्जन संगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम ॥
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खलेष्वेते
येषु वसंति निर्मल गुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥

एक हिन्दी कवि इस श्लोक का भाषान्तर इस प्रकार करते हैं —

जाने पर के गुण सदा महत पुरुष का संग।
विद्या और निज नारि तिन में मन को रंग ॥
तिन में मन को रंग भक्ति प्रभु की दृढ़ राखै।
गुरु आज्ञा में नम्र रहे खल संग न भाखै ॥
ब्रह्म ज्ञान चित्त माहि दमन इन्द्रिय सुख मानै।
लोक वाद की शंक पुरुष ते नृप सम जानै ॥

संसार में जन्म उसी का सार्थक है जो "गुणि गण गणना" के समय स्मरण किया जाय। असंख्य प्राणी जन्मते हैं और फिर काल के गाल में समा जाते हैं। कुछ दिन बाद संसारी जन उनको इस प्रकार भूल जाते हैं मानो वे कभी पृथ्वी पर पैदा ही नहीं हुए थे। यदि किसी की छाप संसार के वक्षस्थल पर चिरस्थाई रहती है तो केवल उन्हीं सुकृत जनों की जिन्होंने परोपकार पूर्ण होकर आदर्श चरित्र का उदाहरण जनता के सामने रखा है। ऐसे लोगों के लिए

अब तक आप के चार सन्तानें हुई। पहिली स्त्री से दो लडकियां थीं और दूसरी से दो पुत्र रत्न। दैवयोग से इस समय केवल एक लडका जीवित है जिसकी अवस्था ५ वर्ष की है। परमात्मा इसको दीर्घायु प्रदान करें।

दीनबन्धुत्व और दानशीलता.

आप के स्वभाव में आश्रय प्रदान मानो पूर्ण रूपेण दैव न हो चुका है। असहायों को सहारा देने में आपको बडी प्रसन्नता होती है प्राय सब पेशे वाले आपसे आश्रय पाते रहते हैं। आपको पहिले कुश्ती और सर्कस का बडा शौक था। इसके लिये आप ने पहलवान, घोडे और नोकर चाकर रख छोडे हैं। आपने एक गवैया भी मुलाजिम रख लिया है जो फुर्सत के समय आपका जी बहलाने में होशियार है। पर जब से आपके बडे लडके का देहान्त हुआ है तब से इन मनोरञ्जन के कार्यों से भी आपका विराग हो गया है। एक प्रकार से यह कार्य बन्द से हो पडे हैं।

आप स्थानकवासी जैन हैं, पर दान देते समय आप इस संकुचित परिधि से बाहर निकल जाते हैं। स्थानकवासी जैनों की संस्थायें भी आपकी दानशीलता से फलती फूलती हैं और मूर्तिपूजक समाज को भी आप की सहायता से वञ्चित नहीं रहना पडता। इन कार्यों से आप कभी आगा पीछा नहीं करते। आप निर्धन ब्राह्मण कन्याओं का अपनी जेब से विवाह कर चुके हैं। गवैये और पहलवान के विवाह भी आपने अपने खर्च से करवा दिये। सहायता तो थोडी बहुत अनेक लोगों को प्राप्त होती रहती है। आपकी दानशीलता किसी हद तक बन्धी हुई नहीं है। यह बात नीचे दी हुई सूची से पाठकों को भली भांति विदित हो जायगी।

दान सूची.

३२०००) जैन फंड में

२५०००) अमरावती के मुकद्दमे में

(यह मुकद्दमा स्थानकवासी मुनि कुन्दनमल जी महाराज पर अमरावती निवासी फतेराजजी फलोदिया ने चलाया था)

५०००) खानदेश संस्था में
११००) जामनेर संस्था में
३०००) जलगांव की पिंजरापोल में, धर्मशाला में, बालाजी के मन्दिर में
२०००) जमनालाल स्कूल खर्चा
१०००) भादक तीर्थ में मन्दिर आदि निर्माण के लिए
५०१) पंचगाज नासिक
१००) मारवाड़ी हितकारक में
४०००) अन्यान्य स्कूल आदि ज्ञानप्रचारक संस्थाओं के लिये

इनके अतिरिक्त युद्ध में वीर गति प्राप्त और हताहत सैनिकों तथा उनके सम्बंधियों की सहायता के लिये खोले गये फंड में एक चांदी का पानदान खरीद कर २१००) रु० आपने दिये थे।

सार्वजनिक कार्य.

आपके विचार बहुत ही उच्च हैं। आप सार्वजनिक कार्यों में भी भाग लेते रहते हैं। वक्तृत्व शक्ति आपकी यथोचित है और सदैव निर्भय होकर स्पष्टोक्ति के लिये आप प्रसिद्ध हैं। आपको जाति का बड़ा ख्याल रहता है। यह आप ही का दम था कि अमरावती के मुकदमे में १५ हजार खर्च करके और तन मन धन लगाकर स्थानकवासी जैनों की लाज रख ली है। अपने देश मारवाड़ से आने वालों की आप खूब खातिर करते हैं। चाहे गरीब या मालदार, ओसवाल हो या किसी अन्य जाति वाला—माहेश्वरी, अग्रवाल, जाट, सुनार और कुम्हार आदि चाहे कोई हो आप उसका अवश्य सत्कार करेंगे। यदि कोई रोजगार की तलाश में जाता है तो प्रयत्न करके उसे अवश्य हीले से लगा देते हैं। सरकार ने आपके शुभकार्यों और स्वभाव से प्रसन्न होकर आप को धामनगांव का आनरेरी मजिस्ट्रेट पद प्रदान किया है।

उपसंहार.

आपके सरल स्वभाव, उज्जल चरित्र, वन्दनीय वदान्यता, दीनबन्धुत्व, स्वजाति स्नेह और विद्यानुराग के सम्बन्ध में जितना भी लिखा जाय थोड़ा है हम यहां केवल परिचय मात्र देकर ही मौनावलम्बन करेंगे। आपको लगभग

पचास लाख की आसामी बताया जाता है। दश हजार मासिक से कम घर का खर्च नहीं है, इस पर भी युवावस्था है। सांसारिक प्रलोभनों के पूर्णरूप से समुपस्थित होते हुए भी जो महामना, धीर, विनम्र, सच्चरित्र, विद्यानुरागी, स्वजाति हितैषी और दीनबन्धु बना हुआ है क्या उसका विमल चरित्र प्रातःस्मरणीय नहीं है ?

हमें आशा है कि आगे चलकर आप और भी अधिकाधिक परिमाण में धार्मिक कार्यों में योग देंगे और पुण्यबल से प्राप्त लक्ष्मी का सदुपयोग कर नवयुवकों के आगे आदर्श रखेंगे और पुण्य के भागी होंगे। यही हमारी भावना है और यही कामना! तथास्तु।

धर्मबन्धु —

वाडीलाल एस. शाह.

श्री वैराग्य शतक

❋ प्रथम भाग ❋

अर्थ, भावार्थ, दृष्टांत सहितम्

मङ्गलाचरण-गीति ।

अखिलाऽऽखंडल महितं । मनसिजजयनं नयनानंदकरम्
तमहं श्री जिनराजं । कृपाऽवतारं क्षमावरं वन्दे ॥१॥

अर्थः—चौसठ इंद्रों के पूज्य कामदेवको जीतने वाले, चक्षुओं को आनन्द देने वाले, कृपा के अवतार एवम् क्षमा के सागर श्री जिनेश्वर भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—श्री जिनेश्वर भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ, जो महिमा वन्त, उत्तम एवम् महा समृद्धि वाले चौसठ इंद्रों के पूजनीय, मनसिज कामदेव को मूल से नाश करने वाले अर्थात् सुरलोक से आई हुई और दिव्य अलंकारों से अलङ्कृत हुई लक्ष २ सुरांगनाओं से भी अपने मेरुशिखर से अटल हृदय को न चलाने वाले, सब मनुष्यों के चक्षुओं को आनन्द प्रदायक, कृपा के साक्षात् मूर्तिमान अवतार एवम् क्षमा के महान सागर हैं उन श्री जिनेश्वर भगवान को मैं सप्रेम नमस्कार करता हूं। जगत में शरण सामर्थ्य का ही लिया जाता है और रागद्वेष को जीतने वाले महा सामर्थ्यवान समझे जाते हैं अर्थात् उन्हें जिनेश्वर भगवान समझते हैं, जो चौसठ इन्द्रों के पूज्य हैं। इन्द्रियों का निग्रह करना अर्थात् स्त्रियादि के दर्शन से मन विकार को तनिक भी स्थान न करना यह उनमें एक असाधारण गुण है। श्री तीर्थंकर प्रभु के मानस-मन्दिर को स्वर्ग

लोक से आई हुई अनेक मनोहर शक्तियां भी चलायमान करने की सामर्थ्य नहीं रख सकतीं कहा है कि —

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि ।
नीतमनाग पि मनो न विकार मार्गम् ॥
कल्पांत काल मरुता चलिता चलेन ।
किं मन्दराद्री शिखर चलित कदाचित् ॥ १ ॥

अर्थात्:—जिनके मन को तनिक भी चलाने की शक्ति देवाँगनाओं तक में भी नहीं है। इसमें क्या आश्चर्य है ? कारण कि प्रलयकाल की वायुसे बड़े २ पर्वत तो चलायमान हो जाते हैं परंतु क्या जम्बूद्वीप के मध्यमें स्थित एक लाख योजन की ऊँचाई वाले मेरु पर्वत का एक भी चलहिल सक्ता है ? साराश यह कि **सर्वज्ञ प्रभु** कामदेव को जीतने वाले हैं। जिनका मन विकार बल जलकर भस्म हो गया है। **दग्धे बीजे कुतोंकुरः** अर्थात् बीज के भस्म हो जाने पर अँकुर कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ? जो रागद्वेष को जीत समभाव प्राप्त करने वालों में सर्वोत्तम हैं। महान पुरुषों का जीवन विशाल द्रष्टि युक्त होता है। उनकी द्रष्टि से स्वपर भाव नष्ट हो जाता है।

अय निज परोवेति। गणना लघुचेतसाम् ।
उदार चरितानां तु। वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ १ ॥

अर्थात्:—यह मेरा, यह पराया यह गणना हलकी प्रवृत्ति वाले मनुष्यों की है, परन्तु उदार चरित् उत्तम पुरुषों के लिये तो समस्त वसुधा अपने कुटुम्ब सा है। द्रष्टाँत —गौशाला नामके अपने एक शिष्य **श्रीमहावीर प्रभु को** अति परिसह देने के लिये सभा में आये, और अत्यन्त क्रूर एवम् अयोग्य वचन बोले, तब भी प्रत्युत्तर में **भगवान महावीर स्वामी ने** कुछ न कहा और समभाव से सब सहन कर लिया। अन्त में उन्होंने अत्यन्त क्रोधातुर हो तेजुलेश्या त्याग प्राणान्त कष्ट दिया, परन्तु निकाचित आयुष्य वालों का तेजुलेश्या भी कुछ नहीं कर सकती, अतएव तीन चक्कर खा फिर लुप्त हो गई। परन्तु उसकी उष्णता से शरीर में आँच पहुंची और जलन उत्पन्न हुई इसलिए खूनराद-अतिसार रोग होगया। फिर भी गौशाला ने श्राप देकर कहा कि छः माह में तुम

पचतत्व को पाओगे। तब **श्री महावीर स्वामी ने** शांतपूर्वक कहा कि मैं तो अभी साढे सोलह वर्ष तक इस भूखंड पर विचरूंगा परन्तु तू तो सात दिन में ही काल का ग्रास बन जायगा इसलिए अब भी चेत कर अपना कार्य सिद्ध कर ले। **श्री वीर भगवान ने** इतना सा कटु वाक्य सिर्फ उनके लाभ के लिए ही फरमाया। यह वाक्य गोशाला के सच जचा। वह मन में जानता था कि मैं मिथ्याडम्बरी हूँ, मैंने तो बिल्कुल पोपाबाई का राज्य चला रखा है, सिर्फ बाह्य दिखाव से ग्यारह लाख श्रावक सचय कर लिए हैं, परन्तु उन में एक भी आत्मार्थी नहीं है सब पुद्गलानन्दी है। सिर्फ पेटार्थीओं का यह मंडल है, इसलिए मैं बिल्कुल झूठा और **श्री वीर प्रभु** सच्चे हैं। मैं तो लकड की तलवार से दिग्विजयी होने की आशा रखने वालों में से एक हूं। ऐसा सोच समझ कर सभा से पीछा फिरा और सात दिन में अपने दोष देख उन्हें प्रकट कर अपना आत्म कार्य सिद्ध किया। अपने दोष स्वतः से प्रकट होना सचमुच कठिन कार्य है।। गोशाला ने अपने दोष प्रकट किये, इसलिए कई लोग उसकी निंदा करने लगे, परन्तु उनका दिल तनिक भी कलुषित नहीं हुआ। जगत में अपने दोष कहने की अपेक्षा अगर अपने दोष कोई प्रकट करता हो, अर्थात् अपनी निन्दा करता हो, वे निन्दायुक्त वचन सुन कर समभाव रखना और हृदय में द्वेष उत्पन्न न होने देना यह अत्यन्त कठिन कार्य है। अपने मुंह से तो कहदे कि, भाइयों! मैं महापापी हूं, अधर्मी हूं दुष्टकर्मों का पात्र हूं, निर्दयसे निर्दय भावनाधारी हूं, मैंने मेरे समस्त जीवन में नीच कर्म करने में कुछ भी कसर न की। इसलिए मेरी तो नीच गति होगी ही। कारण कि दुर्गति में जाने योग्य ही मैंने नीच कर्म किये हैं, इत्यादि २ अपने अवगुण कभी मनुष्य कह दिखाते हैं। परन्तु इतनेही क्रूर वचन अपने सामने कोई कह दे या अपनी निंदा किसी से आप सुनले उस समय हृदय में समभावना रहे, क्रूर भाव न प्रकटें, और उनका बुरा भी न चाहें, यह अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इसलिए गोशाला को धन्य है कि जिसने अपने अवगुण प्रकटकर आत्म कार्य सिद्ध किया। **श्री वीर प्रभु ने** गोशाला पर तनिक भी द्वेष न किया तथा गौतम स्वामी पर भी जिन्होंने रागभाव नहीं रखा। इसके प्रत्यक्ष सबूत में जब आणंद श्रावक को अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ तब श्री गौतम स्वामी ने उपयोग भूल से कह दिया कि, इतना ज्ञान श्रावक को कभी भी उत्पन्न नहीं होता है तुम झूठ बोलते हो —ऐसा कह कर भिक्षा ले आप स्वस्थान पर पधारें.

और श्री महावीर गुरु से विनयपूर्वक पूछा। जिसके उत्तर में भगवान ने फरमाया कि, हाँ! इतना ज्ञान उत्पन्न हो सकता है, तुमने उस श्रावक की असातना की है, इसलिए उसके पास पहुंचो जाकर क्षमा मांगो, और फिर आहार पानी करो। उन्होंने वैसा ही किया, परन्तु मैं बडा हूं श्रावक को क्यों क्षमाऊं, ऐसा दुराग्रह नहीं किया। सारांश यह कि सर्वज्ञ श्री प्रभु को राग द्वेष नहीं रहता। चोंसठ इन्द्र जिनकी अहर्निश सेवा करते हैं। क्षमा के तो वे अवतार ही हैं। चाहे जैसा मरणांत कष्ट भी उत्पन्न होजाय वे क्षमा को नहीं त्यागते, ऐसे श्री जिनेश्वर भगवान को मैं सप्रेम नमस्कार करता हूं, और मेरे इस शुभ प्रयास में वे सदा मंगल प्रदायक हो ऐसी सच्चे अन्तःकरण से प्रार्थना करता हूं। अब एक दृष्टान्त दे इस विषय की पुष्टि करते हैं।

दृष्टिविष चँडकौशिक नाग का दृष्टांत.

एक समय चरम तीर्थंकर श्री महावीर प्रभु दीक्षा ले छद्मस्तपने विहार भूमि में विचरते थे। वे फिरते २ एक समय विकट निर्जन जंगल में आ निकले। उस जंगल में एक महाभयंकर दृष्टिविष चँड कौशिक नाम का बडा भारी सर्प अपने बिल में रहता था, वह इतना महा जहरी था कि जिस पर वह अपनी दृष्टि (नजर) डालता वह प्राणी जल्दी ही मर जाता था। आकाश में वेग से कोई प्रबल पक्षी उडता हुआ चला जाता हो और उस पर जो वह अपनी दृष्टि डाल दे तो उसका वेग एक दम रुक जाय और वह प्राणी खींच कर उसके पास आ पडे और जल्दी ही मर जाय।

ऐसा वह अत्यन्त महा विकराल दृष्टिविष नाग था। इस महा भय के कारण वह मनुष्यों के आने जाने की बडी राह होने पर भी बिल्कुल ऊजड सी होगई थी। कोई भी मनुष्य जान बूझ कर उस मार्ग से नहीं जाता था परन्तु उसी रास्ते से भगवान श्री महावीर प्रभु पधारे और प्राणों की परवाह न कर उस नाग की भलाई के लिए उसके बिल पर ही आ ध्यान धर कर अटलभाव से खडे रहे। वाह प्रभु! वाह!! कैसी आपकी दयालु पवित्र भावना सचमुच आप ही संसार में सच्चे सगे और परम उपकारी पुरुष हैं।

थोड़े समय पश्चात् वह चंडकौशिक नाग बिल से बाहिर निकला और अपने भक्षक के लिए चारों तरफ दृष्टि पसार कर देखने लगा, तो अपने बिल पर ही एक पुरुष को खड़ा पाया। देखते ही उसे उन पर अत्यन्त क्रोध आया कि अरे! मेरे ही बिल पर यह कौन पापी आकर खड़ा होगया है? यों महान क्रोधी बन उसने प्रभु पर उनके प्राण लेने के लिए दृष्टि डाली।

परन्तु प्रभु को लेश मात्र भी दुःख न हुआ। तनिक भी विष न व्यापा। सचमुच निकाचित आयुष्य के स्वामी भगवान होते हैं। वे कभी किसी के मारे नहीं मरते हैं। नाग ने कई समय प्रभु के सामने देखा परन्तु उसका प्रभाव कुछ भी न हुआ तब अत्यन्त क्रोधातुर हो उसने भगवान के दहिने अंगूठे पर डंक मारा और एक दम भगवान का खून पीने लगा। डंक देकर अंगूठे को चूसा, जब वह खून पीने लगा, तब भगवान के शरीर में महा वेदना उत्पन्न हुई परन्तु प्रभु शांतता से समता भाव में स्थित रहे। तनिक भी उस पर क्रोध या गुस्सा न लाये।

नाग तो भगवान का खून पीने लगा परन्तु वह खून उसे सचमुच निकले हुए दूध के समान मिष्ट लगा। प्रत्येक तीर्थंकरों के रक्त का वर्ण सफेद और वह शकर डाले हुए दूध जैसा मिष्ट तथा स्वादिष्ट होता है। इसलिये उस नाग को भी वह रक्त अत्यन्त स्वादिष्ट लगा और मानो दूध पीता हो त्यों बहुत समय तक खून पीता रहा।

रक्त पीते २ वह सोचने लगा कि मैंने आजतक ऐसा रुधिर दूसरे किसी भी पुरुष का नहीं पिया। मैंने बहुत मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि प्राणियों का खून पाया है परन्तु ऐसा दूध समान मिष्ट—स्वादिष्ट खून किसी का भी नहीं था, इसलिए यह पुरुष कौन है? ऐसा सोच कर वह प्रभु के सामने मुंह कर एक दृष्टि से देखने लगा। प्रभु की मुखाकृति देख कर भी उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ, अत्यन्त अनिमेषता से प्रभु को देखता हुआ हृदय में सोचने लगा कि ऐसा साधु मैंने कहीं पहले देखा है। उसके मन में उहापोह विचार हुआ। सोचते २ नाग को उसी समय **जातिस्मरण ज्ञान** उत्पन्न होगया और पूर्वभव उसे ज्ञान दृष्टि से दृष्टिगत होने लगा।

जातिस्मरण ज्ञान का ऐसा प्रभाव है कि जैसे ज्ञान वाला अपने पूर्व के नौसो (९००) भव तक देख सकता है। अनुक्रम से किए हुए सभी

पन्चेंद्री के नोसो भव तक यह देख सकता है इतना ज्ञान होता है वह पहिले कौन था, कहां था, क्या २ शुभाशुभ कर्म किये थे, वह सब देख सकता है । यह जातिस्मरण ज्ञान पाँच ज्ञान में से प्रथम ज्ञान मतिज्ञान का एक भेद है। मति ज्ञान के अन्य २८ भेद है।

इसी तरह चंडकौशिक नाग को भी प्रभु की मुखाकृति देखते, सोचते, उपरोक्त गुण वाला जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे उसे अपने पूर्व का ज्ञान होगया । अर्थात वह समझ गया कि ओहो ! ये तो साक्षात् चौबीसवें तीर्थंकर भगवान **श्री महावीर स्वामी** हैं और पूर्व भव में मैं जैन साधु था, मैंने दीक्षा ग्रहण की थी । परन्तु शिष्य पर क्रोध कर मैंने मेरी आत्मा बिगाड़ डाली थी और उस शिष्य पर क्रोध करने के कारण ही मेरी यह दृष्टि विष सर्प की गति हुई है । अरे रे ! मैंने **श्री महावीर स्वामी की** अत्यन्त असातना की है। भगवान को ही कष्ट वेदना उत्पन्न की और, उनका खून पिया। मैं इस कर्म को कहां छुड़ गा ! ऐसा आत्म पश्चाताप करता हुआ वह भगवान के चरण कमल में गिरने लगा और बोला कि मैंने क्रोध कर मेरी आत्मा बिगाड़ दी है इसलिये अब मुझे इस भव में सुधार करना चाहिये । सचमुच क्रोध बहुत बुरा है कहा है कि —

क्रोधो मूल मनर्थानां । क्रोध संसार वर्धनम् ।
धर्म क्षयकर क्रोध । तस्मान् क्रोधो विवर्जयेत् ॥ १ ॥

अर्थात्—सब अनर्थों का मूल क्रोध है, संसार को बढ़ाने वाला क्रोध है। क्रोध धर्म का भी क्षय करता है, इसलिये ऐसे अनेक दुर्गुणों के भंडार क्रोध को हमेशा त्यागना चाहिये । ऐसा सोच कर उसी समय **चँडकौशिक नाग ने महावीर प्रभु को** समक्ष किसी भी जीव को न मारने का एवम् क्रोध न करने का नियम अँगीकार किया और भगवान को नमस्कार कर उनके गुणगान तथा प्रार्थना करने लगा।

पश्चात् भगवान **श्री महावीर स्वामी** भी नाग प्रतिबोध पायो नम-झकर वहां से अन्य जगह विहार कर गए। अब **चँडकौशिक नागने**

समझा कि मेरी दृष्टि ऐसी विषमय और प्राणघातक है कि,जिस पर डालता हूं वही बिलकुल नष्ट हो जाता है, इसलिये अब मेरे मुंह को ही बिल में घुसा के त्याग कर दूं। ऐसा निश्चय कर उसने अपना मुंह बिल में रख बाकी का सब शरीर बाहिर रक्खा और अनित्य भावना एवम् एकत्व भावना में लीन हो प्रभु के गुण गाने लगा तथा क्रोध का सर्वथा त्यागकर क्षमा और शांत गुण में अहर्निश रमने लगा, अहो धन्य है इस नाग को कि **श्री भगवान के** समागम से जिसका उधार हो गया।

थोडे दिन बीतने पर वहाँ से अचानक कोई अनजान मनुष्य आ निकले। वे पहिले तो बडा भारी सर्प को देखकर डरे। परन्तु उसका आवागमन न होने से उन्हें तनिक विश्वास हुआ, फिर सर्प के पाव पड स्तुति करने लगे और अपने पास से शक्कर दूध इत्यादि उसके शरीर के पास रखकर चले गए। उस दूध और शक्करके कारण थोडीही देरमें वहा एक नहीं दो नहीं परन्तु हजारों कीडियाँ इकट्ठी हो सर्प के समस्त शरीर पर लिपट कर उसे काटने लगी जिससे सर्प को अत्यन्त दुसह वेदना उत्पन्न हुई।

उस नाग ने अपने शरीर में अत्यन्त वेदना होने पर भी कीडियों पर जरा भी क्रोध न किया और शरीर को जरा भी न हिलाया। सम्पूर्ण क्षमा धारण कर उलट करुणा भाव से सोचने लगा कि हे आत्मा! देख, क्रोध मतकर तुझे इन कीडियों के चटके तेज लगते होंगे। परन्तु ये कीडियां तो बिचारी तुझसे बहुत अच्छी और दयालु है। तूने तो महा निर्दयता से कई बिचारे जीवों के बिलकुल प्राण लिये है। तुझसा तो कोई निर्दय, पत्थर कठोर नहीं है। इसलिए अब क्रोध न कर, पूर्वभव में क्रोध के कारण ही तूने तेरी आत्मा बिगाडी है, और इस महा भयकर सर्प की गति पाई है। इसलिये अब **श्री महावीर प्रभु** जेसे भगवान मिले हैं वे तेरे भाग्य से ही यहाँ पधारे हैं और तुझ पर बडा उपकार किया है, तो अब उन प्रभु का ही सत्य शरण धारण कर क्षमा सह अपना कार्य सिद्ध कर।

वह यों विचार करता हुआ समभाव में रहे प्रभु के गुण गाता हुआ सब जीवों को क्षमाकर सब पापों की आलोचना कर समाधि परिणाम में काल कर वहाँ से च्यव आठवें देवलोक में जाकर देवयोनि में उत्पन्न हुआ। महर्द्धिक बडा

सुर्गी देव हुआ, **श्री महावीर प्रभुके** प्रतापसे उसकी गति सुधर गई।

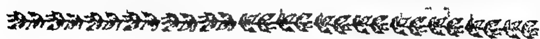
इस दृष्टान्त का मतलब यह है कि श्री वीर प्रभु के शरण से विघ्न नाश हो जाते हैं। श्री जिनेश्वर प्रभु का शरण ऐसा महान सुखकारी है, वे जिनेश्वर प्रभु सचमुच रागद्वेष से रहित हैं, कहा है कि —

> नक्तो शिकेराग भुगासनापरे। कर्मनिरोपंन च चण्डको शिके।
> अहो उदासिन दपंपनिर्जिता। चमुत्कयादु निंपयाविकर्मणाम् ॥१॥

अर्थात्:—हमेशा सेवा करने में प्रमुख ऐसे इन्द्र पर जिनका तनिक भी राग भाव नहीं, और क्षीर समान मिष्ट अपने रुधिर पीने वाले **चंड कौशिक नाग के** महा जहरी दृष्टि विष वाला सर्प पर जिनका जरा भी रोष भाव उत्पन्न न हुआ, इसलिये अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि अपने रागद्वेष को जीत ऐसा विख्यात ही उदासीन भाव प्राप्त किया है और दुर्जय कर्मसेना को स्वत जीत ली है, तो हे जगद्गुरु! हे सर्वज्ञ देवाधिदेव!! मैं आपका सदा सर्वदा त्रिकाल अभिवन्दन करता हूं। कारण कि आप ही जगत में सच्चे शरणरूप हैं आप ही का शरण ही संसार दुःख दावानल को शान्त करने में समर्थ है।

कवित्त-नमु हुं श्री अरिहंत, करम को कियो अन्त,
हुआ सो केवल वन्त, करुणा भंडारी है।
अतिसे चौतीस धार, पेंतीस वाणी उच्चार,
समभावे नर नार, महा उपकारी है॥
शरीर सुन्दर आकार, सुरज सो झलकार,
गुण है अनन्त सार, दोष परि हारी है।
केतहे तिलोक रीख, मन वच काया करी,
लली लली वारँवार, वन्दना हमारी है॥

ऐसे अनुपम गुण वाले **श्री सर्वज्ञ भगवान** ही संसार में सदा सच्चे सगे हैं और शरण भूति हैं। इसलिये ऐसे श्री जिनेश्वर भगवान को सदा मेरा अभिवन्दन हो, अर्थात् उनका ही सदा मुझे संसार में शरणा हो।



॥ गुरोर्मंगलम् ॥

श्री सिद्धान्तसुधारस्य सरसं शांतं रसं स्वादयन् ।
संसारे विधुरार्णवे प्रवहणः श्लाघ्यैर्गुणैः संयुतः ॥
जन्मांभोधिजले पतद्भव भृतामालंबनं प्राणिनाम् ।
पूज्य श्रीमदुमेदचन्द्रगुरवे तस्मै नमः सर्वदा ॥२॥



अर्थः—उत्तम सिद्धान्त रूपी अमृतरस का शांतभाव से सदा आस्वादन करने वाले, इस दुःख के संसार रूपी समुद्र में जहाज समान, तथा उत्तम श्लाघ्य गुणों से युक्त, एवम् भवसागर में डूबते हुए प्राणियों को आधार स्वरूप पूज्य श्री उमेदचन्द जी गुरुवर्य को मेरा सदा सर्वदा त्रिकाल नमस्कार हो।

भावार्थः—जो महात्मा हमेशा सिद्धान्तरूपी सुधारस का प्रेमपूर्वक पान करते हैं, जो जन्मादि दुःखों से पूर्ण भरे हुए संसार सागर में निच्छिद्र प्रवहण के समान हैं, जो क्षमा, दया, गांभीर्य, धैर्य, औदार्य आदि अनेक प्रकार के उत्कृष्ट सद्गुणों से शोभित हैं तथा संसार सागर में गिरे हुए और नाना प्रकार के भवों को धारण करने वाले प्राणियों को आधार भूत हैं उन पूज्य श्री उमेदचन्द्र जी महाराज को मेरा नमस्कार हो। जगत में सद्गुरु की महिमा अपरम्पार है, उनके जितने गुण गाए जाए उतने ही थोड़े हैं। महा सागर के नीरका पार आना जितना मुश्किल है उतना ही मुश्किल सद्गुरु के सद्गुणों का पार आना है। इस भव भ्रमण में भटकते भूले हुए अन्य प्राणियों को तो सद्गुरु

ही सन्मार्ग दर्शक अमूल्य ध्रुव हैं। मणि रत्नमालाके आदि श्लोक में कहा है कि—

उपजाति वृतम्।

अपार संसार समुद्र मध्ये। निमज्जतो मे शरणं किमस्ति।
गुरो कृपालो कृपया वदैतत्। विश्वेश पादाम्बुज दीर्घ नौका ॥ १ ॥

अर्थात्—(प्रश्न) भव्यात्मा मुक्ति महिलाभिलाषी होकर कहते हैं कि इस अपार भवसागर में डूबते हुए मुझे कौन शरण दाता है। तब कृपालु गुरु उत्तर में फरमाते हैं कि हे भव्यात्मा! इस भवाब्धि में नौका समान किसी कृपालु सद्गुरु का शरण ग्रह, वे तुझे शुद्ध रास्ता दिखा कर संसार कारागृह से मुक्त करेंगे, कहा है कि—

दोहा-विघ्न हरण मंगलकरण सुख दाता गुरुराय।
भाव धरीने भेटतां दुःख दारिद्र दुर जाय ॥१॥
गुरु दिवो गुरु देवता, गुरु मोटा उपकार।
जे गुरु अन्तर भेटिया, तेह न पडया संसार॥२॥

सारांश—चाहे जैसा पापी हो परन्तु वह सद्गुरु की कृपा से संसार सागर तिर जाता है। जैसे तलवार को चाहे जितने वर्ष से कीट लगा हो लुहार के हाथ पडते ही वह चक्कर पर चढ़ा कर थोडे ही देर में सब कीट निकाल कर उसे तेजदन्त बना देगा। अगर लोहा अच्छा होगा काष्ट या मिट्टी की तलवार को चक्कर पर चढ़ा चाहे जिसी जाय परन्तु उसमें कभी तेज न प्रकटेगा। इसी तरह जो भव्यात्मा होगा वह सद्गुरु के समागम से निर्मल हो जायगा। दवाई चाहे जितनी बढ़िया हो, वैद्य जी उत्तम जानकार हों परन्तु जब तक उसे दवाई लागू नहीं हो सकती। यों ही सद्गुरु के सद् वचन भी लघु कर्मी, भव्यात्मा ही ग्रहण कर सदुपयोग लगाते हैं। अन्य जीवों के कान में तो वे शूल उत्पन्न करते हे। जो अपने पर उपकार करके सन्मार्ग पर लगाते हे वे गुरु कहलाते हैं। उन गुरु का उपदेश पवित्र होने पर भी अज्ञानियों को रुचिकर

नहीं होता। भव स्थिति पके सिवाय विचारों को कैसे रुचिकर हो। एक महात्मा ने साफ २ कहा है कि —

दोहा-जिनकी भवस्थिति पकगई, उनको यह उपदेश।
खरो मार्ग वितरागनो, कूड नही नवलेश ॥

सारांश—भाग्यशाली पुरुष ही सद्गुरु का उपदेश सुनकर आत्मकल्याण कर सकते हैं। सद्गुरु पवित्र मार्ग दिखा कर अक्षय मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त कराते हैं गुरु अनेक गुणों के भंडार हैं। इसलिये ऐसे सद्गुणी और महान परोपकारी श्री सद्गुरुवर्य को मेरा सदा नमस्कार हो ॥

रोहा चोर का दृष्टान्त.

कोई एक चोर चोरी करने में समस्त जीवन व्यतीत कर जब अन्त में मरने लगा। तब बहुत दुःख भोगने पर भी उसके प्राण न निकले। उसका एक रोहा नामक लड़का था, उसे भी अपने धंधे में निपुण (होशियार) कर दिया था। पिता की इच्छा तृप्त को ऐसी शिक्षा उसें प्राप्त हुई थी। यह लड़का भी उस समय पिता के पास प्रस्तुत था। उसके मन में विचार हुआ कि अभी तक पिता जी का जीव क्यों नहीं निकला? कहावत है कि, किसी में जीव रह जाय तो भव जीव नहीं निकल सकता। इसीलिये उसने अपने पिता जी से अत्यन्त विनीत भाव से पूछा कि, पिता जी? कुछ इच्छा है? होतो फरमाइये, मैं वह सब पूर्ण करू। यह सुन कर वृद्ध धीरे २ बोला कि भाई रोहा? मुझे कुछ चाह नहीं है और मुझे कुछ भी न हुआ है। सिर्फ एक विचार उत्पन्न हुआ है, जो तुझ से ही सम्बंध रखता है। तब रोहा ने कहा—सिरछत्र पिता जी! अगर ऐसा ही है तो जल्दी फरमाइये। आप कहेंगे वही हुक्म सिरोधार्य करूगा। वृद्ध ने कहा, उसी की तुझे प्रतिज्ञा करनी होगी। सच्चे हृदय से मेरे समीप जल डाल कर वह प्रतिज्ञा करना जिससे मेरी आत्मा निकल जायगी, और मुझे संतोष होगा, सुन —

इस राजगृही नगरी में महावीर नाम के एक साधु कई वक्त आते हैं उन्हें तू जानता है? उत्तर मिलना हां वे अपने श्रेणिक राजा के परम गुरु समझे जाते हैं। वे साधु हर किसी को अपना धंधा छुड़ा कर निरुद्यमी बना देते हैं।

विशेष कर उनकी वाणीरूप कुल्हाडी कोमल झाड काटने में विशेष फतह पाती है। इसलिए तू अभी बालक है। कभी भी उनकी वाणी मत सुनना और उस रास्ते पर भी जान,बूझ कर कभी मत जाना, इसका तू प्रण ले और मेरे सामने जलाजली दे, तभी तू मेरा सच्चा पुत्र है। ऐसा करने से ही मेरा जीव गति करेगा, नहीं तो नहीं निकलेगा। रोहा एक दम खडा हो पानी ले आया और वृद्ध के देखते २ ही हाथ में जल लेकर बोला कि, पिता जी! यह आपके वचन के कारण मे जल छोडता हू कि महावीर भगवान जिस रास्ते पर होंगे उस रास्ते से मैं कभी नहीं जाऊगा और उनकी वाणी भी न सुनूगा। पानी छोडते ही वृद्ध प्राण त्याग परलोक का प्रवासी होगया।

उसके मरने पर जाति रिवाजानुसार खर्च-रसोई किये बाद रोहा चोर हाथ में फरसा ले अपना चोरी का धधा करने निकला। उसने अपने गाव के एवम् आसपास के गॉव के लोगों के हृदय चौर्य कला कर बहुत जलाये और लोगों,को लाचार किया। एक दिन किसी गॉव से जब वह चोरी करके आरहा था, उसी रास्ते में महावीर स्वामी का समवसरण नजर आया। देखते ही वह बोला हाय २! अब क्या करू? यह पाप रास्ते में क्यों मिला? कर्मयोग से दूसरी राह न होने से उसी रास्ते पर कान में उँगली लगाये खूब दौडने लगा, दौडते २ बिल्कुल समवसरण के समीप ही उसके पॉव में बडा भारी कॉटा लग गया। कॉटा बिना निकाले चलना बद होजाने से श्री महावीर को गाली देता कान में से उगली निकाल कॉटा निकालने के वास्ते नीचे बैठा। निकालने में जरा देरी हुई उस समय श्री महावीर भगवान के मुँह से नीचे लिखा उपदेश उसके कर्णगोचर हुआ। वे देवलोक में रहते हुए देवों का वर्णन और सकेत बताते हुए फरमा रहे थे कि —

श्लोक

महीतला स्पर्शिपालाः निर्निमेश विलोचनाः।
अम्लान माल्या निस्वेद नीरजोऽगाः सुरा इति ॥ १ ॥

" देव की प्रतिच्छाया नहीं गिरती, देव चक्षु नहीं टमटमाते, देव जमीन पर पॉव न दे, चार उँगल अधर में चलते है और उनकी फूल की माला कभी

नहीं कुमलाती है" यह वचन बिना इच्छा के रोहा के कर्ण पट पर गिरें, कॉटा निकाल कर जल्दी ही वह वहा से भगा परन्तु वे वचन भी उसके साथ दौड़े, वह जल बल कर खाक होगया, उसने हृदय पट पर हाथ रख कर उन्हें भूल जाने के लिए व्यर्थ बकवाद मचाया परन्तु वे न भूले। "जो भूल जाना वह अधिक चिपट जाता है" यह दुनिया की प्राचीन रीति है, वे अधिक याद हो गए। फिर खिज कर इस पापी ने आज मेरे पिता जी की पवित्र प्रतिज्ञा तुड़ाई, ऐसी असभ्यता से अनेक गाली देता हुआ वह अपने घर गया।

फिर दूसरे दिन अपने धधे के कारण दूसरी चोरी करने निकला। यों प्रतिदिन अपना धधा करता रहा। परन्तु उस नगर में जगह २ अत्यत चोरियाँ होने से गाँव के लोग विचारे अत्यत कायर हो गए और नगर नरेश श्रेणिक राजा से अर्ज की। राजा ने यह कार्य अपने बुद्धि निधान अभयकुमार को सौंपा। अभयकुमार ने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु कुछ पता न लगा। तब वे एक समय अपनी चंद्रसेना नाम की वैश्या को मिले, कारण बहुत से चोर व्यभिचार से प्रीति रखते हैं, जिससे कभी वैश्या के घर आते हैं, तथा इस वैश्या के यहाँ विशेष कर चोरों का ही आवागमन था। जिससे उसे मिलकर सूचना कर दी कि तू बराबर तलाश कर पता पूछना। तुझे जिस पर शक हो उसे हाव-भाव दिखा विशेष मोहित करना और सब बात प्रकट करा लेना, फिर उसे मदिरापान से पराधीन कर मुझे खबर देना। ऐसी सूचना कर अभयकुमार अपने घर गए।

अब वह रोहा चोर भी एक समय वैश्यागमन के लिये उस वैश्या के घर आया, उसे प्रीति से वश कर कई शब्द उसके मुँह से निकलवाये। अनुमान से वैश्या समझ गई कि हो न हो चोर तो यही है। चद्रसेना ने उसे मदिरा (शराब) से पराधीन कर अभयकुमार को बुलवाया। अभयकुमार ने कहा कि —इससे सब बात निकलवाने के लिए एक युक्ति रचो इसको देवताई अमूल्य आभरण पहिना कर अन्य मकान में सुवासित महकते हुए छत्रपलग पर सुलाओ। फिर तुम चार स्त्रियाँ मिलकर रूप अलकार में देवी तुल्य बन उस छत्रपलग के पायों की तरफ भिन्न २ देवताई वस्तुए हाथ में ले खड़ी रहो और जब वह जागृत हो तब उसे पूछना कि अहो स्वामीनाथ! घणी खम्मा आप कहो तो

इस देवलोक में हम चार देविया के पति आप किस तरह हुए ? इत्यादि हावभाव से पूछना । यों सूचित कर आप गुप्त रीति से उस घर में लुक कर बैठे रहे ।

वह वेश्या और तीन दूसरी स्त्रिया चारों ने मिलकर वैसा ही किया । जब रोहा जगा तब आश्चर्य भरी दृष्टि से इधर उधर देखने लगा । चारों पायों की तरफ चार अफसराओं को देखकर वह चकित ही हो गया अरे यह क्या ? ज्यों ही उसे यह विचार हुआ त्यों ही चारों अफसराए वेही शब्द बोली । चोर तो महान विचार में लीन हो गया । सोचने लगा कि मैं क्या देव हू या चोर हू। मैं मर गया हू या जीवित हू ? ये देविया खडी हैं यह सच है या स्वप्न है ? इस विचार भ्रांति में वह रम रहा था कि तत्काल विचार हुआ जो ये देविया है तो आखें क्यों टमटमाती है ? प्रतिच्छाया क्यों गिरती है ? जमीन पर पाव रख कर कैसे खडी है ? उन साधु ने तो अपनी कथा में ऐसा न होना कहा था । मालूम होता है कुछ जाल रची गई है मुझे पकडने का उपाय हुआ है ? ऐसा विचार किया ।

फिर प्रकट होकर वह कपट सहित बोला कि, हे देवियो मैंने अत्यन्त दान, अत्यन्त धर्म, अत्यन्त पुन्य और बहुत से साधु सन्तों की सेवा की है । अनेक सुकृत कमाई की है जिसमें मैं तुम्हारा नाथ हुआ हू और तुमसी चार देविया मिली है । यह सब दान पुन्य का ही फल है । यह उत्तर सुनकर अभयकुमार ने सोचा कि, यह तो महा चतुर है यह समझ गया विना सबूत के विन अपराध के कोइ कैसे पकडा जाय ? फिर उसे छोड दिया । रास्ते में जाते हुए रोहा ने मनमें विचार किया वाह २ ? आज तो मेरे बारा ही बज जाते बुरे हाल से मैं मारा जाता कौन जानता है कि ये मेरा क्या करते । परन्तु सचमुच आज तो मुझे विना इच्छा के उस रास्ते में श्रवण की हुई वीर भगवान की वाणी ने ही बचाया है । धन्य है उस वाणी को ? मैंने मूर्ख पिता जी की शिक्षा मान अपनी आत्मा का बुरा किया । विना इच्छा के सुने हुये इन चार वचनों से तो मेरा अथाह लाभ किया, तो जो मैं श्री वीर प्रभु का ही शरण ले हमेशा उनकी सेवा करू, तो कितना लाभ हो ? सच यह ससार ही असार है, स्वार्थी है मेरे पिताजी ने सिर्फ स्वार्थ के लिये मुझे प्रतिकूल रास्ते में लगा दिया था । इसलिये धिक्कार है इस स्वार्थ ससार को अब तो उन वीर प्रभु का ही शरण ले कर्म क्षय कारिणी दिक्षा ग्रहण करना योग्य है, परन्तु जिस अभयकुमार ने मुझे

ढूंढने के लिये युक्ति जाल रचा था, उन्हें मिलकर मैं चोर हूँ ऐसा प्रकट कर धन वापिस सौंप दिक्षित होऊँ। वाह ? वीर गुरु वाह ? कैसी आपकी वाणी है।

फिर दूसरे दिन सभा में जाकर, अभयकुमार से मिलकर कहा कि —साहब ? जिस चोर को आप ढूंढते हो, वह मैं ही रोहा नामक चोर हूँ। फिर सब बीती हुई हकीकत कह सुनाई, और कहा कि मैं उस दिन बचा यह श्री वीर वाणी का ही प्रभाव है। अब मुझे उनके समीप दिक्षा लेना है इसलिये आप मुझे आज्ञा दीजिये। अभयकुमार यह सुनकर बहुत खुशी हुए, उसकी इच्छा दिक्षित होने की सुनकर उसे सब अपराध माफ कर दिये और अत्यन्त प्रसन्नता से आज्ञा दी। फिर रोहा चोर ने सब धन सौंप कर श्री वीर गुरु के समीप अपने हाथ से दिक्षा दिलाई। दिक्षा लेने के पश्चात् अभयकुमार अपना सिर झुका कर तिखुत्ता के पाठ से विधि सहित नमस्कार कर अपने घर गये।

फिर रोहा मुनि ने अत्यन्त तपस्या, जप आदि किये अनुष्ठान कर काल के समय सब जीवों को क्षमा कर शान्तभाव से काल कर सद्गति को प्राप्त हुए।

रोहा चोर का दृष्टान्त यहां पूर्ण हुआ। दृष्टान्त का सार यह है कि, चाहे जैसा पापी हो, अधमाधम कुकृत्य कर अपनी जिन्दगी व्यतीत कर रहा हो, परन्तु सद्गुरु के समागम से या उनके मुख की वाणी सुनने पर अवश्य वह प्राणी उन्नति पथ पर लग जाता है। उपरोक्त दृष्टान्त में रोहा चोर को अनिच्छा से सुने हुए चार शब्दों से कसौटी के समय अथाह लाभ पहुंचा और उसने उन्मार्ग त्याग सन्मार्गगामी बन अपना जीवन सुधारा, इसी तरह हलके कर्म वाले जीव सद्गुरु का समागम कर जीवन सुधार के मनुष्य जन्म सफल करते हैं। दूसरा सार यह निकलता है कि —स्वार्थी मनुष्य रोहा चोर के पिता जी की तरह सन्मार्ग से भ्रष्ट कर उन्मार्ग पर लगा देते हैं सन्मार्ग को झूठा मार्ग दिखाते हैं। भोले जीवों को भ्रान्ति में डाल देते हैं और संसार सागर में डुबा देते हैं, परन्तु कभी सच बात नहीं मालूम होने देते। चाहे स्वार्थी मनुष्य प्रतिकूल रास्ते पर लगा दे, परन्तु जो उसका भाग्योदय हुआ तो चाहे जिस तरह वह सन्मार्गगामी बन जाता है। इसलिए विवेकी मनुष्यों को हमेशा सद्गुरु का शरण लेना चाहिए, कि जिससे वह अपार भवसागर का पार कर अजर अमर हो अक्षय मोक्ष लक्ष्मी पासक एक कवित कहते हैं —

इस देवलोक में हम चार देवियों के पति आप किस तरह हुए ? इत्यादि हाव-भाव से पूछना। यों सूचित कर आप गुप्त रीति से उस घर में लुक कर बैठे रहे।

वह वैश्या और तीन दूसरी स्त्रियां चारों ने मिलकर वैसा ही किया। जब रोहा जगा तब आश्चर्य भरी दृष्टि से इधर उधर देखने लगा। चारों पायों की तरफ चार अफसराओं को देखकर वह चकित ही हो गया अरे यह क्या ? ज्यों ही उसे यह विचार हुआ त्यों ही चारों अफसराए वेही शब्द बोलीं। चोर तो महान विचार में लीन हो गया। सोचने लगा कि मैं क्या देव हू या चोर हू मैं मर गया हू या जीवित हू ? ये देविया खडी हैं यह सच है या स्वप्न है ? इस विचार भ्रांति में वह रम रहा था कि तत्काल विचार हुआ जो ये देविया है तो आंखें क्यों टमटमाती है ? प्रतिच्छाया क्यों गिरती है ? जमीन पर पाव रख कर कैसे खडी है ? उन साधु ने तो अपनी कथा में ऐसा न होना कहा था। मालूम होता है कुछ जाल रची गई है मुझे पकडने का उपाय हुआ है ? ऐसा विचार किया।

फिर प्रकट होकर वह कपट सहित बोला कि, हे देवियो मैंने अत्यन्त दान, अत्यन्त धर्म, अत्यन्त पुन्य और बहुत से साधु सन्तों की सेवा की है। अनेक सुकृत कमाई की है जिसमें मैं तुम्हारा नाथ हुआ हू और तुमसी चार देविया मिली है। यह सब दान पुन्य का ही फल है। यह उत्तर सुनकर अभयकुमार ने सोचा कि, यह तो महा चतुर है वह समझ गया विना सबूत के विन अपराध के कोइ कैसे पकडा जाय ? फिर उसे छोड दिया। रास्ते में जाते हुए रोहा ने मनमें विचार किया वाह २ ! आज तो मेरे बारा ही बज जाते बुरे हाल से मैं मारा जाता कौन जानता है कि ये मेरा क्या करते। परन्तु सच-मुच आज तो मुझे विना इच्छा के उस रास्ते में श्रवण की हुई वीर भगवान की वाणी ने ही बचाया है। धन्य है उस वाणी को ? मैंने मूर्ख पिता जी की शिक्षा मान अपनी आत्मा का बुरा किया। विना इच्छा के सुने हुये इन चार वचनों से तो मेरा अथाह लाभ किया, तो जो मे श्री वीर प्रभु का ही शरण ले हमेशा उनकी सेवा करू, तो कितना लाभ हो ? सच यह ससार ही असार है, स्वार्थी है मेरे पिताजी ने सिर्फ स्वार्थ के लिये मुझे प्रतिकूल रास्ते में लगा दिया था। इसलिये धिक्कार है इस स्वार्थ ससार को अब तो उन वीर प्रभु का ही शरण ले कर्म क्षय कारिणी दिक्षा ग्रहण करना योग्य है, परन्तु जिस अभयकुमार ने मुझे

ढूंढने के लिये युक्ति जाल रचा था, उन्हें मिलकर मैं चोर हूँ ऐसा प्रकट कर धन वापिस सार दिक्षित होऊँ। वाह? वीर गुरु वाह? कैसी आपकी वाणी है।

फिर दूसरे दिन सभा में जाकर, अभयकुमार से मिलकर कहा कि — साहब? जिस चोर को आप ढूंढते हो, वह मैं ही रोहा नामक चोर हूँ। फिर सब बीती हुई हकीकत कह सुनाई, और कहा कि मैं उस दिन बचा यह श्री वीर वाणी का ही प्रभाव है। अब मुझे उनके समीप दिक्षा लेना है इसलिये आप मुझे आज्ञा दीजिये। अभयकुमार यह सुनकर बहुत खुशी हुए, उसकी इच्छा दिक्षित होने की सुनकर उसके सब अपराध माफ कर दिये और अत्यन्त प्रसन्नता से आज्ञा दी। फिर रोहा चोर ने सब धन सौंप कर श्री वीर गुरु के समीप अपने हाथ से दिक्षा दिलाई। दिक्षा लेने के पश्चात् अभयकुमार अपना सिर झुका कर तिखुत्ता के पाठ से विधि सहित नमस्कार कर अपने घर गये।

फिर रोहा मुनि ने अत्यन्त तपस्या, जप आदि किये अनुष्ठान कर काल के समय सब जीवों को क्षमा कर शान्तभाव से काल कर सद्गति को प्राप्त हुए।

रोहा चोर का दृष्टान्त यहां पूर्ण हुआ। दृष्टान्त का सार यह है कि, चाहे जैसा पापी हो, अधमाधम कुकृत्य कर अपनी जिन्दगी व्यतीत कर रहा हो, परन्तु सद्गुरु के समागम से या उनके मुख की वाणी सुनने पर अवश्य वह प्राणी उन्नति पथ पर लग जाता है। उपरोक्त दृष्टान्त में रोहा चोर की अनिच्छा से सुने हुए चार शब्दों से कसौटी के समय अथाह लाभ पहुंचा और उसने उन्मार्ग त्याग सन्मार्गगामी बन अपना जीवन सुधारा, इसी तरह हलके कर्म वाले जीव सद्गुरु का समागम कर जीवन सुधार के मनुष्य जन्म सफल करते हैं। दूसरा सार यह निकलता है कि —स्वार्थी मनुष्य रोहा चोर के पिता जी की तरह सन्मार्ग से भ्रष्ट कर उन्मार्ग पर लगा देते हैं, सन्मार्ग को झूठा मार्ग दिखाते हैं। भोले जीवों को भ्रान्ति में डाल देते हैं और संसार सागर में डुबा देते हैं, परन्तु कभी सच बात नहीं मालूम होने देते। चाहे स्वार्थी मनुष्य प्रतिकूल रास्ते पर लगा दे, परन्तु जो उसका भाग्योदय हुआ तो चाहे जिस तरह वह सन्मार्गगामी बन जाता है। इसलिए विवेकी मनुष्यों को हमेशा सद्गुरु का शरण लेना चाहिए, कि जिससे यह अपार भवसागर का पार कर अजर अमर हो अक्षय मोक्ष लक्ष्मी पावें। एक कवि कहते हैं —

कवितः-जैसे कपड़ा को थान, दरजी वेतत आरा;
खएड २ करे जाण, देत सो सुधारी है;
काट के ज्युं सूत्रधार हेमक, करे सुनार,
माटी के जो कुंभकार, पात्र करे त्यारी है;
धरती के कीरसाण, लोह के लुहार जाण,
सीलावट सीलाआण, घाट घडे भारी है;
केतहे तिलोखरिख, सुधारे ज्युं गुरु शिख,
गुरु उपकारी नित, लीजे बलीहारी है;

इसलिये सदा सद्गुरु की सेवा करो, क्योंकि संसार में वे भी सच्च सगे हैं, बाकी संसारी सगं सम्बन्धियों से कुछ आत्मा का भला न होगा। सच्च सद्गुरुको निकट सम्बन्धी समझ हमेशा सद्भावसे उनका शरण स्वीकार करो।

कवित्त--गुरु मित्र गुरु मात, गुरु सगा गुरु तात।
गुरुभूप गुरु भ्रात, गुरु हितकारी है॥
गुरु रवि गुरु चन्द्र, गुरु पति गुरुइंद्र।
गुरुदेव दे आनन्द, गुरुपद भारी है॥
गुरु देत ज्ञान ध्यान, गुरु देत दान मान।
गुरु देत मोक्ष स्थान, सदा उपकारी है॥
केत है तिलोकरिख, भली भली देत सीख।
पल पल गुरु जी को, वन्दना हमारी है॥



हे त्रैसलेय ! मम मोह महांध कारम् ।
दूरी करोतु भुवनैक कृपावतार ! ॥
हे दान दक्ष ! प्रददातु च मोक्ष लक्ष्मीम् ।
अभ्यर्थना ननु ममैव भवत्सकाशे ॥ ३ ॥



अर्थ—तीनलोक में कृपा के अवतार श्री महावीर प्रभु ! मेरा मोह महान्धकार नष्ट करो । हे दान दक्ष प्रभु ! मुझे तो मोक्ष लक्ष्मी ही दो, यही आप से इस एक दास की सदा अत्यन्त विनय भाव एवम् नम्रता पूर्वक प्रार्थना है ॥ ३ ॥

भावार्थ—तीन लोक में एक कृपा के साक्षात मूर्तिमान श्री महावीर प्रभु ! आप मेरे मोहान्ध कार को नष्ट कीजिये तथा हे दानदक्ष ! अभयदान ज्ञानदान देने में निपुण हे भगवान ! मुझे तो सचमुच (मोक्ष लक्ष्मी) कभी भी नाश न होने वाली अखण्ड मोक्ष लक्ष्मी दीजिये यही मेरी आप से प्रार्थना है । कारण कि इस मोक्ष लक्ष्मी समान महा लक्ष्मी कभी किसी समय आज तक प्राप्त न हुई और यह लौकिक लक्ष्मी में मस्त बनी हुई यह जीवात्मा मोह की खान में गिर कर महा दुःख का पात्र बनी । परन्तु आप जैसे दानदक्ष प्रभु का समागम नहीं हुआ । यह तो ठीक ही है कि जो लक्ष्मीवान होगा वह दूसरों को लक्ष्मी दे सकेगा, परन्तु दरिद्री के पास लक्ष्मी की याचना करने से वह लक्ष्मी नहीं दे सकता । इसलिये हे सर्वज्ञ प्रभु ! मैं इस जगत में अज्ञानता से मोह महांधकार में फस रहा हूं, भव भ्रमण में भटक रहा हूं जन्म, जरा, मृत्यु के दुःख से दुःखित होरही हूं तथा आधि व्याधि, और उपाधि के अतल भार से दब रहा हूं, मेरा शुद्ध स्वरूप मैं भूल गया हूं, कर्तव्य त्याग अकर्तव्य के कनिष्ट कर्म कर रहा हूं । आप इन सब से मुक्त हैं, अमूल्य केवल लक्ष्मी के स्वामी हो, दुनियाँ में महापरोपकारार्थ आप विचर कर भूले भटके भव्य भक्तों को सन्मार्ग दिखाते हो, अंधकार को दूर करने के लिये सूर्य वत्

प्रकाशित हो। अर्जुन माली जैसे घोर कर्म करने वाले महा पापी मनुष्य भी प्रेम पूर्वक आपके चरणार विंद को उपासना करने से एवम् आप श्री की कृपा से अमूल्य केवल श्री पाये हैं। इसलिये एक महात्मा ने आप की स्तुति करते हुए कहा है कि:—

❀ त्रिभंगी छन्द ❀

नर नारी तार्या पाप विदार्यां, कार्य सुधार्या भवतार्या।
सहु तुझ थी ठार्या, यहेम विसार्या मोक्ष पधार्या अणगारा ॥
देवत दातारा निधी भण्डारा, भय हरनारा तरनारा।
जय जगदाधारा मोहनगारा, भय हरनारा तरनारा ॥ ॥ १ ॥
जय २ सुखदाता तू पितु माता, भाविक भ्राता कर शाता।
तुज निकट ठराता ज्ञानि गणाता, तुझ सम थाता एकाता ॥
हे तुझ रसराता निश्च विख्याता, गुणनी गाथा गणनारा ॥ जय ॥ २ ॥
जय २ करुणाला प्रभु दयाला, सुखकरमाला गुणधाला।
जय झाकजमाला धैर्य विशाला, श्यामसुपाला यश वाला ॥
नर नारी वाला मोहन माला, अमृत प्याला पीनारा ॥ जय० ॥ ३ ॥

तो हे प्रभु ! मेरा दुःख दारिद्र दूर करो। मैं आप से अन्य कोई संसारिक पदार्थ नही याचता, कारण कि वे वस्तुएं तो इस जीव को कई वक्त मिल गई है, परन्तु कुछ सार न निकला।

आप के चरण विना सब जगह दुःख का भंडार ही बना, श्री अष्टावक्र गीता में कहा है कि —

सुखा द्दुतर दुःख। जीवितें नात्र संशय ।
स्निग्धत्व चेन्द्रियार्थेषु । मोहान्मरणमप्रियम् ॥ १ ॥
माता पितृ सहस्त्राणि। पुत्रदारशतानि च।
अनागतान्यतीतानि। कस्य ते कस्य वा वयम् ॥ २ ॥

अर्थात्—सांसारिक बहुत सुख भोगने से अत्यन्त दुःख प्राप्त होता है। विषयादि पदार्थों में जितना स्नेह होगा उतना ही बन्धन दृढ होगा। मोह से मृत्यु अप्रिय है। अनंत वक्त माता पिता पुत्र दारा यों परस्पर सम्बन्धी हो गए

हैं, होने हैं और होंगे। इसलिये कौन तो मेरा है ? और मैं किसका हूं? अकस्मात् प्रवास में धर्मशाला रूपी मय का सम्मेलन हुआ है। यह सब बाह्य भाव है, मोह का प्रभाव है, मोह मदिरा के पान से प्रतिकूल भाव उत्पन्न होते हैं। असत्य होते भी सब सत्य जचता है। सीधी पड़ी हुई मोती की थाल में चांदी का भ्रम होता है। इस विषय में अष्टा वक्र गीता में कहा है।

आत्म ज्ञाना दहो प्रीतिः। विषय भ्रम गोचरे।
शुक्तेर ज्ञान तो लोभो। यथा रजतविभ्रम ॥ १ ॥

यत्र यत्र भवेत्तृष्णा। संसार विद्धि तत्र वै।
प्रौढ वैराग्यमाश्रित्य। वीत तृष्ण सुखी भव ॥ २ ॥

स्वप्नेन्द्र जाल वत्पश्य। दिनानि त्रिणि पंच वा।
मित्र क्षेत्रधनागार। दारादायाद सम्पद ॥ ३ ॥

राज्य सुताकलत्राणि, शरीराणि ।सुखानि च।
ससक्तस्याऽपि नष्टानि। तव जन्मनि जन्मनि ॥ ४ ॥

कृत न कति जन्मानि। कायेन मनसा गिरा।
दुःख मायास्त्व कर्म।तदद्या प्युपरम्यताम् ॥ ५ ॥

अर्थात्—जहां तृष्णा है वहां बंध है और वही संसार है। इसलिये हे मुमुक्षु! तृष्णा त्याग कर सुखी हो जा। कारण कि मित्र, क्षेत्र, धन, दारा, कुटुम्ब सम्पत्ति इत्यादि पदार्थ स्वप्न की इन्द्र जाल के समान हैं, तीन या चार दिन के मेहमान हैं और राज कलत्र इत्यादि वैभव सुख जन्म २ में तू त्याग कर आया है और हर एक जगह उनका नाश हुआ है। प्रत्येक जन्म में मन, वचन और काया से जो कर्तव्य करना थे वे न किये। प्रत्येक जगह दुःख देनेवाले कर्म ही पेदा किये, इसलिये अब भी कर्म त्याग संतोष धारणकर सुखी बन। ऐसा अपूर्व सद्बोध निःकपटता से सुनाने वाले परम् हृदय को पवित्र करने वाले आप ही हैं। भवसागर में भूले हुए प्राणियों को आधार भूत परम् लगाने वाले आप ही हैं। आपके गुण अकथनीय हैं, आप अगम्य हैं अगोचर हैं। कहा है कि—

अनन्त विज्ञान मतीतदोषं। मबाध्य सिद्धान्त ममर्त्य पूज्यम्।
श्री वर्द्धमान जिनमाप्त मुख्य। स्वयं भुवं स्तोतुमहं यतिष्ये ॥ १ ॥

अर्थात्—अनन्त ज्ञान के स्वामी, अठारह दोष रहित, जिनका सिद्धान्ततत्व सब को अबाध्य है जिनके चरण कमल चौसठ इन्द्र और अन्य देवों से पूजित ह तथा आप्त जनों में मुख्य ऐसे **श्री वर्धमान जिनेश्वर** भगवान कि जो स्वय बुद्ध है उन प्रभु की स्तुति करता हू अर्थात् सर्व गुण सम्पन्न श्री वीर प्रभु ! मेरी रक्षा करो, मोहांध कार नष्ट करो और इस सेवक को मोक्ष लक्ष्मी दो, यही आपसे सविनय प्रार्थना है। ससार सागर में भूले हुए मनुष्यों को एक आप ही शरण भूत और उपदेश दे सीधी राह पर चलाने वाले हो।

❀ महावीर प्रभु की स्तुति ❀

प्रभु तमारे शरणे आव्यो, आ जीवदास तमारोजी।
महेर करीने महावीर स्वामी, मुझने पार उतारोजी॥
सागर रूपी आ संसारे, बेडला रूपी देहजी।
लक्ष चौरासीना फेरा निवारो, मांगु हूं प्रभु एहजी॥
दुःख दीधा घणाक जीवने समज्यो नहीं लगारजी।
विगत करूं तो पार न आवे, प्रायश्चितनो नहीं पारजी॥
चेती ले चेती ले जीवडा, जरूर मोक्षे जावुंजी।
निन्दा करतो जरा न डरतो, समज्यो नहीं लगारजी॥
झाड़ काप्या पगे चांप्या, लीला लाख करोड़जी।
सतगुरु केरी सीख न मानी, मुझमां मोटी खोड़जी॥
आभवसागरमां भूलो पडयो, मने पकडीने काढो वहारजी
जन्ममरणना फेरा निवारो, मांगुं प्रभ एहजी॥

जिनदास कहे जिनवरजी, पासे विनवे वारम्वारजी।
दास मूलजी कहे कर जोडी, ए छे साचो द्वारजी ॥

इस पर दृष्टान्त दे समझाते हैं कि —

श्री मेघकुमार का दृष्टान्त

पूर्व राज ग्रही नगरी में **श्रेणिक राजा** राज्य करते थे। उनके चेलणा रानी तथा अभयकुमार, मेघ कुमार इत्यादि बहुत से पुत्र थे। एक दिन **श्रीवर्द्धमान प्रभु** विहार करते हुए वहाँ पधारे। उन्हें वंदना करने के लिए श्रेणिक राजा अभयकुमार, मेघकुमार इत्यादि राज्यमंडल गया। सविनय नमस्कार कर सब धर्मोपदेश सुनने के लिए बैठ गए। प्रभु ने धर्म देशना फरमाई।

गाथा-छंद वैतालीय.

संबुज्झह किं न बुज्झह। संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हुयो विण पुणराइउ। णो सुलह पुणरावि जीवियम् ॥ १॥
डहरा वुड्ढाय पासगा। गभथा च्चियति माणवा।
सेणे जह वट्टय हरे। एवं आउखय मितुट्टई ॥ २ ॥

अर्थात्:—हे भव्य प्राणियो! समझो २। क्यों नहीं समझते हो? यह मनुष्यावतार सचमुच महान दुर्लभ है। मानव देह पूर्व पुण्य विना नहीं प्राप्त हो सकती। कितने ही बालक, युवा, और वृद्ध मनुष्य अचानक काल के झपाटे में आजाते हैं। जिस तरह बाज तीतर को पकड़ता है उसी तरह काल कसाई आयुष्य तोड डालता है उस समय इस जीव का कोई सगा या सहायक नहीं होता। संसार यह सचमुच विषवृक्ष है। फक्त उसके दो ही फल उत्तम हैं। वे ये हैं कि:—

संसार विष वृक्षस्य। द्वे एव रसवत् फले ॥
काव्यामृत रसास्वाद। संगमः सुजनै सह ॥ १ ॥

अर्थात्:—इस संसाररूपी विष वृक्ष में दो ही फल रस वाले प्रथम,

उत्तम है। एक तो उत्तम काव्य शास्त्ररूपी अमृत रस का आस्वादन करना और दूसरा उत्तम पुरुषों के साथ समागम। इनके सिवाय बाकी सब संसार विषमय ही है। इसलिये उत्तम जन्म पाकर आत्मा का हित अवश्य करना चाहिए यही सार्थकता है। यह उपदेश सुन कर सब अत्यन्त आनन्दित हुए। परन्तु मेघ कुमार के मन में तो भिन्न रीति का ही प्रभाव हुआ, उनका मन संसार अटवी से बिलकुल उदास होगया और संसार के समस्त वैभव पदार्थों से उन्हें अरुचि होगई। हृदय कमल में परम वैराग्य भाव प्रकट हो गया।

सल्लं कामाविष कामा। कामा आसि विसोवमा।
काम भोगे पत्थेमाणा। अकामा जंति दुग्गइ॥१॥

अर्थात्—सांसारिक काम भोगों को शल्य समान, विष समान और भयंकर विष धारी सर्प के समान समझने लगे। काम भोग में लीन हुए प्राणियों का यह अमूल्य अवसर बिलकुल वृथा चला जाता है। इसलिये संयम यही संसार से उद्धार कराने वाला अमूल्य पाथ है। इस विषमय संसार बंदीगृह का सर्वथा परित्यागकर **श्री महावीर प्रभु के** चरण सरोज का हमेशा के लिये मैं सेवक बनूं। ऐसा दृढ़ निश्चय करके घर आ कर माता पिता से दिक्षा लेने के लिये अनुमति मॉगी। माता पिता ने बहुत समझाये। संयम पथ के विकट संकटों का दिग्दर्शन कराया। परंतु संयम प्रेमी मेघ कुमार ने अंतमें कहा कि ,—

गीति—दृढ निश्चय छे मारो, नथी पापमां कदि पाय देवो।
विकट हशे पण तोये, सुखद संजमनो मार्ग लेवो॥

बडे समारंभ के साथ मातापिताने उन्हें दिक्षा दिलाई। दिक्षा लिये पश्चात् माताने फरमाया कि—प्यारे पुत्र। जिस भावसे तूने संजम रूपी विकट प्रतिज्ञामें प्रवेश किया है, उसीभावसे उसकी प्रतिपालना करना क्योंकि अपूर्व सद्भाग्य के उदय से प्राप्त हुए महाव्रत रूपी पॉच महा रत्नों के लुटेरे चोर बहुत मिलेंगे। जहॉ धन है वहां भय है; जहॉ व्रत है वहॉ बहुतसी कठिनाइयां आजातीहै। इसलिये कषाय रूपी चोर तुम्हारे बहुत मूल्य वाले रत्न लूट न ले जाय, विषय रूपी विहग चारित्र रूपी उद्यान को हानि न पहुँचायें, इसलिये तेरे सुंदर आराम की बराबर संभाल रखना और शुद्ध भाव से विचर कर अक्षय मोक्ष लक्ष्मी के अखंड भुक्ता बनना, यही हमारी सदैव के लिये शुभाशिष है। इतना कह कर

सब मण्डल वापिस गया। फिर उन्होंने **श्री महावीर प्रभु** गौतम स्वामी इत्यादि सब साधु मुनिराजोंको विधियुक्त वंदना की और मुनि कल्पव्यवहारानुसार बिलकुल सबसे नीचे उनका आसन मिला यह उन्हों ने हर्षपूर्वक स्वीकार किया।

फिर सायंकाल के प्रतिक्रमण पश्चात् सज्झाय कर शयन किया। थोडी ही देर में एक महात्मा किसी कारण वश बाहिर जाने लगे, अत के आसन पर सोये हुए **मेघ मुनि को** उनकी ठोकर लगी कि तुरत मेघ मुनि जाग्रत हो गए। कई मुनियों के इकट्ठे होने से बार २ शब्दारव होता था और रात को अंधकार होने से मुनियों की ठोकरें भी उन्हें बार २ लगती थीं जिससे मुनि को निंद्रा भी न आई। मेघ मुनि एकदम घबरा गये और उनके परिणाम बदल गये। मन में विचार किया कि यह दुःख कैसे सहूं? यह तो दुःख हमेशा रहेगा, रोज की ठोकरें मुझ से नहीं सही जायँगी। एक दिन में ही यह असह्य कष्ट हो गया तो इस स्थिति में समस्त जीवन कैसे बिताऊंगा। **श्री महावीर प्रभु** मुझे दीक्षित कर सबसे लघु शिष्य करेंगे, यह मुझे स्वप्न में खबर होती तो इस कारागृह में प्रवेश न करता। परन्तु अब भी क्या बिगड गया है, मैंने अभीतक **श्री महावीर प्रभु के** घर का पानी भी नहीं लिया है, न कुछ मैंने खाया है, इसलिये सवेरे जल्दी उठकर अपने घर जाऊं और इस बलासे छुटूं। यह कष्ट मय कारागृह मुझ से असह्य है।

माता पिता ने मुझे बहुत समझाया था। परन्तु मुझ मूर्ख ने उनकी बात न मानी अब बिना घर गये कल्याण भी नहीं है। कारण यह समस्त जीवन की शूली असह्य है। घरको जाऊं तो अवश्य ही, परन्तु **महावीर स्वामी** से कह कर जाऊं, चुपचाप जाना अयोग्य है। मैंने कुछ प्रभु की चोरी नहीं की है, पात्र वस्त्र झोली इत्यादि सब मेरे ही है, कुछ **महावीर प्रभु ने** नहीं दिये है। फिर चुपचाप क्यों चला जाऊं। सवेरे **वीर प्रभु से** मिलकर अवश्य अपने घर जाऊंगा। यों आर्तध्यान ध्याते समस्त रात बिताई। ऐसे २ क्लिष्ट विचारों में लीन हो जाने से उन्होंने प्रातःकाल का प्रतिक्रमण भी नहीं किया। सुबह होते ही अपने-घर जाने के लिये, खबर देने को मेघ मुनि श्री

महावीर प्रभु के समीप पधारे। श्री सर्वज्ञ प्रभु तो रात के समस्त विचार जान चुके हैं अपूर्व संयम गुण ग्रहण किये बाद भी मनुष्यों के हायमान वर्द्धमान विचार कैसे २ हो जाते हैं ? अहा ! इन नव दीक्षित मुनि को कर्म ने कैसा धोखा दिया ? कर्म की सत्ता अपूर्व है। मेघ मुनि घर जाने की इच्छा से आज्ञा लेने के लिये प्रभु के समीप आकर खड़े रहे।

प्रभु को देखते ही उनके परिणाम बदल गए। अपूर्व देह कान्ति से दिल दबाया, वे शून्यसे बन गए। उनके तेजसे घबराकर मनमें विचार करने लगे कि महावीर प्रभुसे कैसे कहूं कि मैं घर जाता हूं। लज्जित से बेभान रहित हो वे वहां खडे रहें। थोडी ही देर में दयालु महावीर प्रभु बोले कि आओ मेघ मुनि ! क्या तुम्हें घर जाना है ? आज रात को तुम्हें बहुत कष्ट हुआ, रातके चारों प्रहर तुम्हें जागरना करनी पडी। परन्तु हे मेघ मुनि ! जरा सोचो तो तुम्हें मालूम होगा कि तुम किसकी सन्तान हो? तुम्हारी क्याजाति है ? तुम्हारा कुल कौनसा है ? ऐसा करने से तुम्हें ही लज्जित होना पडेगा, दूसरों का क्या बिगडेगा ? तुम सिर्फ साधुओं की ठोकर से दुःख मान रहे हो, परन्तु तनिक ज्ञान दृष्टि फैलाकर देखोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि नरक गति में इस जीव ने कैसे २ विषम दुःख उठाये हैं ? पशु पक्षी की ज्ञाति में कैसे २ असह्य दुःख भोगना पडे है ? तुम स्वयं पूर्व जन्म में हाथी थे। एक दया के कारण ही तुम राजकुमार का अवतार पाये। मेघ मुनि यह सब सुनकर बिलकुल स्तब्ध हो गए। अपने दिल की तरंगे न मालूम कहां हवा हो गई। फिर प्रभु कहने लगे कि — हे मुनि उत्तम साधु पुरुषों की चरण रज लेने के लिये तो कई पुरुष सख्त परिश्रम उठाते हैं और उसी चरण रज से तुम दुःखमान रहे हो ? परन्तु हाथी के भव में तुम्हें कैसा असह्य दुःख हुआ उसे तो तनिक सोचो।

❁ वसंत तिलका वृत ❁

सुसाधु चरण रजथी दिल दुःख लावे, चिंतामणि व्रत तजी उर भोग ध्यावे,
जे गज भवे दुःख सह्यां अति खेदकारी, तो अल्प दुःख थकी आज शुं जाय हारी
ना तुझ ने वच्छ घटे अघटित एवुं, त्यागेल भोग वली तेह शुं चित्त देवुं,
बलशे तथापि नहिं विष ग्रहेज नाग, तेजोज था दृढ चित्ते तु महानुभाग ॥२॥

श्री वीरवाक्य श्रवणे सुणीने कुमार, एकाग्रचित्त मुनि मेघ करे विचार।
शुभोध्य साय थकी निर्मल ध्यायु ध्यान, पाम्योज पूर्व भवतणु मुनि मेघ ज्ञान ॥
जे गजभवे अगनिदाह थकी डरेलो, तत्पश्चात् जे थइ कर्दममां कलेलो।
त्यार्थी चवी गज तणो भव जे करेलो, दीठा प्रत्यक्ष दावानलमां बलेलो ॥

श्री वीर प्रभु ने समस्त पूर्व भव का वृतांत कह सुनाया। जिसे सुनकर मेघ मुनि विचार करने लगे। सोचते२ उन्हें जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया। हाथी के भव में सहा हुआ दुख प्रत्यक्ष देखा। एक खरगोश की दया पालने से यह उत्तम मनुष्य पदवी प्राप्त हुई है, यह उन्होंने साक्षात देख लिया। उच्च स्थान से भ्रष्ट हुआ मन पीछा स्थान पर आ गया। अपनी भूल का पश्चाताप करते हुए दोनों हाथ जोड कर वे कहने लगे हे कृपालु प्रभु! अब मैं घर जाना नहीं चाहता, आप ने मुझ पर बहुत कृपा की। मुझे गज भव का स्मरण दिला मेरी मोह निद्रा आपने दूर कर दी। मेरे हृदय चक्षु खुल गए। गहन भयंकर भव सागर में डूबते हुए मुझे आपने बचा लिया। आपको मेरा सदा नमस्कार हो।

तुभ्यं नमस्त्रि भुवनार्तिहरायनाथ। तुभ्यंनमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रि जगतः परमेश्वराय। तुभ्यं नमोजिन भवोदधि शोषणाय ॥

अर्थात्—त्रिभुवन के कष्ट हरने वाले हे प्रभु! आपको मेरा नमस्कार हो। पृथ्वी के निर्मल अलंकार समान, आप को मेरा नमस्कार हो। हे त्रण जगत के प्रभु! आपको नमस्कार हो। मेरे भव दधि को सुखाने वाले हे जिनेश्वर प्रभु! आप को मेरा नमस्कार हो। अधमाधम मोह के फंदे में गिरकर मैंने बुरी कल्पना की। अज्ञानांधकार में छिप गया, मोह में डूब गया, लोभ में लीन हो गया, जिससे उत्तम साधु धर्म से भ्रष्ट हो कनिष्ट विचार दिल में लाया। परन्तु हे प्रभु! आप के उपदेश से अब मैं आप के सन्मुख प्रतिज्ञा करता हुआ हूं कि इन दोनों चक्षुओं को छोड बाकी के समस्त शरीर की मैं रक्षा नहीं करूंगा। शरीर का चाहे जो कुछ हो, सड जाय या गिर जाय तथा विध्वंस हो जाय मेरा शरीर से कुछ सम्बन्ध नहीं है। शरीर से मैं बिलकुल भिन्न हूं। पर घर में मोहित हो मैं अपने घर को भूल गया था। इसी लिए मुझे धिक्कार है सो बार धिक्कार है।

गीति—मापकरी सहु पापा, पापो कुमति मग्न अतय भापों।
स्थिर पदमां मुझ स्थापो, भवधर्मी हु सदा जपु जापा ॥ ७ ॥

ऐसा कह वन्दना नमस्कार कर मेघ मुनि अपने स्थान पर गए। इस दृष्टान्त से यह तात्पर्य निकलता है कि **सर्वज्ञ प्रभु का** शरण सदा सुख दाई है। सब पापों का विनाशक है। इसलिए हे परोपकारी **श्री महावीर प्रभु !** मेरा अज्ञानान्धकार हर कर मुझे अक्षय मोक्ष लक्ष्मी दीजिये। यही मेरी आपसे बारम्बार प्रार्थना है।



निंदाकर्तरि भक्तिकर्तरि जने संभावमापत्स्यते ।
चित्तं चाभविष्यत् सरोरुहसमंसांसारिके पुद्गलं ॥
स्त्रैणं मातृनिभं भविष्यति तथा वित्तं च पंकं किल ।
स्वात्मानन्दरतिर्भविष्यति यदा शैवं सुखं तेतदा ॥



अर्थ —हे शिवसुखार्थी भव्यात्मा ! जब तू निन्दा करने वालों एवम् स्तुति करने वालों पर समभाव रखेगा, ससारिक पौद्गलिक सब पदार्थों से तेरा हृदय पद्म—कमल वत् रहेगा, संसार की समस्त स्त्रियों पर तू सच्चे अन्त करण से मातृभाव लावेगा, तमाम द्रव्य को कूडे कर्कट की तरह समझेगा और अपनी आत्मा में ही रमेगा। तब तुझे अक्षय मोक्ष लक्ष्मी सहित अजरामर अमूल्य शिव सुख प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

भावार्थ —सब मनुष्य सुख चाहते हैं कोई स्वप्न में भी दुःख नहीं चाहता। सुख प्राप्त करने के लिये अनेक उपाय करता है, इधर उधर फांफें मारता है। पुरुष अपनी २ मान्यतानुसार सुख मान बैठे हैं। कोई व्याह में ही महान सुख समझता है तो कोई द्रव्य प्राप्त करने में ही सुख समझता है, कोई वंश के वृद्धि करने वाले पुत्र से ही सुख मानता है, तो कोई देह को सुगन्धमय सुवासित रखने में ही सुख समझता है, कोई २ अपनी इच्छानुसार इष्ट और मिष्ट भोजन कर चलने फिरने एवम् मौज आराम करने में सुख प्राप्त हुआ मान

बैठे हैं। यों सुख की व्याख्या कई प्रकार से की जा रही है। परन्तु ये तो ऐहिक सुख मात्र है, सिर्फ इसी जीवन के साथी है। इन्हें भी प्राप्त करने में कभी महान् विकट संकट जाल में फस जाना पड़ता है और कदाचित ये सुख प्राप्त भी हो जाते है तो जल्दी ही इनका नाश भी हो जाता है। कई समय अनिच्छित आफत गिरि में दब जाना पड़ता है और कभी तो मृत्यु तक होने का समय आ जाता है, इतना ही नहीं मानवजीवन के अन्त समय तो इन्हें त्यागना ही पड़ता है, इसमें लेश मात्र भी असत्य नहीं है। कहा है कि —

शिखरिणी व्रत —अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वाऽपि विषया ।
वियोगे कोभेदस्त्यजति न जनोयत्स्वयममून् ॥
व्रजंतःस्वातंत्र्यादतुलपरितापाय मनस ।
स्वयंत्यक्ताह्येते शमसुखमनंत विदधति ॥ १ ॥

अर्थात् —बहुत लम्बे समय तक विषय भोगे जायें, परन्तु एक दिन ये अवश्य विलीन होंगे, इसलिए अपनी इच्छा से ही समझकर उन्हें त्याग देने से उनके वियोग का दुख न सहना पड़ता है। अपनी इच्छा के विरुद्ध जब उन सुखों का नाश होता है तब मन को अतुल परिताप उत्पन्न होता है। स्वयं जो विवेकी महाजन उन्हें जान बूझकर त्याग देते है उन्हें अनन्त शांति सुख प्राप्त होता है। तो भी मोह में मस्त हो कई अज्ञ मनुष्य ऐहिक क्षणिक सुख में ही लीन बन डूबे रहते हैं और इस सुख से ही समस्त सुख प्राप्त हो गया ऐसा अपने मन में मान लेते है।

दुनिया का बृहद् भाग इसी तरह सुख मान रहा है और इसी के लिए सतत् रात दिन प्रयास कर रहा है। कितने ही मानव ऐहिक सुखों में कोई अप्रिय अनिष्ट कारण पैदा हो जाने से उन सुखों को त्याग पारलौकिक शिव सुख प्राप्त करने की इच्छा से उत्साहित होते हैं और सब संकटमय संसार को त्याग देते हैं। त्यागने के पश्चात कई महान् पुरुष अघोर तप करते है, कई शिव सुख की आशा से अपनी देह को अनेक कष्ट देते है और कितने ही भयंकर पर्वतों की गुहाओं में वासकर फलाहारी बनते हैं कई पंचधुनीं तापते हैं ऐसे महान् कष्ट अज्ञानता से सहते है। परन्तु ज्ञान विना शिव सुख की आशा करना देहली जाने के लिए दक्षिण की राह लेने के समान है। कहा है कि —

यह यो बिल्कुल सच्च है कि संसार के समस्त प्राणी शुभाभिलाषी हैं। कोई भी प्राणी स्वप्न में भी दुःख नहीं चाहता, परन्तु सदैव सुख चाहता है, अगर वह हमेशा दुःखोपार्जन करने के कार्य ही करता रहे, तो सुख कैसे प्राप्त होसक्ता है? जहर भी खाना और जीवन का मनोरथ पूर्ण करना यह कैसे हो सक्ता है? परनिंदा आदि कृत्य तो जीवन को अवनति की खाई में डालने वाले हैं। सत्य, शील, संतोष आदि सत्कृत्यों द्वारा सम भाव प्राप्त करने में ही सुख है। प्रतिकूल कार्य कर सुख प्राप्त करने की इच्छा रखना भूल है। कहा है कि—

(प्रतिकूल कार्य कर सुख प्राप्त करने की आशा रखने वालों को उपदेश)

(थया छोरे पति—यह राग)

सुखी थाये कहो केम करीने, करी अवलां कामो,
  ज़हर खाइ खांते करीने, करे जीवतरनी आश,
  करी पापो, रे अमापो, दुःख आपो;
सुख मलवाने करो चाहना सदाय धन पामो.

  सामायक तो करे सामटी, पोषानो नहीं पार,
  व्रत रुडां, कृत्य कुडां, चित्त बुरां;
होय शियल शणगार विषे, तो जुलम घणा जाणो.

  सद्गुरु पासे सदा सांभले, व्याख्यान रुडी पेर,
  पण हाटे, धन माटे, शिर काटे;
परदारानो संग तजे नहिं, करे अधम कामो.

झूठ वचननो डर जराए, आणे नहिं दिलमांय,
तजे नीति शुभ रीति, धन प्रीति ;
कूड कपटनां काम करे ने, मुखे जपे रामो.

बे कर जोड़ी करे विनती, प्रभु ने वारम्वार,
सुख आपो, दुःख कापो, जपुं जापो ;
पण पापोनो पंथ तजे नहिं, क्यांथी सुख धामो.

अनीतिनो पंथज तजशो, भजशो श्रीभगवान,
शुभ भावे गुण गावे सुख पावे ;
विनय मुनि शुभ पंथ वरीने, भवोभव सुख पामो.

इस लिये ऊपर बताये अनुसार सदा सत्कार्य करो। जिससे **श्री सुदर्शन श्रावक** की तरह अवश्य सुख प्राप्त हो। सत राह पर चलने से पहिले अवश्य कष्ट प्राप्त होते हैं, परन्तु अन्त में सत्य की विजय हो सुख प्राप्त होता है।

शियल व्रत धारी सुदर्शन सेठ की कथा.

जम्बू द्वीप के दक्षिण भाग के अलंकार समान भरतखंड में, चम्पापुरी नामक नगरी है। वहां रणसिंह राजा के पुत्र राजा दधिवाहन न्याय मार्ग से प्रजा का पालन करते थे। वे राधा वेध साध कर अभया रानी को व्याहे थे। उसी राज्य में अतुल बल, धन, समृद्धि सहित अर्हद्दास नामक व्यापारी रहता था। उसकी भार्या अर्हद्दासी के उदर में कोई गुणवान जीव आया। हमेशा जिन धर्म में लीन और शुद्ध समयकत्व पालने में प्रस्तुत उस अर्हद्दासी ने शुभ दिन पुत्र रत्न का प्रसव किया। स्वजन वर्ग का सेठ ने सन्मान कर याचक वृन्द को

बहुत सा दान दिया और उस पुत्र का सुदर्शन रक्खा। अनुक्रम से बढते २ सेठ सुदर्शन धर्मशास्त्रों में पारगत विद्वान हो गया। किसी कवि का कथन है कि रूप यौवन से शोभित, उत्तम कुल में पैदा हुआ मनुष्य, विना विद्या के मनोहर परन्तु सुगन्ध रहित केशू के फूल समान शोभा नहीं देता तथा पण्डित पुरुषों में सब गुण ही होते हैं और मूर्ख मनुष्यों में सब दोष ही होते है। इस लिये हजारों मूर्ख भी इकट्ठे हो जाय तो उनमें एक भी बुद्धिशाली मनुष्य नहीं बन सकता। फिर सुदर्शन सेठ का उसके पिता ने मनोरमा एक श्रेष्ठ की लड़की से बडे समारोह के साथ व्याह कर दिया। उसके साथ वह सेठ संसार के सुख भोगता और सम्यक्त्व व्रत पालता था। सम्यक्त्व ही बोध बीज वृक्ष का मूल है, पुण्य रूपी नगर का द्वार है, मोक्ष रूपी महल की पीठिका है, तथा सब सम्पति का निधान है। जिस तरह समुद्र रत्नों का भण्डार है उसी तरह सम्यक्त्व सब सद्गुणों का भण्डार है। चारित्र रूपी धन का पात्र है। भला ऐसी सम्यक्त्व की कौन प्रशंसा न करे? पुत्र को अपने घर का भार धारण करने योग्य समझ पिता ने दीक्षा धारण की। पितासे भी अधिक गुणवान होने से वे राजा के विशेष मानीते हो गये। जिस तरह पानी के कुंभ से उत्पन्न हुए अगस्त्य मुनि कुंभ समान समझकर समुद्र को पी गए। इसी तरह कभी पुत्र भी अपने चारित्र से पिता की अपेक्षा अधिक वृद्धि पा जाता है। उसी गाव में कपिल नामका एक राज पुरोहित रहता था, उसके साथ सुदर्शन सेठ की मित्रता होगई। वह कपिल पुरोहित विशेषकर सुदर्शन सेठ के यहाही रहता था, इसलिये एक समय उसकी स्त्री कपिला ने पूछा कि—हे स्वामी! आप हमेशा कहा रहते है? पति ने कहा—प्रिये! मैं मेरे मित्र सुदर्शन सेठ के यहा रहता हू और ज्ञान चर्चा करता हू मैं उसकी क्या प्रशंसा करू? वह रूपमें कामदेवके समान, वानी में बृहस्पति के समान, बुद्धि में बुद्ध समान, तेज में सूर्य समान, शीतलता में चन्द्र समान, कर्मच्छेद में मङ्गल के समान, ज्ञान में शुक्र के समान और कुकर्म की मन्दता के कारण शनि समान है। अधिक क्या कहू? एक शील गुण के कारण ही वह सर्वोत्तम है, उसे विधाता ने सर्व गुण सम्पन्न रचा है। अपने पति के मुँह से सेठ सुदर्शन की इतनी प्रशंसा सुनकर कपिला उस पर मोहित हो गई, कहा है कि—हास्य से, हाव भाव से, मद से, लज्जा से और तिर्छी चितवन से, अर्द्ध कटाक्ष फेंकने से, वानी से, हर्ष से, कलह से और लीला से स्त्रियां किसी को भी अपने बन्धन में कर लेती है। उस सेठ के साथ

संगम करलेकी चिंता करनेलगी। एक समय उसका पति कपिल पुरोहित किसी कारण वश दूसरे गाव गया। उस अवसर को ठीक समझ झूठा बहाना लेकर वह सेठ सुदर्शन के घर आई और कहने लगी कि -"आपके मित्र को ज्वर आया है, इसलिये वे आपको बुलाते है और मै इसीलिये आपको बुलाने आई हूं, आप विलम्ब न करें और जल्दी चलें"। सुदर्शन सेठ ने कहा मुझे मालूम न था तुमने अच्छा किया कि मुझे बुलाने आ गई। वह सब कार्य त्याग चट मित्र के घर गया और घर में घुसने के पश्चात् कपिला ने सब द्वार बन्द कर दिए घर के अन्दर जाने पर कपिला बोली " हे स्वामी! मैं बहुत दिनों से आपका समागम चाहती थी, अब यह शरीर और यह शय्या आप के स्वाधीन है, स्वतन्त्रता से भोग भोगिये!" परन्तु इतना कहने पर भी जब कपिला को मालूम हुआ कि वह नहीं मानता है तब वह उसका अंग छूने लगी, परन्तु सुदर्शन सेठ को तनिक भी मन विकार उत्पन्न न हुआ, उसने कपिला से कहा -"अरे तुझे किसी ने भ्रम में डाल दिया है? मैं तो नपुन्सक हूं। तू यह बात किसी से मत कहियो।" फिर कपिलाने कहा -"अब आप भी मेरे इस दुश्चरित्र की कथा कहीं न कहिये"। मै आपको छोड देती हूं। घर आकर सुदर्शन सेठने अभिप्राय किया कि " मुझे किसी के घर जाना ठीक नहीं है"। एक समय वसंत ऋतु में राजा अपने महान् ऐश्वर्य सहित उद्यान में क्रीडा करने गया। महारानी अभया देवी भी हाथी पर बैठकर कपिला के साथ वहां आई। मनोरमा सेठानी भी अपने छै पुत्रों के साथ वसन्तऋतु की शोभा देखनेके लिये चली और सेठ सुदर्शन भी उसी उद्यान में आया। वहाँ मनोरमा और उसके छै पुत्रों को कपिला ने महारानी अभया देवी को पूछा कि " यह किसकी स्त्री है? ये पुत्र किसके हैं?" अभया देवी ने कहा -" यह स्त्री तथा पुत्र सुदर्शन सेठ के हैं"। तब कपिला ने कहा कि "जब मैंने उसकी परीक्षा की, तबतो वह कहने लगा कि मैं नपुंसक हूं"। यह सुनकर अभयादेवी ने कपिलासे कहा "तुझे उसने ठग लिया"। कपिला ने कहा "यह सच है परन्तु आपकी होशियारी भी तभी मालूम होगी जब आप उसके साथ क्रीडा करें"। रानी ने कहा " मुझे अभया देवी तब ही सच्ची समझना कि जब मैं उसे वश करलूं"। एक समय रानी की सखी पण्डिताने उससे पूछा "हे सखि! तुझे क्या चिन्ता है?" तब रानीने सब अपना वृतान्त यथास्थित कह सुनाया। तब पण्डिता ने कहा " कदाचित् मेरु शिखर चल जाय परन्तु सेठ सुदर्शन अपने व्रत से नहीं डिगेगा। उसको परस्त्री माता, बहिन के समान

है।" तब अन्त में रानी ने उसके दर्शन ही करा देने को पण्डिता से कहा और पण्डिताने कहा कि ' अवश्य पर्व के दिनमें कपट कर उसे यहां ले आऊंगी।" इतने ही में कौमुदी महोत्सव आया। उस समय राजा ने ढोंडी बजवाई जिससे समस्त अन्तःपुर तथा दूसरे सब लोग महोत्सव करने के लिए नगर से बाहर आए।परन्तु अभयारानी अपना सिर दुखने का बहाना लेकर महलमें ही सोरही। फिर सुदर्शन सेठ राजा की आज्ञा ले अपनी पौषधशाला में जा काउस्सग्ग ध्यान में लीन हो गया। वह पण्डिता दासी ने ऐसी युक्ति की एक यक्ष की प्रतिमा अपनी पालखी में बिठा उस पौषधशाला के वहां ले गई और जब पीछे आने लगी तब काउस्सग्ग में ही स्थित रहे सेठ सुदर्शनको उस पालकी में बैठा कर महलमें लेआई। तब अभयारानी ने कहा " हे सेठ सुदर्शन! मेरे साथ भोग भोग "। ऐसा वार २ कहने पर भी जब सेठ सुदर्शन कुछ न बोला तब अन्त में रानी ने कहा "जो तू मेरा वचन नहीं मानेगा तो मैं तेरे प्राण लेलूंगी।" इस तरह रानी ने बड़ा भारी भय बताया।

छप्पय:-नारी नीच स्वभाव, अजीत नव जाये हारी;
परपुरुष शुं मग्न, मरदने नांखे मारी.
विह्वलचित्त मन मदन रुदन करती वण वांके;
साची कोई न दीठ झूंठ अति आडे आंके.
शिखामण तेनी सांभली, मनमां तुरत न मानिये;
शामल कहे कदि शाणी घणी पण प्रेमदा मति-
पानिये.

इतना करने पर भी सेठ ने रानी का वचन स्वीकार नहीं किया तब रानी ने चिल्लाकर बड़े स्वर से पुकारा कि "अरे! कोई आओ यह दुष्ट मेरा शियलव्रत भङ्ग करने आया है।" इतने में राज्य पुरुष दौड़ आये और सेठ को राजा के पास ले गए। राजा उससे पूछने लगे परन्तु पौषध भङ्ग होने के डरसे सेठने कुछ भी उत्तर न दिया, राजा ने क्रोधित हो उसे शूली पर ले जाने का हुक्म दिया। जिससे राज्य पुरुष उसे गांव में फिरा कर श्मशान भूमि पर ले गए।

उधर मनोरमा सेठानी अपनी स्वामीनाथ की ऐसी बुरी दशा देख कर विचारने लगी कि " मेरे पति ऐसा कभी न करेंगे ।" मैं अब कायोंत्सर्ग करती हूं और जब तक मेरे पति का यह विघ्न नष्ट न होगा, वहां तक मैं ध्यान ही ध्याऊंगी। उधर सब राज्य पुरुष मिलकर सुदर्शन सेठ को श्मशान भूमि में ले गए और शूली पर चढा दिया। उस समय सुदर्शन सेठ मन में तनिक भी न डरे और नीचे लिखे हुए श्लोक बोले —

❀ श्लोक ❀

न भीतोमरणादस्मि, । केवल दूषित यश ॥
विशुद्धस्य हि मे मृत्यु । पुत्र जन्म सम किल ॥ १ ॥
अपापाना कुले जाते । मयि पाप न विद्यते ॥
यदि सभाव्यते पाप । अपापेन च किं मया ॥ २ ॥

अर्थात्—मैं मृत्यु से नही डरता। डर तो सिर्फ मुझे मेरे यशके दूषित होने से लग रहा है। मेरे विशुद्ध मन को यह मृत्यु पुत्र जन्मोत्सव ज्यों मालूम हो रही है। मै विशुद्ध वश में उत्पन्न हुआ जिसमें आज तक पाप नहीं हुआ अगर कुल में हुआ भी तो उससे मुझ अपापी को क्या? मेरी मृत्यु चाहे हो ही जाय, परन्तु मेरा शियल व्रत भङ्ग न हुआ। पश्चात शूली पर जाते ही उनने पंच परमेष्ठी का स्मरण किया कि चट शासन देवताओं ने शूली का सुवर्ण सिंहासन बना दिया। यह सपूर्ण बात सुनकर राजा वहाँ आया और प्रत्यक्ष सेठ को सिंहासन पर बैठा देख आश्चर्य चकित हुआ। इतने में शासन देव ने फरमाया कि "जो कोई इस सेठ का बुरा चाहेंगे उसके हम प्राण ले लेंगे कारण यह महा शियलव्रत धारक है। फिर राजा सुदर्शन सेठ को बड़े महोत्सव के साथ घर ले गये। उन्हें वैराग्य प्राप्त हुआ। इसलिये उन्होंने सयम धारण कर सब कर्मों का नाश किया और केवलज्ञान प्राप्त किया तथा अपने शियल के प्रभाव से प्रभावित हो अन्त में मोक्ष पद पाया। सती मनोरमा भी संयम ग्रहण कर कर्म को विलीन करके मोक्ष पधारीं। पश्चात् अभयादेवी रानी को राजा ने बड़ा भारी शिक्षा (दन्ड) और अन्त में अपने देश से निकाल दी।

इस दृष्टान्त से यह सार ग्रहण करना है कि जो पुरुष निन्दा एवम् स्तुति में समभाव रखते हैं, उन पर कदाचित् पूर्व कर्मोदय से कोई सकट भी आ पड़े

तो भी वे उससे न डर धैर्य पूर्वक उस सकट सागर को लांघ जाते हैं। परन्तु अपने व्रत को नष्ट नहीं करते हैं, वे उन सकटों को सुवर्ण को शुद्ध करने वाली अग्नि के समान समझते हैं। धन्य है! उन महापुरुषों के जीवन चरित्र को, ऐसे जितेन्द्रिय महात्माओं को मेरा सदा नमस्कार हो। कहा है कि —

❀ शार्दूल विक्रीडित व्रत ❀

जे सम्यक्त्व लइ सदा व्रत धरे, सर्वज्ञ सेवा करे,
सन्ध्यावश्यक आदरे गुरु भजे, दानादि धर्माचरे.
नित्ये सद्गुरु सेवना विधि धरे, एवो जिनाधिश्वरे,
भाख्यो श्रावक धर्म दोय दशधा जे आचरे ते तरे.



रत्न त्रयं भृश भव भ्रमणेन लब्धं ।
पंच प्रमाद वश तो विहितं निरर्थम् ॥
हा हंत ! पश्य खलु मोह विटंबना मे ।
मानुष्य जन्म विहितं पशुभिः समानम् ॥५॥



अर्थ —अनन्त भव से इस भव-भ्रमण में घूमते२ अत्यन्त घोर परिश्रम के पश्चात् ये तीन रत्न प्राप्त हुए, परन्तु फिर भी इन्हें पंच प्रमाद के वश हो मैंने व्यर्थ गुमा दिए। ओह! मेरी मोह लीनता तो देखिये। मैंने सचमुच यह उत्तम मनुष्य जन्म वृथा पशु के समान ही बना दिया ॥ ५ ॥

भावार्थ—देवगुरु और धर्म ये तीन अमूल्य तत्व, त्रय रत्न के नाम से पहिचाने जाते हैं। ये सच्चे रत्न हैं, रत्नों की कीमत बहुत अधिक होती है तथा रत्न धनाढ्य मनुष्यों के घर में ही रहते हैं, रंक के घर में तो शायद ही प्राप्त हो ?

रत्न की कीमत जौहरी ही जान सकते हैं। भील के हाथ में आया हुआ हीरा कंकर के समान ही समझा जाता है। वह तो हीरे को चमकता हुआ पत्थर समझ कर ककरी के साग में डालना ही अच्छा समझता है। जो गुणी होता है वही गुण को समझता है निर्गुणी गुण नहीं जान सका। कहा है कि—

गुणी गुण वेत्ति न वेत्ति निर्गुणो। बली बलं वेत्ति न वेत्ति निर्बल।
पिको वसंतस्य गुणो न वायस। करी च सिंहस्य बलं न मूषक ॥

अर्थात्:—जो गुणवान हो वही गुण जान सका है, परन्तु निर्गुणी मानव गुण नहीं समझ सका। बलवान बल जान सका है निर्बल नहीं जान सका। जिस तरह वसंत के गुण कोयल जान सकी है परंतु निम्बोरी खानेवाला कौआ नहीं जान सका। सिंह का पराक्रम गजेंद्र ही समझता है, परन्तु मूषक नहीं जान सका। उसी तरह रत्न की कीमत जोहरी जान सका है। उपरोक्त देव, गुरु, धर्म ये तीन महा अमूल्य रत्न महान भाग्योदय से मनुष्य को प्राप्त होते हैं। परन्तु जिसके पास धन होता है उसे मार कर लूट लेजाने वाले चोर भी बहुत आ मिलते हैं। इसी तरह इन तीन रत्नों का नाश करने वाले पांच प्रमाद रूपी महान लुटेरे जीव के पीछे लगे रहते हैं और हमेशा इन अमूल्य रत्नों को लूटा करते हैं।

गाथा—मद, विषय, कषाया। निंदा विकहा पंचमा भणिया।
ए ए पंच पमाया। जीवा पाडंति संसारे ॥ १ ॥

अर्थात्:—मद, विषय, कषाय, निंदा एवम् विकथा ये पंचप्रमाद जीव का संसार बढ़ाते हैं और प्राणी को भव भ्रमण में फिराते हैं। इन पंच प्रमाद के वश हो जीव तीनों अमूल्य रत्नों को खो देता है, इन तीनों तत्वों में श्रद्धा रखना ही सम्यक्त्व कहलाता है। सम्यक्त्व यह सब की दृढ़ नींव है। जिस तरह किसी विशाल इमारत के लिये दृढ़ पाये की आवश्यकता है। इमारत के पाये पानी छांट २ कर गहरे और अत्यंत मजबूत बनाये जाते हैं, कारण अगर पाया कच्चा होगा तो उसपर अभी इमारत न ठहर सकेगी। इसी तरह सम्यक्त्व श्रद्धा सब व्रतों का मुख पाया है। वह सम्यक्त्व पांच प्रकार की है। सास्वादन, वेदक, उपशम, क्षयोपशम, क्षायक। सास्वादन सम्यक्त्व अर्थात् थोड़ी देर सम्यक्त्व रह कर फिर नष्ट होजाय। जिस तरह कोई मनुष्य खीर-शक्कर का

भोजन कर फिर वमन कर देता है और वह सब निकल जाता है परंतु उसका तनिक स्वाद रह जाता है । इसी तरह सास्वादन सम्यक्त्व वाले की तनिक श्रद्धा रह जाती है। इस सम्यक्त्व के आये पश्चात् जिस मनुष्यको अनंत पुद्गल परावर्तन करना रहा था उसे सिर्फ अर्द्ध पुद्गल परावर्तन करना रह गया अर्थात् एक कोटि रुपये के कर्जदार का समस्त कर्ज कोई कृपालु दया करके चुका दे और सिर्फ एक अठन्नी चुकाना बाकी रखदे। वह अठन्नी उसे चुकाना मुश्किल न होगी। वह सरलता से चुका देगा और कर्ज से मुक्त होजायगा। ऐसी सास्वादन सम्यक्त्व पांच समय तक आती है और दूसरे गुण स्थान में रहती है। वेदक सम्यक्त्व एक समय आती है, इस सम्यक्त्व के आये पश्चात् जीव सात जगह उत्पन्न नहीं होसक्ता । १ नारकी, २ तिर्यंच, ३ भुवनपति, ४ व्याणव्यतर, ५ ज्योतिषी, ६ स्त्रीवेद और ७ नपुन्सकवेद। ये सात स्थान त्याग उत्तम स्थान पर पैदा होगा। इस सम्यक्त्व की स्थिति एक समय की है यह चौथे गुण स्थान में आती है । तीसरी उपशम सम्यक्त्व मोहनीय कर्म की अठाईस प्रकृतियों में से शक्तियानुसार जितनी प्रकृतियां शांत करे अर्थात् दबादे, उसे उपशम सम्यक्त्व कहते हैं। यह पांच समय आती है और चौथे से ग्यारहवें गुण स्थान तक रहती है। चौथी क्षयोपशम सम्यक्त्व उपरोक्त अठाइस प्रकृतियों में से उदय में आई हुई कितनी ही प्रकृतियों को शांत करे और कितनी ही का क्षय करदे उसे क्षयोपशम कहते हैं। यह सम्यक्त्व असंख्याते समय उत्पन्न होती है। पांचवीं क्षायक सम्यक्त्व उपरोक्त कही हुई सब प्रकृतियों का क्षय करदे अर्थात् उनका सर्वथा नाश करदे जिस तरह अग्नि पर पानी डालने से उस अग्नि का समूल नाश होजाता है, इसी तरह वह सब प्रकृतियों का क्षय करदेता है। यह क्षायिक सम्यक्त्व एक समय आती है। इन पांच सम्यक्त्व का विशेष-विवरण **श्री महावीर प्रभु ने** सिद्धांत में फरमाया है। सम्यक्त्व रत्न परम भाग्यशाली मनुष्य ही पा सक्ते हैं। सम, संवेग, निर्वेग, अनुकम्पा और आस्ता इन पांच उत्तम आभरणों के कारण इस सम्यक्त्व रत्न को पांच प्रमाद रूपी चोर लूट लेजाते हैं। यह मोह राजा की सब विडम्बना है इस मोह राजा ने अच्छे २ योगीश्वरों को पंच महाव्रतरूपी रत्नों का नाश कर उत्तम मार्ग से भ्रष्ट कर दिया है। इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पशु समान अधम बना दिया है। यह सच है कि जो विषय विकार में अंधे बन जाते हैं। वे पंच महाव्रत रूपी रत्नों को त्याग कर मोह में गिर पड़ते हैं उनका जीवन पशु समान है और वे दीन

दारिद्री से दारिद्री है। जिस तरह धनाढ्यों के रत्न चुरा लेजाने से वह गरीब होजाता है उसी तरह जिस मनुष्य के महाव्रत रूपी रत्न लूट लियेजाते है वह भी गरीब होजाता है और पशुवत अपना जन्म पूर्ण करता है। जानवर में और धर्म से भ्रष्ट हुए मनुष्य में कुछ अंतर नहीं है। मोहनीय कर्म का बल विचित्र है। जो इसको जीत लेते है वे महा बलवान है। इस पर कोशा वेश्या से प्रबोध पाये हुए सिंह गुफा वासी मुनि का दृष्टांत कहते है।

सिंह गुफावासी मुनि का दृष्टांत.

स्थूलीभद्र मुनि कोशा वैश्या के यहां चातुर्मास कर अपने कार्य में विजयी हो गुरु समीप आये। उसी वक्त अन्य तीनों शिष्य भी अपने २ स्वीकृत किए हुए चातुर्मास पूर्ण कर गुरु के पास आये। उन तीनों को देख कर गुरु ने कहा "अहो तुम ने बहुत दुष्कर कार्य किया है!" परन्तु स्थूलीभद्रजी से उन्हों ने उठकर कहा कि "अहो! तुमने महान् दुष्कर कार्य किया है"। स्थूलीभद्रजी की विशेष प्रशंसा सुनकर वे तीनों मुनि मन में सोचने लगे कि "हम सामान्य कुल में जन्म पाए है और स्थूलीभद्र शकडाल प्रधान का पुत्र है! इस लिये गुरु ने उनकी अधिक तारीफ कर महान दुष्कर कार्य किया। ऐसा कहा एवम् छ रस के आहार लेनेवाले की प्रशंसा की"। बत्तीस लक्षण वाली कोशा वैश्या में आसक्त हो स्थूलीभद्र ने व्रत को पाल विश्व जीतने वाले काम को उपदेश शास्त्र से मार कर गुरु के प्रसाद से "यह महान दुष्कर कार्य किया" ऐसा पद पाया। वह दुष्करकारक तीनों मुनि कहने लगे कि —"गुरु के यहां भी कोई अधिक और कोई हलके है? इसी लिये भविष्य के चातुर्मास में और भी विशेष दुष्कर कार्य करें" ऐसा निश्चय कर उन्हों ने महाकष्ट से शेष आठ माह व्यतीत किये। जब चातुर्मास आया तब सिंह गुफा वासी मुनि ने आचार्य श्री से कहा "मै भी स्थूलीभद्र ने किया वैसा करूंगा"। गुरु से कहा "हे महानुभाव! स्थूलीभद्र जो कुछ कियाहै वह कोई नहीं करसकता!" तुम्हें स्थूलीभद्र की स्पर्धा नहीं करनी चाहिये! सूर्य के बिना दूसरा दिन कौन कर सकताहै? चन्द्र बिना दूसरा अमृत कौन भरा सकता है? पानी बिना कौन अन्न पैदा कर सकता है? और चक्रवर्ती के सिवाय दूसरा कौन छे खंड साध सकता है? इसलिये जो तू यह अभिग्रह करेगा तो तेरे पूर्व संचित पुण्य भी नष्ट हो जायगे"। सम्भूतिविजय आचार्य के बहुत विनय करने पर भी

न मानते वे मुनि कोशा के आवासमें पधारे। वहाँ उन्होंने रहने के लिये वैश्या से अपनी चित्रशाला मांगी। कोशा समझ गई कि ये मुनि स्थूलीभद्रसे डाह करने के लिये यहाँ पधारे हैं, इन्हें भी उसने षट्रस व्यंजन जिमाए। फिर उन्नत चुस्त वह वैश्या शृंगार कर हावभाव इत्यादि विलास करती हुई मुनि के पास आ खडी हुई, उसे देख कर कौन मोहित नहीं होता है ? अग्नि में कौन भस्म नहीं होता है ? लक्ष्मी से कौन प्रेम नहीं रखता ? और कर्मों के आधीन कौन नहीं हो सकता ? उन कामातुर और भोग की वाञ्छा वाले मुनिको देखकर वैश्या ने कहा कि "हमारे यहा तो बिना द्रव्य के कोई ऐसे भोग नहीं भोग सकता"। तब वे कामातुर मुनि बोले "अभी तो मेरे पास कुछ नहीं है फिर मैं लादूंगा।" तब तो वैश्या उन्हें वैराग्य में लीन करने के लिए उपदेश देने लगी कि "जो भोग की ही वाञ्छा हो तो नेपाल देश में जाओ वहा राजा साधुओं को लक्ष सुवर्ण के मूल्य वाली लक्ष कंबल भेंट करता है वह लाओ,और अपनी इच्छा पूर्ण करो" कामातुर मुनि चातुर्मास में ही नैपाल देश गए। वहाँ से रत्न कम्बल ले पीछे फिरे। रास्ते में पल्लीपति का तोता बोला, "लक्ष जाती है" यह सुनकर पल्लीपति ने समझा कि कोई साधुलक्ष मूल्य वाली वस्तु ले जा रहा है आकर साधु से कम्बल उसने छीन ली। तब साधु फिर नैपाल गए और रूप बदल कर पुन रत्न कम्बल लाये तथा घास की पोली नली में उसे छुपाई। तोता दो तीन वक्त बोला "लक्ष जाती है २" परन्तु पल्लीपति को सत्र मालूम न हुआ। तब महा-कष्ट से उसे लेकर साधु जी वैश्या के पास आए और उसे रत्न कम्बल सौंपी। वैश्या ने स्नान कर उससे शरीर पोंछा और घर के चौक में फैंक दी। यह देखकर साधु जी ने कहा "कोशा ? यह महामूल्य वाली रत्न कम्बल अत्यत कष्ट से मैंने प्राप्त की जिसे तूने चौक में क्यों फेंक दी ?" वैश्या ने कहा "अरे मूर्ख साधु! इसका क्या सोच करता है ? यह महान कष्ट से पाया हुआ मनुष्यावतार फिर भी शुद्धि चारित्रवाला, मेरे मलमूत्र वाले शरीर पर फेंक देने में तुझे क्यों खेद नहीं होता ?" यह सुनते ही मुनिका कामराग में समभाव हो गया अर्थात् वैश्या ने वैराग्य दिया तब मुनि बोले "हे रूपके देनेवाली ? मैं महान मोह जाल में फँस गया था, मेरा तुझसी वैश्या ने अत्यन्त चतुराई रचकर उधार कियाहै। ये जो अतिचार मुझे लगे हैं, उनकी आलोयना कर मैं पाप रहित बनूंगा। अब मैं गुरू जी के समीप जाता हूँ। तुझे हमेशा धर्म लाभ मिलो।" वैश्या ने कहा "अहो प्रभु ? ब्रह्मचारी आप जैसों की मैंने प्रति बोध देने के लिए जो कुछ,

असातना की हो वह मुझे क्षमा करना" अब वे मुनि स्थूलीभद्र की प्रशन्सा करते हुए कहते हैं " पर्वत की गुफा में, निर्जन मनुष्य वाले जंगल में रहकर तो हजारों मनुष्य इन्द्रियाँ वश कर सकते हैं, परन्तु अति मनोहर हवेलियों में चित्त हरने वाली स्त्रियों के समीप रह कर इन्द्रिय पर निग्रह रखने वाले तो शकडाल पुत्र स्थूलीभद्र जी एक ही हैं। अग्नि में प्रवेश करने पर भी, जो न जले, खड्ग के अग्रभाग को पाकर भी जो न छिदे, काल सर्प के बिल समीप रह कर भी डंक न पाये और काजल की कोठडी में रहने पर भी जिन्हें दाग नहीं लगा। हमेशा रागवती और कमांध वैश्या का समागम होने पर भी, षट्रस भोजन प्राप्त होने पर भी, उत्तम स्थल मनोहर शरीर तथा नवयौवनका समाग होते भी और चौमासे का समय कामोत्पादक होते भी अर्थात् सब बातें प्रतिकूल होने पर भी जिन महाशय ने कामदेव पर जीत प्राप्त की उस स्त्री को प्रबोध देने में कुशल ऐसे स्थूलीभद्र मुनि को मेरा नमस्कार हो ॥ ५ ॥

निंदा कृता परजनस्य जिनेश देव ?
किंतु कृतं न च कदा किल कीर्तनं ते ॥
त्यक्तौ तथा न भव वर्धक राग रोषौ ।
भद्रं कथं कथय नाथ ! भवेन्ममाऽत्र ॥६॥

अर्थ—हे जिनेश्वर प्रभु ! मैंने पर पुरुषों की निन्दा की, परन्तु कभी सच्चे हृदय से भाव पूर्वक आपकी स्तुति न की तथा भव राग बढाने वाले राग द्वेष भी नहीं तजे। तो हे कृपालु नाथ ! इस मनुष्य लोक में मेरा कल्याण क्यों कर होगा ? कारण ऐसे कृत्योंसे तो कोई जीवात्माका कभी कल्याण नहीं होता।

भावार्थ—नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवता इन चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करते हुए बहुत समय में प्राप्त हुए ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूपी तीन अमूल्य रत्नों को संसार में मुग्ध बने हुए मेरे जीवात्मा ने आठ मद, पंच विषय, चार कषाय, पंच प्रकार की निंदा तथा चार प्रकार की विकथा इन

पाच प्रमादों के वश हो अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त किये तीनों रत्नों को मैंने निष्फल कर दिये—खो दिये। सचमुच अत्यन्त खेद के साथ कहता हू कि "हे भगवान! मेरी मोह विटम्बना कितनी विचित्र है? इस महाश्रम से हुए मनुष्य जन्म को मैंने पशु समान बना दिया, कारण कि रागद्वेष ये दो बड़े बन्धन है। प्रत्येक मनुष्यका प्राय ऐसा स्वभाव होताहै कि जिसमें चाहे हजारों अवगुण हो तो भी उस पर राग भाव के कारण वह गुण ही समझता है और जिस पर अभाव, अप्रीति होती है उसमें चाहे जितने गुण हों तो भी द्वेष दृष्टि से अवगुण ही नजर आते हैं। समस्त दुनियाँ जिस कार्य को प्रतिकूल समझती हो तो भी रागी मनुष्य उसे कभी नहीं त्यागता तथा अवगुण की दृष्टि से भी नहीं देखता। उदाहरणार्थ कोई विषयान्ध मनुष्य वेश्या गमन करता हो, अथवा किसी अन्य स्वरूप सुन्दरी पर असक्त हो गया हो और उसके साथ दुराचार करता हो, उसे कोई विचक्षण मनुष्य हितोपदेश देकर समझावे कि हे बन्धु? यह कुपथ तू त्याग दे, इस राह में पडे हुए कई प्राणी महान् विषम गति में जा गिरे हैं। यह कुमार्ग महादु ख का भाण्डार है। दुर्गति का देने वाला है, अप कीर्ति को बढाने वाला है और जिसका परिणाम भी अत्यन्त हानिकर है। कहा है कि—

स्मृता भवति पापाय। दृष्टा चोन्माद कारिणी।
स्पृष्टा भवति मोहाय। सा नाम दयिता कथम्॥

अर्थात्—जिसके स्मरण से ही पाप उत्पन्न होताहै, जिसे विषय विकार की दृष्टि से देखने से मन विव्हल होता है। जिसके स्पर्श से मोह उत्पन्न होता है, इसलिये वह दयिता नहीं परन्तु दुर्गति का दिया हे। ऐसे विविध भाति के उपदेशों से उसे समझावे, परन्तु उसका उस स्त्री पर राग होने से दोष न देखते वह उसके गुण ही कहेगा और उसका साथ भी न छोडेगा। **उदाहरणार्थ** योगीश्वर राजेन्द्र भर्तृहरि की पिंगलादि तीन सौ रानियाँ थीं परन्तु पिंगला पर अधिक स्नेह होने से उसके भ्रम में पड कर उन्होंने अपने छोटे निर्दोष भाई विक्रमादित्य को देश से निकाल दिया और मन में तनिक भी न सोचा, एवम् पिंगला की कपट क्रिया और स्त्री चरित्र भी न पहिचाना। अन्त में पिंगला का पाप प्रकट हो गया। अश्वपाल से मोहित होते समय पिंगला को कोमलता नामक दासीने अत्यन्त समझाई थी कि "हे सुभागी

थाई ? आप मालवदेश के छत्रपति नरेन्द्र भर्तृहरि को त्याग एक नीच जाति के अश्वपाल से प्रीति लगाती हो यह बिलकुल अयोग्य है। महाराज को जब यह बात मालूम होगी तो इसका कैसा विषम परिणाम होगा, उस समय पश्चात्ताप का पार नहीं रहेगा इत्यादि २ अत्यन्त समझाई, परन्तु मत्र क्षार में घृत डालने ज्यों निरर्थक हुआ और अन्तमें उसका महान दुःखमय परिणाम हुआ। सारांश यह कि जहाँ अत्यन्त राग भाव होता है वहाँ दोष नहीं देखे जाते तथा उसका भविष्य में क्या फल होगा यह भी बिलकुल ध्यान में नहीं जमता। कहा है कि —

दोहा-रागी अवगुण ना ग्रहे, यही जगतको ख्याल ;
देखो श्रीकृष्ण श्यामको, लोग कहत हैं लाल.

संसार में सन्मार्ग दिखाने वाले हे प्रभु ! राग और द्वेष इन दोनों बड़े बन्धनों की फाँस में फसकर मैं अनेक प्रकार के पाप कर्मों में लीन हो रहा हूं। राग द्वेष के कारण मैंने हमारे तुम्हारे तथा अहम् में पड़कर महा अधम कर्म किये हैं। रागद्वेष इन दोनों संसार के मूल बीज के कारण ही संसार में जन्म मृत्यु का चक्र फिर रहा है। कहा है कि —

दोहा-रागद्वेष दो बीज हैं, कर्म बन्ध फल देत;
उनकी फांसीमें फंसे, छूटे कब अचेत.

सारांश यह कि रागद्वेष से वैर विरोध बढ़ता है और वैरभाव के कारण लोग अहित कार्य करने से नहीं चूकते। अपने पर राग और अन्य पर द्वेष कर तथा एक दूसरे की निन्दा चुगली कर इस आत्मा को मैंने मलीन बनादी है। कई प्राणी तो एक दूसरे का सुख नहीं सह सकने से उसे उस सुख से भ्रष्ट करने के लिये अनेक छल छिद्र प्रपंच रच उपाय करते हैं। जवा से की तरह दूसरों के सुख से उनका मन हमेशा जला करता है, वे दूसरों पर द्वेष ला प्राण घात की कार्य करने में भी नहीं चूकते। अपना अपराध छिपाने के लिये तो ऐसी विचित्र माया जाल रचते हैं कि इस थोड़ी सी जिन्दगी में अनन्त संसार बढ़ा लेते हैं॥ ऐसे नीच मनुष्य के हृदय में तनिक भी दया का अंकुर नहीं रह सका। निर्दय मनुष्य इस जगत में क्या नहीं कर सकते हैं ? निर्दय मनुष्य अपने प्यारे पुत्र

मित्र कलत्रादि को मार डालने में भी नहीं चूकते, अपने सगों को भी मारने तैयार हो जाते है। जिस तरह एक स्त्री ने द्वेषभाव के कारण अपना सौत के पुत्र को बिना कारण ही मार डाला। सचमुच विमाताओं में भाग्य से ही प्रीति भाव रहता है; वे तो भूत कालिन स्त्रियों के पुत्रों को शत्रु समान ही समझतीहै। रात दिन उनसे वैर विरोध करती है-उन्हें कण्टदाई वचन सुनाती है छेदती हैं औरहैरान करती है और समय पाकर मार तक डालती हैं। कहा है कि —

❀ मनहर छन्द ❀

जलदनुं जल जोइ जवासो प्रजली जाय, भानुनो आभास भाली घुडगभराय छे,
सिंहनां सतान देखी हरण हृदय राय, तारक्ष प्रताप देखी साप सकोचाय छे,
चडेलो चकोर मित्र दाखे दलपतराम, चोरने खचित चित चटपटी थायछे,
शोक्यनां सतानदेखी शोक्यनु सुकाय तन, सुकविनी कविताथी कुकवि सुकायछे.

अब इस पर

नागकेतु का दृष्टान्त.

चन्द्रकान्ता नाम की नगरी में विजयसेन राजा राज्य करता था, वहाँ एक श्रीकान्त नाम का व्यवहारी भी रहता था। उसकी स्त्री का नाम श्रीसखी था। उसके अत्यन्त देव, भोपे करनेसे एवम् मान्यताए लेने से एक पुत्र हुआ। पर्यूषण पर्व के समीप आते ही कुटुम्ब के अट्ठम तप की वार्ता करने से उस बालक को जाति स्मरण ज्ञान पैदा हुआ। दूध पीता हुआ बालक होने पर भी उसने तेला किया और दूध न पीने से वह बालक कुम्हलाये हुए मालती के पुष्प समान म्लान हो गया जिसे देखकर माता पिताने अनेक उपाय किये। फिर उस बालक को मूर्च्छा आ गई, जिससे माता पिता ने उसे मरा हुआ समझकर, जमीन में गाड दिया और उसके दुःख से उसका बाप भी मर गया। बाप और पुत्र की मृत्यु सुनकर विजयसेन राजा ने उनका धन लेने के लिए अपने सुभट को भेजे। उधर उस बालक के अट्ठम (तेला) तप के प्रभाव से, धरणेन्द्र महाराज का आसन कम्पायमान हुआ। उन्हों ने सब वृतान्त ज्ञान से जानकर उस भूमि में गाडे हुए बालक पर अमृत छींटा और ब्राह्मण का रूप धर कर उसके घर गए और राज्य के मनुष्यों को रोक दिये। राजा यह सुनकर वहाँ आये और कहने लगे हे ब्राह्मण! परम्परा से चली आई हुई रीतिके अनुसार हमें अपुत्रिये

के धन को लेने में तू क्यों रोक रहा है ? तब धरणेन्द्र महाराजने फरमाया कि हे राजन् ? इसका पुत्र अभी जीवितहै। तब राजाने पूछा कि कैसे जीवितहै और कहाँ है ? तब उन्होंने उस बालक को भूमिमें से जीवता निकालकर निधान के समान दिखाया, तब सब ने आश्चर्य चकित हो पूछा कि हे स्वामी आप कौन हो ? और यह बालक कौन है ? तब इन्द्र महाराज ने कहा कि मैं नागों का राजा धरणेंद्र हूं। अट्ठम का तप करने वाले इस बालक की सहायता करने में आया हूं। तब राजा ने पूछा कि हे स्वामी ! इस बालक ने जन्मते ही कैसे तेला करलिया ? तब इन्द्र महाराज ने कहा कि हे राजा ! यह पूर्व भव में किसी वनिये का पुत्र था। बाल्यावस्था में इसकी माता मर गई, जिससे इसकी सोतेली माता ने इसे अत्यन्त दुःख दिया, तब इसने अपना सब दुःख अपने मित्र से कह सुनाया, तब उस मित्र ने उसे कहा कि तूने पूर्व भव में तपश्चर्या नहीं की, इसलिये तुझे यों पराभव सहन करना पडता है। तब इसने यथा शक्ति तप करना प्रारम्भ किया और एक दिन विचार किया कि आते पर्युषण पर्व पर एक तेला अवश्य करूगा। ऐसा विचार कर वह एक घास की झोंपडी में सो रहा, उस समय उसकी सोतेली माता अच्छा अवसर समझ पास ही जलती हुई अग्निमें से एक तिनका ले उस झोपडी में डालदिया, झोंपडी जलने से वह भी जल गया और मर गया और अट्ठम तप के ध्यान से इस श्रीकांत सेठ का पुत्र हुआ। पूर्व भव में निश्चय किया हुआ अट्ठम तप इसने यहा किया, यह महापुरुष लघुकर्मी है तथा इसी भव में मोक्ष जानेवाला है इसीलिये तुम्हें इसका यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये, यह तुम्हारे परभी महा उपकार करेगा। "ऐसा कहकर नागराज अपने कंठका हार उसके गले में डाल अपने स्थान पर गये। फिर उसके सम्बन्धियों ने श्रीकांत का मृतकार्य कर उस बालक का नाम नागकेतू रक्खा। फिर वह बालवय से ही जितेन्द्री हो उत्कृष्ट श्रावक होगया। एकदिन राजा विजयसेन ने एक मनुष्य को चोर न होने पर भी चोर समझ कर मरवा डलाया वह मरकर व्यन्तर देव हुआ, उस व्यंतर देव ने समस्त नगर के नाश करने के लिये एक बडी भारी शिला बनाई तथा राजा को एक लात मारकर लोही वमन करते हुए को सिंहासन से पृथ्वी पर फेंक दिया। तब नागकेतू ने विचार किया कि मेरे जीते जी मैं इस तरह सब और शहर का नाश कैसे देख सकूं ? ऐसा सोच उसने महल के शिखर पर चढ़ उस शिला को हाथ पर धारण कर ली। तब उस व्यन्तर देव से उसकी तप शक्ति न सही गई

और शिला की ऊपर खींच ली तथा नागकेतू को नमस्कार किया। उसके कथनानुसार उसके राजा को भी कष्ट न पहुँचाया। उत्तम पुरुष हमेशा परोपकार ही करते हैं। कहा है कि—

कवित्त-सहत संताप आप, पर को मिटावे ताप,
करुणाको द्रुम, सुखच्छाया सुखकारी है;
शूरवीर क्षमावान कोटिपति मान नहिं,
ज्ञानको निधान भाण, गंभीर गुणधारी है.
दोष दिल नहिं लेवे, शरण आवे सुख देवे,
परमार्थवृत्ति जाकु सदा प्राणप्यारी है;
कहत है कवि गंग, सुनो मेरे दिलीपति,
विश्वमें विरल नर, सज्जनकी बलिहारी है.

इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि स्वार्थी मनुष्य अपने स्वार्थ के कारण मनुष्यों को दुख दे उनके हित का नाश करते हैं। तब नागकेतू जैसे परोपकारी, पुरुषोत्तम चाहे जितना कष्ट आ पडे हमेशा दूसरों का हित ही किया करते हैं। कहा है कि —

❋ इन्द्रविजय छन्द ❋

धर्मधुरंधर जे धरणी पर पाप पंथे पगलुं नथी देता,
पारकी नारी अने धन पारकुं ते ललचाइ कदि नथी लेता;
कइक दीठा कलिकाल विषेपणकोण गणेकृत द्वापर त्रेता,
सत्य सदैव धरी दलपत प्रभु भजी प्रौढ़ बन्या ब्रह्मवेता;



चक्रं सदोषमखिलञ्च परापवादा ।
नेत्रं ह्यपि ह्यपर दोष निरीक्षण त्वात् ॥
चित्तं नितान्त मपराऽशुभ चिंतनत्वाद् ।
भद्रं कथं कथय नाथ ? भवेन्ममाऽत्र ॥७॥



अर्थ—हे कृपालु प्रभु ! दूसरों के अपवाद बोलने से मेरा यह मुख सदा दूषित है, नेत्र भी केवल दूसरों के दोष देखने से अथवा अयोग्य पदार्थों के निरीक्षण से अपवित्र दूषित हैं और अहर्निश दूसरों के बुरे चिन्तन से मेरा चित्त तो अत्यन्त अपवित्र बन गया है । तो हे कृपानाथ ! अब मेरा कल्याण कैसे होगा ?

भावार्थ—हे अखिलेश कृपालु प्रभु ! दूसरों के अवगुण बोलने से मेरा मन सदा दूषित, तथा अहर्निश दूसरों के अवगुण देखनेका स्वभाव होने से मेरे नैत्र युगल भी दूषित और दूसरों का अहर्निश अशुभ सोचनेसे चित्त भी अत्यन्त दूषित है। अधिक तो क्या कहूं? पापमें ही आनन्द मानने वाला यह मेरा समस्त शरीर दूषित है । इसलिये हे नाथ ! आप ही कहिए कि मेरा उभय लोक में कल्याण किस तरह होगा ? ऐसे दूषित प्राणी मोक्ष तो कभी पा ही नहीं सकते । शरीर के प्रत्येक अवयवों को सन्मार्ग के बदले उन्मार्ग पर लगाना और मुंह से राम राम करना, तथा तप जपादिक शुष्क क्रियाए करना जिससे क्या लाभ हो सक्ता है ? वैद्य की दवाई कितनी ही रामबाण क्यों न हो, परन्तु बिना परहेज से लिये रोग का नाश नहीं हो सक्ता, अगर परहेज न रक्खा जाय तो बीमारी भी नाश नहीं हो सक्ती । रोग मिटना तो दूर रहा कभी २ प्राण तक जाने की नोबत आ जाती है । ऐसे दाखले वर्तमान समय में बहुत मिलेंगे। श्लोक में कथित बातें बिना दूर किये जितनी दुष्कर क्रियाए की जाय,वे सब क्रियाए कर्म से मुक्त करने के बदले कर्म बंध का कार्य कर देंगी । दूसरोंकी निंदा करने से मुंह अपवित्र होता है । कई मनुष्यों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे अपनी जीभ का तनिक भी अवकाश नहीं लेने देते । जीभ से जिस किसी की निंदा

चुगली किया ही करते हैं। या कर्कश कठोर, दूसरोंको अप्रिय एवम् दुःखद अपशब्द बोलकर व्यर्थ अनेक कुकर्म संचित कर लेते हैं। जीभको वशमें रखना अत्यन्त कठिन है। समस्त दिन भर इतनी व्यर्थ बातें करते हैं निन्दा करते हैं कि उनका वर्णन ही अशक्य है। सार कुछ नहीं। अपना कार्य भी कुछ सिद्ध नहीं हो सक्ता तो भी बिना कारण ही बहुत से विविध मिथ्या भाषा बोलते ही रहते हैं। कहा है कि —

छप्पयः-वश राखजे तारी जीभड़ी, अनर्था दंडे,
काम न सीझे आपणुं, तुं शिदने मंडे;
जेथी लागे पाप, तेथी अलगो रहेजे,
धर्मध्याननी वातमां, तुं वलग्यो रहेजे;
पोतानुं पलतुं नथी, पारकानुं तु क्यां लहे,
प्रकासिंह वाणी वदे, के तारां कयां जीवतुं सहे;

इसलिये विवेकी पुरुषों को हमेशा सोच विचार कर बोलना चाहिये। नहीं तो अनेक आफतें आजाती है। परन्तु यह विवेक कोई विरले नरों में ही है। बाकी का समस्त भाग तो जहा तहा अनर्थ कार्यों में जीभ हिलाकर कर्म संचित किया ही करता है। इसलिये जो झूठ बोलता हो प्रभु, साधु या गुणी जनों की निन्दा करता हो गरीब, दीन, दुःखी, अनाथों को कुवचन सुनाकर सताता हो, हँसी में दुर्वचन बोलकर हृदय को भेदता हो, परजनों को अहित-हानिकर्त्ता मिथ्या साक्षि भरवाने अथवा अपना माल बेचने के लिये ग्राहक के हृदय में अच्छा ठूसने के लिये विविध प्रपंच वाग्जाल बिछाता हो इत्यादि उन स्वार्थी और बिन स्वार्थी की अनर्थकारी भाषा बोलने से जीभ सदा अपवित्र है। बोलने और खाने पीने में रसेंद्री वश रखना अत्यन्त मुश्किल है।

इसी तरह ये दोनों नैन भी खाना खराब खाने में सदा तत्पर रहते हैं। कितने ही मनुष्य जहाँ २ अयोग्य स्थल में अपना चक्षुपात करते हैं। कोई किसी स्त्री का रूप देखकर अनेक विचित्र कल्पना करता है तो कोई दुष्ट मनुष्य सुंदर स्त्री को देखकर विविध कल्पनाएं कर अपने से स्वभाव वाले मित्र के

साथ रड ? करना है कि अहा ! कैसा सुन्दर रूप है ? यह कौन है ? कहाँ जाती है ? किसकी स्त्री है ? विधाताने इसे क्या ही सुन्दर बनाई ? हमारा ऐसा भाग्य कहाँ है कि यह सुन्दर रूपवान स्त्री रहा हमारे वश हो जाय ! ऐसी और इसी तरह की अनेक बुरी परपनाएं करता है। जिसमें उनका स्वार्थ तो कुछ नहीं है वे तो सिर्फ कुदृष्टि से पापकर्म का किला दृढ बनाते हैं। सचमुच ये दोनों नेत्र चाडाल है। इनको हलका खाना बहुत पसन्द है। जैसे कौआ हलके पदार्थों को खानेमें ही विशेष आनन्द मानता है उसी तरह ये चाडाल आंखें भी अयोग्य पदार्थों पर दृष्टिपात कर उन्हें दूषित बना लेती हैं। दुष्ट चक्षुओं को देवदर्शन साधु सन्त महात्माओं का समागम तथा संसार में रहते भी साधु दशा प्राप्त गुणी गम्भीर सज्जनों का समागम या सम्मिलन एवम् उनके पवित्र दर्शन करना, उनके मुँह से पवित्र धर्म कथा सुनना इत्यादि तो विष समान कटु जहर लगता है। परन्तु भाड भांडे की रम्मत देखना हो, नाटक चेटक के खेल देखना हो, किसी का युद्ध हो रहा हो, कहीं गान और नाच रंग हो रहा हो एवम् मन मोहक चित्ता कर्षक पदार्थ जहाँ हो वहा ये चक्षु उमंग के साथ दौड पडते हैं। उत्साह से खेल देखते हैं, व्यर्थ समय बिताते हैं खुमार होते हैं, समस्त रात भर जगते और पैसे खर्च भी हो सब हर्षसे कर उसमें अपूर्व आनन्द मानते हैं, मौज समझते हैं, परन्तु सन्त दर्शन या उनकी धर्म कथा सुनने में उन्हें चाहिये जैसी मौज न मिलने से धर्म कथा देवी की विरोधिनी मायादेवी की बहिन आलस्यदेवी वहा चट हाजर होती है और आलस्यदेवी के उपस्थित होते ही उसकी बहिन निद्रा देवी वहा आये बिना कैसे रह सकी है ? निद्रादेवी ने आकर धर्मकथा देवी का अपमान किया और श्रोताओं को अपने वशीभूत कर लिये। फिर सन्त महात्मा चाहे धर्मकथा रूप हालरिये गाया करें और श्रोताजन निद्रा देवी के पालनिये पोढा करें, फिर उस धर्म कथा करने वाले को कितना आनन्द प्राप्त होता है जिसका पार ही नहीं। वाह वाह ! उस आनन्द का कहना ही क्या ? प्रिय पाठक ! यह मौज जो अनुभव करता हो उसे ही लूटने दो अगर तुम्हें भी जानने की प्रबल उत्कठा हो तो उस मौज के लूटने वालेसे कभी पूछकर विश्वास करलो परन्तु अभी तो प्रस्तुत विषय की ओर ही झुको साराश यह कि इन दोनों चाडाल चक्षुओं पर अज्ञान का भारी आवरण होने से उन्हें पापिष्ट अवसरों से विशेष प्रेम उत्पन्न होता है। इसलिये हमेशा दूसरों के दोष देखने से चक्षु सदा दूषित है। मन तो दूसरा का अशुभ सोचने से अत्यन्त ही दूषित है। मन में

चुगली किया ही करते हैं। या कर्कश कठोर, दूसरोंको अप्रिय र्मर्मस्पर्शी बद अप शब्द बोलकर व्यर्थ अनेक कुकर्म सचित कर लेते हैं। जीभको वशमें रखना अत्यन्त कठिन है। समस्त दिन भर इतनी व्यर्थ बातें करते व निन्दा करते हैं कि उनका वर्णन ही अशक्य है। सार कुछ नहीं। अपना कार्य भी कुछ सिद्ध नहीं हो सक्ता तो भी विना कारण ही बहुत से विविध मिथ्या भाषा बोलते ही रहते हैं। कहा है कि —

छप्पयः-वश राखजे तारी जीभड़ी, अनर्था दंडे,
काम न सीझे आपणुं, तुं शिदने मंडे;
जेथी लागे पाप, तेथी अलगो रहेजे,
धर्मध्याननी वातमां, तुं वलग्यो रहेजे;
पोतानुं पलतुं नथी, पारकानुं तु क्यां लहे,
प्रकासिंह वाणी वदे, के तारां कर्यां जीवतुं सहे;

इसलिये विवेकी पुरुषों को हमेशा सोच विचार कर बोलना चाहिये। नहीं, तो अनेक आफतें आजाती हैं। परन्तु यह विवेक कोई विरले नरों में ही है। बाकी का समस्त भाग तो जहां तहां अनर्थ कार्यों में जीभ हिलाकर कर्म सचित किया ही करता है। इसलिये जो झूठ बोलता हो प्रभु, साधु या गुणी जनों की निन्दा करता हो- गरीब, दीन, दुःखी, अनाथों को कुवचन सुनाकर सताता हो, हँसी में दुर्वचन बोलकर हृदय को भेदता हो, परजनों को अहित हानिकर्त्ता मिथ्या साक्षिए भरवाने अथवा अपना माल बेचने के लिये ग्राहक के हृदय में अच्छा ठूसने के लिये विविध प्रपंच वाग्जाल बिछाता हो इत्यादि उन स्वार्थी और बिन स्वार्थी की अनर्थकारी भाषा बोलने से जीभ सदा अपवित्र है। बोलने और खाने पीने में रसेंद्री वश रखना अत्यन्त मुश्किल है।

इसी तरह ये दोनों नैन भी खाना खराब खाने में सदा तत्पर रहते है। कितने ही मनुष्य जहाँ २ अयोग्य स्थल में अपना चक्षुपात करते हैं। कोई किसी स्त्री का रूप देखकर अनेक विचित्र कल्पना करता है तो कोई दुष्ट मनुष्य सुँदर स्त्री को देखकर विविध कल्पनाए कर अपने से स्वभाव वाले मित्र के

कमाई समस्त दिन भर में न मालूम कितनों की घात सोचता है। जिसकी गणना भी असंख्य है। कहा है कि —

दोहाः-घातकी घाट घडे घणा, खाटकी करतां ओक,
तेमां नहि डर के दया, पापी प्राणी एक.

जब अपने स्वार्थ के कारण दूसरों की घात सोचता है, तब उसके मन में तनिक भी परभव का डर या दया नहीं आती। जितने मन से चिकने कर्म बन्धते हैं उतने वचन या काया से नहीं बंधते। कारण मन का वेग अथाह है। यह एक क्षण भर में समस्त भूमण्डल में पर्यटण कर सकता है। कितने ही मनुष्य अकारण ही अपने मन में बुरे विचार किया करते हैं। जैसे कोई मनुष्य किसी मनुष्य को फॉसी पर चढ़ाने के लिये ले जाता हुआ देखकर कहता है कि ठीक हुआ, आज यह बराबर फंदेमें फसा ऐसेको तो ऐसी शिक्षा होनी ही चाहिए, ऐसे मनुष्यों का तो दुनिया में से मर जाना ही श्रेष्ठ है। भला सोचो तो! ऐसा कहने से उसे क्या लाभ मिला? व्यर्थ चिकने कर्म बांध लिये। सिर्फ स्वार्थ के कारण ही निर्दय बन दुर्ध्यान ध्याने वाला अपनी आत्माका हित नहीं कर सका। सिर्फ थोडी सी उम्र के लिये अनेक जन्मोत्पन्न करान वाली दुष्ट निर्दय कल्पना करना अपनी आत्मा के लिये प्रतिदिन अवनति की राह खोलना है। कई समय तो इसका फल उसी भव में प्राप्त हो जाता है। दूसरे का बुरा सोचना अपना अपने हाथ से बुरा कर लेने के समान है।

उदाहरणार्थ —सम्वत् १९५६ में भावनगर में अधिक जोरसे प्लेग हुआ था। कई मनुष्य भाग गए। बिचारे लखपति गृहस्थ भी अपने सुन्दर बाग बगीचे वाले बंगलों को छोड़ वनवासी की तरह झोपडे बांधकर बसे थे। कितने ही आसपास के गाँवोंमें चले गए। तब भी प्लेग का जोर कम न हुआ। दिवाली के दिनों में तो सौ सौ मरनेवाले केस रोज होते थे। उस समय सोनापुर के पास एक मोमन लकडियें बेचता था, जब उसका अथाह माल बिकता वह बहुत प्रसन्न होता और जिस दिन थोडा बिकता उस दिन उसका मन अत्यन्त दुःखी होता था। एक दिन उसकी समस्त लकडियों का ढेर बिक गया, तुरन्त उसने और मंगाकर सब फिर भर दिया। परन्तु जब कार्तिक में प्लेग का जोर कम हुआ, केस भी कम होने लगे, शहर में मनुष्यों का आवागमन भी होने लगा,

जितना उत्कृष्ट कर्म बन्ध होता है उतना दूसरे मे भाग्य से ही हो। कहा है कि—
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः अर्थात बन्ध और मोक्ष का कारण एक मन ही है। मन के अनेक तरंग हे, जिनमें से कई तरङ्ग तो हवाई किले बांधने जैसा बिलकुल व्यर्थ है। प्राय. सुन्दर दास कवि ने मन को विविध उपमाए देकर कहा है कि —

❀ इन्द्रविजय छन्द ❀

श्वान कहूं के शियाल कहूं के,
बिड़ाल कहूं मनकी मति ते शी ?
ढेड कहूं किधौं डुम कहूं किधौं,
भांड कहूं किधौं भांडई जैसी ;
चोर कहूं वाटपाड़ कहूं,
ठगभार कहूं उपमा कहूं कैसी,
सुन्दर और कहां कहिये,
अब या मनकी गति दीसत ऐसी.

मन अनेक प्रकार का है, मन दूसरो का बुरा भी सोचा करता है। कभी द्रव्य के लिये अनेक मिथ्या कल्पनाएं करता है। कभी यह मनुष्य मेरा भाई बन्धु है अगर वह मर जाय तो हमें उसका सब हक मिल जाय जिसके लिये अनेक घाट घडा करता है, मन अनेक मिथ्या तरंग पैदा करता है।

दोहा:-मनना तरंगो मस बनी, मन मधे समी जाय ;
सागर लहेरों लक्ष थई, सागर मांही समाय.

मन में नीच घाट घडने वाले घातकी कसाई से भी अधिक बदतर है। कसाई तो एक दिन मे गिनती के जीव मारता है, परन्तु हृदय का घात की

कमाई समस्त दिन भर में न मालूम कितना की घात सोचता है। जिसकी गणना भी अशक्य है। कहा है कि —

दोहा.-घातकी घाट घडे घणा, खाटको करतां छेक, तेमां नहिं डर के दया, पापी प्राणी एक.

जब अपने स्वार्थ के कारण दूसरों की घात सोचता है, तब उसके मन में तनिक भी परभव का डर या दया नहीं आती। जितने मन से चिकने कर्म बंधते है उतने वचन या काया से नहीं बंधते। कारण मन का वेग अथाह है। यह एक क्षण भर में समस्त भूमण्डल में पर्यटण कर सकता है। कितने ही मनुष्य अकारण ही अपने मन में बुरे विचार किया करते है। जैसे कोई मनुष्य किसी मनुष्य को फाँसी पर चढाने के लिये ले जाता हुआ देखकर कहता है कि ठीक हुआ, आज यह बराबर फंदेमें फसा ऐसेको तो ऐसी शिक्षा होनी ही चाहिए, ऐसे मनुष्यों का तो दुनिया में से मर जाना ही श्रेष्ठ है। भला सोचो तो। ऐसा कहने से उसे क्या लाभ मिला? व्यर्थ चिकने कर्म बांध लिये। सिर्फ स्वार्थ के कारण ही निर्दय बन दुर्ध्यान ध्याने वाला अपनी आत्माका हित नहीं कर सकता। सिर्फ थोडी सी उमर के लिये अनेक जन्मोंतपक करने वाली दुष्ट निर्दय कल्पना करना अपनी आत्मा के लिये प्रतिदिन अवनति की गर्त खोलना है। कई समय तो इसका फल उसी भव में प्राप्त हो जाता है। दूसरों का बुरा सोचना अपना अपने हाथ से बुरा कर लेने के समान है।

उदाहरणार्थ—सम्वत् १९५६ में भावनगर में अधिक जोरसे प्लेग हुआ था। कई मनुष्य भाग गए। बिचारे लखपति गृहस्थ भी अपने सुन्दर बाग बगीचे वाले बंगलों को छोड वनवासी की तरह झोपडे बाँधकर बसे थे। कितने ही आसपास के गाँवोंमें चलेगए। तब भी प्लेग का जोर कम न हुआ। दिवाली के दिनों में तो सौ सौ सवासो केस रोज होते थे। उस समय भोगापुर के पास एक मोमन लकडियें बेचता था, जब उसका अधिक माल बिकता तब बहुत प्रसन्न होता और जिस दिन थोडा बिकता उस दिन उसका मन अत्यन्त दुःखी होता था। एक दिन उसकी समस्त लकडिया का ढेर बिक गया, तुरन्त उसने और मगाकर सब फिर भर दिया। परन्तु जब कार्तिक में प्लेग का जोर कम हुआ, केस भी कम होने लगे, शहर में मनुष्यों का आवागमन भी होने लगा;

तब अपना व्यापार कम होता देखकर उस शमशानी मोमन का मन अधिक चिन्तातुर हुआ। उसने मनमें सोचा कि "अरे! मेरी ये लकडियें सब पडी रहेंगी अभी तक तो दो वखारियां भरी हैं, इसीलिये ये सब बिक जाय तो अच्छा हो। परन्तु मुर्दे तो रोज कम आते हैं, इसीलिए मेरा माल कैसे बिकेगा।' इत्यादि कल्पनाएं कर अफसोस करने लगा। मनुष्यों को प्राय कर्मका बदला इस लोक में या परलोक में अवश्य देना पडता है। इस मोमन को तो इस लोक में ही बानगी ज्यों घातकी कर्म का बदला मिल गया। थोडे ही समय पश्चात् सर्वत्र शहर में तो शान्ति छा गई, परन्तु उसके दोनों लडकों को अचानक प्लेग होगया और चौबीस घन्टे में ये दोनो लडके मृत्यु पा परलोक वासी हो गए। जिससे उस दुखी मोमन के दुख का पार ही न रहा। अपनी बुरी कल्पना का पूर्ण पश्चात्ताप हुआ। चिल्लाकर बहुत रोया। लोगों के सामने अपने पाप का पडदा खोल दिखाया, रोते हुए सुनाया कि "भाइयों! मेरे कृत कर्म ही मुझे भोगना पडे हैं, मेरी घातकी कल्पना का ही यह अनिष्ट फल मुझे प्राप्त हुआ है, मैंने मेरे माल की बिक्री के लिए समस्त शहर का बुरा चाहा, परन्तु अन्त में मेरा ही बुरा हुआ। बुरे कामों का फल बुरा ही मिलता है।

दोहाः-परनुं बुरु ताकतां, निजनुं ज थाय जरूर ;
प्रजालतां हनुमानने, प्रजल्युं लंकापुर.
वेर परस्पर नातमां, राखे हलकी जात ;
श्वान जाय जो काशीये, नडशे वचमां नात.

इस तरह आज कल अपनी मन वृत्तियां इतनी विषैली ईर्षालु हो गई हैं कि, दूसरों को व्यापार में लाभ होता देखकर जवासे की तरह जलती है, या उसके समक्ष ही दुकान खोलकर उसके व्यापार में खलल पहुँचाती है, हो सके वहा तक उसे नष्ट भ्रष्ट करने मे नही चूकती। अगर कोई दूसरों का बुरा चाहते हों, झूठी बातें चलाकर, साक्षियें भरवाकर व्यापारमें अनेक कूड कपटाई के कार्य करते हों, दुराचार और दुर्गुणों में तल्लीन रहते हों और मोक्ष सुख प्राप्त करने के लिये हमेशा धर्मध्यान भी करते हों, मालायें जपते हों, उपवास करते हों, विविध तप करते हों, परन्तु मन में अनेक मलीनता के लहर उठाते हों, व्यभिचा-

यदि दुष्ट कार्यों से कभी दिल में न डरते हो, अनीति के पथ में गिरकर जिन्दगी पर स्याही पोतने हो, शरीर के अवयवों को सन्मार्ग के बदले उन्मार्ग पर लगाते हो, धर्मध्यान में आडम्बर या ढोंग रचते हो, तो उसका कल्याण कैसे हो सकता है ? अर्थात् कभी नहीं हो सकता। कहता है कि —

शार्दूल विक्रीडित वृत.

हस्तौ दान विवर्जितौ श्रुतिपटौ सारस्वत द्रौहिणौ ।
नेत्रे साधु विलोकनेन रहितौ पादौ न तीर्थं गतौ ॥
अन्यायाद् ग्रहित धन च सतत, तुङ्गेण गर्व शिरः ।
रे रे जम्बुक ! मुञ्च मुञ्च सहसा नीचस्य निंद्य वपु ॥

अर्थात् —नदी के किनारे किसी एक नीच मनुष्य के शव का पडा हुआ देखकर एक शियाल उसे खाने चला। उस समय एक विद्वान उस शव को पहिचानकर शियाल से कहता है कि –हे शियाल ! यह शरीर नीच और निंद्य है, तेरे खाने योग्य नहीं। इसने अपनी समस्त जिन्दगीमें कभी हाथसे दान न किया इसलिये इसके हाथ अपवित्र है इसने कभी अपने कर्ण पटुओंसे शास्त्र श्रवण नहीं किया, अर्थात यह शास्त्र श्रवण का सदा द्रोहीथा इसलिये इसके श्रवण अपवित्र है। इसके नेत्र साधु सन्त इत्यादि के दर्शन रहित है इसलिये अभक्ष है, इसके दोनों पाँव उत्तम पुरुषों के दर्शनार्थ, तीर्थाटन के काम न आनेसे अभक्षहै, इसने अपने समस्त जीवन को अन्याय और अधर्म में ही बिताया है अथवा बिचारे गरीबों के निःश्वास से द्रव्य प्राप्त किया है तथा मस्तक भी अभिमान से पूर्ण भरा हुआ है इसलिए यह भी अखाद्य है। इसके शरीर का कोई भी ऐसा भाग नहीं जिससे इसने कुछ सुकृत्य किया हो। इसलिए हे जम्बुक ! इसकी समस्त देह अपवित्र होने से अभक्ष है॥ सार यह है कि समस्त जीवन भर प्रतिकूल कार्य कर सुख प्राप्त करने की इच्छा रखना यह केवल भ्रांति में पडना है। चाहे जितना धर्मध्यान किया जाय, कष्ट क्रियाएं की जाय, परन्तु जब तक मनोवृत्ति के व्यापार दुष्टता में अनीतिमार्ग में ही प्रवर्तते है, तब तक कल्याण कैसे हो सकता है ? अर्थात् कभी नहीं हो सकता। इस पर एक योगी का दृष्टांत कहते हैं।

मोहवश हो मिथ्याभाषी योगीकी कर्म कथा.

जमना नदी के किनारे एक महात्मा हमेशा ध्यान धर कर समाधी में बैठे रहते थे और पंच धुनी की तीव्र तपश्चर्या से देह को अत्यन्त कष्ट देते थे, इन महात्मा की यह उत्कृष्ट तपश्चर्या देखकर कितने ही गांव के लोग उनकी खूब भक्ति करते और प्रत्येक वस्तु उनके यहा पहुचा देते थे। ऐसे तपोधन महात्मा की कीर्ति एक दिन राजा ने भी सुनी, वह भी महात्मा के दर्शन करने आया। उनकी तीव्र तपस्या देखकर राजा परम आनन्दित हुआ और उसने हाथ जोड अत्यन्त स्तुति किए पश्चात् कहा कि हे कृपालु तपोधन महात्मन्! कृपा करके आ आपके दास के गृह को पवित्र करें, कल प्रसाद लेने मेरे घर कृपा करें। महात्मा ने कहा—ठीक है तेरी ऐसी ही इच्छा है तो तेरे घर कल आजायगे। दूसरे दिन अत्याग्रह के साथ वे महात्मा राजा के यहा भोजन करने पधारे। आज दिन राजाने भी सफल समझा। मानपूर्वक महात्मा की भक्ति करने लगा। चाँदी की चौकी पर महात्मा को बैठाया, फिर राजा के हुक्मानुसार उनकी एक लड़की सुवर्ण थाल में भोजन परोसकर बाहर लाई और महात्मा के सामने रख दी। महात्मा तो इस कुवरी को देखकर मदांध ही बनगए—चकित हो गए, मानो अचानक यह विद्युत प्रवाह कैसे हो गया? उसकी तेजस्विता, रूप लावण्यता देखकर मोहांध हो गये आहाहा! यह कौन है? क्या यह नाग कन्या है या देव कन्या या किन्नरी!

> किं रोहिणी किं सुरसुन्दरीयं। किमिन्दिरा किं मदनागनाया।
> विद्याधरी किं किमु नागनारी। कुतुहलात्क्रीडति काननेऽस्मिन् ॥१॥

अर्थात्—क्या यह रोहिणी है या सुर सुन्दरी है? इन्दिरा है या रति देवी है? विद्याधरी है या नाग नारी, क्या है? अहाहा! कैसे कुतुहल से क्रीडा कर रही है! योगीराज का चित्त मोह के कारण उचट गया। दुष्ट कामविकार ने सब भान भुला दिया। यह सच है कि जब हृदय विषय वासना में अंध बन जाता है तब उसे कर्तव्याकर्तव्य का तनिक भी भान नहीं रहता और उसका ज्ञान भी सब नष्ट हो जाता है।

अपने दृष्टान्त के मुख पात्र योगीराज का भी यही हाल हुआ। विचार बदल गए हृदय में दुष्ट काम राक्षसके पैठनेसे, खाना तो वे भूल ही गए, चाहे जो कुछ हो यह राजकन्या मुझे प्राप्त होनी चाहिये, परन्तु पत्थर में छेद करने के

समान इस दुष्कर कार्य मे भी मुझे कुछ युक्ति करना होगी। कपट जाल से राजा प्रपंच में फँसाना होगा इत्यादि विचारों में कुछ खाना खाया न-खाया कि वह महात्मा उठकर राजा के साथ दिवानखाने में पधार गए। राजा ने एक मखमल के आसन पर योगीराज का बिठाये, पखे से पवन झूलते हुए राजा ने उनसे पूछा कि कृपालु गुरु! आप ने मेरे घर पधार कर पूर्ण प्रसाद भी नहीं किया, इसका क्या कारण है? आपका चित्त कुछ खिन्नातुर दिखता है। कुछ शारीरिक रोग हो तो फरमाइये कि जिसकी दवाई की जाय। यह प्रार्थना सुनकर महात्मा ने सोचा कि अभी अच्छा मौका है, अपनी फैलाई हुई इन्द्रजाल इस वक्त फब जायगी। फिर गम्भीर स्वर से बोले राजा जी! आप तो कुछ नहीं है, हम फकड है, हम क्या लेना देना है, सिर्फ परोपकार के लिए भूलोक में फिरते है। आप के आग्रह से आप के घर चले आए, जिसका निमक खावे उसका कुछ भला भी करना चाहिए तब राम जी अपना भी भला करगे। तुम्हारी भलाई के लिए मेरे दिल में एक विचार उत्पन्न हुआ है परन्तु कहने म कुछ सार नहीं। हे तोबा तोबा! तुम्हारे जैसा धर्मात्मा राजा! अहाहा! बड़ा दुख! क्या कर्तार की किताब है! राजा को इन वाक्यों से बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने हाथ जोड नम्रता से पूछा कि महात्मन्! ऐसा वह क्या है! आप कृपा करके फरमावें। तब महात्मा बोले, जैसी तुम्हारी इच्छा तुम्हारे भले के लिये कहता हूं। मुझे कुछ लेना देना नहीं है। राजा ने कहा, अवश्य कृपा करके फरमाइए। तब जोगी राज बोले, "क्या? जो तुम्हारे घर म यह कुंवारी बालिका है,-इसकी रेखा खराब है, थोडे ही दिनोमे तुम्हारे राज्यकी दुर्दशा हो जायगी। शत्रु राजा चढकर तुम्हारी जान माल सब लूट लेंगे। जहां तक यह कुंवारी बालिका तुम्हारे घर में रहेगी वहा तक तुम्हारी बडी कमबख्ती होगी। यह निश्चय समझना। तुम्हारे भले के लिए सिर्फ उपकार बुद्धिसे प्रेरित हो तुम्हें ठीक बात सुना रहा हूं। मेरा इसमें तनिक भी स्वार्थ नहीं है! तुम्हारा रामजी भला करें हमारी तो सर्वथ तुम्हें यही शुभाशिष है।" यह सुनकर राजा आश्चर्य म मग्न होगया, उसे अपनी-कन्या पर अत्यंत क्रोध आया। राज्य जाने के डर से उसने उसका सत्यानाश करना चाहा। प्राय राजा के कान होते हैं, आंख नहीं होती यह कहावत यथार्थ है। फिर राजा ने महात्मा से पूछा "आपका यह कहना तो ठीक है। परन्तु अब म क्या करूँ? मेरा राज्य क्या कर रहेगा? तुम्हारी तलवार से उसका शिरोच्छेदन करूं? या जहर देकर मार डाल

क्या करूं ? महात्माने सोचा कि यह मार डालेगा तो भोग भी नहीं मिलेंगे और मन की इच्छा मन में ही रह जायगी। इसलिये ऐसी युक्ति बनाऊं जिससे कन्या मुझे प्राप्त हो सके। फिर बोले कि नहीं राजाजी ! ऐसी बालहत्या मत करें। इसे एक सन्दूक में बन्द कर जमना जी में बहा दें, इसके भाग्यानुसार जहां जाना होगा वहां बहती चली जायगी। राजा को यह युक्ति ठीक जची। उन्होंने अपनी परम लाडिली बालिका परन्तु अभी शत्रु ज्यों गिनाती राजकन्या को एक सन्दूक में बन्द कर अपने नौकरों के साथ जमनाजी में फिकवा दी। फिर महात्मा ने मनमें हरषाते हुए सोचा कि—हां, यह ठीक हुआ। अब मुझे अपने समाधिस्थान पर पहुंच जाना चाहिये। राजा से कुछ देह चिंता का बहाना बनाकर महात्मा जी वहाँ से खिसके और अपनी मढैयामें जा पहुंचे। मढी एक दो कोस दूर जमना जी के किनारे पर ही थी। वहां वे अपने शिष्य वृन्दों के साथ रहते और तप करने गाँव में आते थे। मढी में जाकर महात्मा ने अपने शिष्य वृन्दों को बुलाये और कहा कि—देखो रात रात को मुझे एक स्वप्न आया था। उस स्वप्न में मुझे ऐसा भान हुआ कि जमना मैया में एक बड़ी निधान की सन्दूक बहती चली आ रही है जिसका फल आज कुछ मिलना चाहिये। इसलिये तुम जमना मैया के किनारे पर जाओ और कुछ सन्दूक वगैरह निधान की मिले तो लेकर आओ। महात्मा के मुँह से यह बात सुनकर सबको विश्वास हुआ और वे सब निधान की आशा से जमना तट पर जाकर सन्दूक की राह देखने बैठे। अब इधर सन्दूक में बन्द किये पश्चात् राजकन्या का क्या हुआ सो सुनिये।

बिचारी राजकन्या रोती तड़फती संदूक में बन्द कर ताला दे नदीमें बहा दी, वह सन्दूक तैरते २ चली। कुंवरीके अहोभाग्य से उस सन्दूक को एक कोस दूर रहे हुए गाँव के एक छोटे राजा ने नदी तट के महल परसे आती हुई देखी सन्दूक कहाँ से आई ? राजा ने चकित हो अपने मनुष्यों द्वारा नदी में से सन्दूक मंगवाई। ताला खोलकर देखा तो उसमें एक स्वरूपवान कन्या थी, राजा ने उसे देखकर चकित हो पूछा—बेटी ! तू कहाँ से आई ? फिर कुंवरी बोली कि एक योगी के कहने से राजा ने ऐसा कृत्य किया। फिर वह चतुर होने से सब समझ गया कि इसमें कुछ दाल में काला है। फिर उसने लड़की को वहीं रखली और अपने बाग में से एक बड़ा भारी रीछ पकड़ मंगाया और सन्दूकमें बन्द कर नदी में छोड़ दिया और एक मनुष्य को गुप्तचर बना के भेजा कि, यह सन्दूक कहां जाती है कौन लेता है उसका क्या होता है ? इसकी सम्भाल रखना।

यह सदूक बहती २ जहाँ उन योगी के शिष्य राह देखते बैठेहें वहां आई, जैसे देखकर मेवादास बोला, देख तापीदास, गुरुजीके वचनफल। निधान आया, अब लेने वास्ते चलो। फिर अन्दर पड़े सदूक पकड लाये और बाहर खींचा। सदूक का भार देखकर हरिदास ने कहा —ऐ गोविंददास! निधान तो बहुत बडा मालूम होता है, देख तो कितना वजन हैं। अपने गुरु जी बडे भाग्यवान है। या परस्पर बातें करते सदूक को उठाकर मढैया में ले गए। गुरु जी तो सदूक देखकर हर्ष बावले होगए हाँ! अब मेरी मन कामना पूर्ण होगी। फिर शिष्यों से कहा? " इस सदूक को अपने तीसरे कोठे में गुप्त भाडार में ले जाओ। वे लक्ष्मी माता है जिसका पूजन करना होगा। वहाँ तुम्हारे किसीका काम नहीं है, इसलिये मैं अन्दर पूजन करने जाता हू और तुम सब बाहर से किवाड देकर वाजित्र बजाना, करताल, नगारे, शंख खूब बजाना (जिससे योगी का यह आशय था कि सदूक खोलने पर कुंवरी से बलात्कार भी किया जाय और वह चिल्लाय तो भी ये न सुन सकें) फिर मैं किवाड खोलने के लिए कहू तब ही खोलना।" सब शिष्यों ने इस गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य किया। वह जोगी अन्दर के कमरे में घुसा कि शिष्यों ने चट द्वार बन्दकर खूब जोर से वाजित्र बजाना शुरू किया।

फिर योगी ने अति प्रसन्नता से उस सदूक को खोला। जिसमें से बहुत दिन का भूखा रीछ निकला। वह एक दम थाप मारकर गुरु जी को खागया। सचमुच दुष्ट को दुष्टता का फल मिला? मनुष्य क्या सोचता है-और दैव कुछ भिन्न ही दर्शन देता है—कर दिखाता है। कहा है कि —

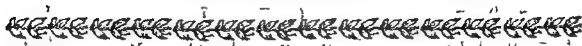
मनसा चिंतयेदन्य। दैवमन्यत्र चिंतयेत्।

राज्यकन्या प्रसगेन। जटिलो व्याघ्र भक्षित ॥१॥

फिर रीछ किवाड की आड में छिपकर बैठा रहा। चेले वाजित्र बजा २ कर थकगये, परन्तु गुरु जी ने, किवाड खोलने को न कहा। बहुत समय तक राह देखी, अन्त में किवाड खोला तो रीछ भग चला। शिष्य चकित हो गए। निधान कहाँ गए? अरे २। गुरु जी को तो इस रीछ ने मार डाला यह क्या हुआ? तोबा तोबा हे भगवान। फिर गुरुजी के बिखरे हुए हाड चाम के टुकड़े इकट्ठे कर अन्तक्रिया की। वह गुप्तचर यह सब हाल देखकर अपने स्थान पर आया और राजा को सब हकीकत कह सुनाई। उस राजा ने यह राज्यकन्या अपने मालिक बडे राजा को वापिस सोंपी और सब हकीकत कही और अत

में कहा कि "ऐसे दुष्ट, धूर्त, प्रपंची वाग्जालोंका कभी विश्वास न करना चाहिये और बिना सोचे समझे उनके वचन को विधि वाक्य समझ अपनी प्यारी लाड़ली बालिका को कष्ट न पहुंचाना चाहिये।

दोहा:-बुरे बुराई नीपजे, भले भलाई लज,
कुंवरी तो राजाग्रही, जोगी मकड खज ;



श्री वितराग ! वितनोतु सदा सुबोधं ।
बोधं विना न च कदा किल मुक्तिपद्मम् ॥
मुक्तिं विना न गमनागमन प्रणाशो ।
नाशं विना न च कदाचिदनंतसौख्यम् ॥८॥



अर्थ,—हे श्री वीतराग प्रभु! मुझे हमेशा उत्तम ज्ञान प्रदान कीजिए कारण कि बिना ज्ञान के कभी मुक्ति रूप पद्म नहीं प्राप्त होसक्ता। मुक्ति के बिना गमनागमन रूपी जन्म चौरासी का विनाश नहीं हो सक्ता और गमनागमन (जन्म मृत्यु का संसृति चक्र) नाश हुए बिना मुक्ति के अनन्त सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकते।

भावार्थ—जिनके मन से राग और द्वेष, दोनों दोष भूल से नष्ट होगए हैं तथा जिन्हें केवल श्री प्राप्ति है ऐसे हे वीतराग! हे प्रभु! मुझे तो आप उत्तम ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान दीजिये। कारण कि उस ज्ञान के बिना कभी भी मनुष्य तीन काल में भी मुक्ति नहीं पा सक्ता और जब तक यह प्राप्त न हो तब तक चार गति, चौरासी लाख जीव योनि और चौवीस दंडक रूप संसार में गमनागमन अर्थात् परिभ्रमण का अन्त नहीं आ सक्ता। जब तक संसार के परिभ्रमण का नाश न हो जब तक तीन लोक में अक्षय मोक्षलक्ष्मी का सुख इस आत्मा को प्राप्त नहीं हो सक्ता। इसलिए हे नाथ! मुझे उत्तम ज्ञान दीजिये यही मेरी इच्छा

है। कारण यह ज्ञान सर्वोत्कृष्ट पदार्थ है, इसलिए श्री वीतराग प्रभु की प्रार्थना करने वाले मुमुक्षुजन अन्य कोई पौद्गलिक पदार्थ की इच्छा न करते सिर्फ ज्ञान की ही चाह प्रदर्शित करते हैं, क्योंकि एक ज्ञान प्राप्त होने से सब इष्ट पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। ज्ञान यह दुःख में दिलासा देने वाला है और अज्ञान में डूबे हुए प्राणी का आधार है जिन्हें ज्ञान प्राप्त है उन्हें संसार के शुभाशुभ अवसरों से आश्चर्य और विषाद नहीं हो सकता। अष्टावक्र गीता में मुनि अष्टावक्र ज्ञान देते हुए राजा जनक से कहते हैं कि —

❋ श्लोक ❋

भावा भाव विकारश्च। स्व भावादिति निश्चयी॥
निर्विकारा गत क्लेश। सुखेनैवोपशाम्यति॥ १॥
आपद् संपद् काले। दैवादेवेति निश्चयी।
तृप्त स्वस्थेंद्रियो नित्यं। न वांछति न शोचति॥ २॥
चिंतया जायते दुःखं।नान्यथेहेति निश्चयी।
तयाहीन सुखी शांत। सर्वत्र गलितस्पृहः॥ ३॥

अर्थात्—किसी प्रकार के भावाभावादि पदार्थों के विकार स्वभाव से अर्थात् पूर्व संस्कारों से उत्पन्न होते हैं, तथा आपत्ति और सम्पत्ति समयानुसार अपने २ कर्म संयोग से प्राप्त होती है। परन्तु कोई नहीं देखता ऐसा जिन्हें निश्चय है, वे अक्लेशी, निर्विकारी, ज्ञानवान पुरुष सुखपूर्वक शांत-भाव से रहते हैं। प्रत्येक दुःख चिन्ता से उत्पन्न होता है। इसलिये चिंता त्याग बिना किसी की स्पृहा किए सब प्रकार से शांत स्वभाव वाले ज्ञानी पुरुष सदा सुख से रहते हैं। किसी प्रकार की वांच्छना या चिन्ता नहीं करते हैं। इसलिए ज्ञान यह अपूर्व वस्तु है। जो विष और शक्कर को पहिचानते हैं वे विष त्याग देते हैं। जीव और अजीव को पहिचानने वाला जीव को समझ दया पालता है और अजीव पर से ममत्व भाव घटाता है। परन्तु जो इसका ज्ञान न हो तो क्या तजें और क्या भजें? इसीलिए कहा है कि **"पढमं नाणं तओ दया"** अर्थात् पहले ज्ञान और फिर दया। जिस तरह समस्त देह में दो चक्षु श्रेष्ठ हैं, उसी तरह मोक्ष प्राप्ति के सब साधनों में ज्ञान यह प्राथमिक उपार्जनीय है। आज कल कई मनुष्य विद्योपार्जन करते हैं, परन्तु उस विद्या को बिना ज्ञान का स्वरूप

नारी आवे शीश नमावे, गावे चरण पलोटी,
मस्तराम महाराज कहे, माया सहुथी मोटी;
चौ०—साधे संयम आपे ढोंगी, शोधे वैद शरीरे रोगी,
ऊपर साधु मनमां भोगी, मस्तराम तो हरदम जोगी;
भगवां पहिरे रातां चोल, त्याग वैराग्य देखाड़े डोल,
मनगावे मायानां धोल,मस्तराम माया लागे मीठोगोल
पंडित बेसी पुराण जोता, नारी नेणबाणमां महोता,
भवसागरमां खावे गोथां, मस्तराम मन भर पहोत्या;

ऊपर कहे हुए निस्पृही महात्मा श्री मस्तराम के हर एक शब्द मुमुक्षु प्राणियों को सचोट असर उत्पन्न कराने वाले हैं। मतलब यह कि ज्ञान की कमी ही यह मोह विडम्बना पैदा करती है। इसलिये हे मुमुक्षु बंधुओ! और सुशील बहिनो! चाहे जितना पढ़ो, ज्ञान खजाना लूट सको उतना लूटो, पढ़े बिना सत्यासत्य का भान कभी नहीं होगा। हेयोपादेय का पथ नहीं पहिचान सकोगे। परंतु पढ़ लिख कर आत्मा को सद्गुणी बनाओ, दुराचार से दूर रहो, प्रत्येक प्राणी पर परोपकार वृत्ति रक्खो, सुशीलता का शृंगार सजो, तामसी गुण तजो, विचार से निर्णय करो, सुशीलता का व्यवहार रक्खो, हठ त्यागो, मोह ममत्व कम करो, कुबुद्धि दूर करो, सुबुद्धि में रमो, कुटिलता काटो, सत्य में मति दृढ़ करो, हरेक आत्मा को आनन्द दो, आत्मा को अज्ञान में मत गिरने दो, भलाई के भंडार भरो, बुराई को त्यागो, मान को मारो, माया को विदारो, उन्मार्ग छोडो, सन्मार्ग में बुद्धि लगाओ, सार गृहो, सदाचार में लीन रहो, तृष्णा में मत डूबो, लोभ में मत फसो, दुर्व्यसन में मत लगो, अनीति मत करो, विषय कषाय में मत रमो, गर्व गजेंद्र पर चढ कर मत घूमो, आत्मा को नम्र बनाओ, मान्य पुरुष को मान दो, दुःखी के दुःख हरो, गरीबों के हृदय मत जलाओ, धर्म की टेक प्रीति से पालो, सदा सद्व्यवहार से चलो, शील से आत्मा का अजन करो, निज स्वरूप को पहिचानो, पाप को हटाओ, दुर्जन की संगति

मत करो, दुष्कृत्यों को निकाल दो और सद्गुरु के चरण के उपासक बनो, यही पढ़ने का सार है। पढनेवाले के यही सच भूषण है। आत्मा को उन्नति में लानेवाले येही सर्वोत्तम गुण हैं। इसी लिये ज्ञान गुणियों के लिये ही सर्वोत्तम है, अज्ञानी और मूर्ख मनुष्यों को ज्ञान की अपूर्व महिमा मालूम ही नहीं होसक्ती।

दोहा—ज्ञानी ज्ञान जाणे खरो, समझे अन्तर भेद;
मूरख ने नहिं पारखुं, उलटो करशे खेद.

इसलिये ज्ञानी ही ज्ञान की कदर जान सक्ते हैं। सूर्य की महिमा उल्लू क्या जान सक्ता है। शक्कर का स्वाद सूअर और गधा क्या जान सक्ता है? नागरवेल के पान की इज्जत महिषी सुत (पाडा) क्या कर सक्ता है? इसी तरह अज्ञानी ज्ञान के गुण क्या जान सक्ता है! ज्ञान का प्रकाश सूर्य के प्रकाश समान है। सूर्योदय से जिस तरह अंधकार का नाश हो जाता है उसी तरह ज्ञान के प्रकाशित होते ही अज्ञानतम विलीन होजाता है। कहा है कि —

❀ सवैया ❀

ज्ञान उदे जिनके घटअन्तर, ज्योति जगी मति होतीनमेली,
बाहिर दृष्टि मीटी जिनके हिय, आत्मज्ञानकला विधि फैली;
जे जड़चेतन भिन्न लखे, सुविवेक लिये परखे गुन थेली,
ते जगमें परमार्थ जानी, गहे रुचि मानी अध्यात्म शैली.

दोहा—ज्ञानी ज्ञान मगन रहे, रागादिक मल खोय;
चित्त उदास करनी करे, करम बंध नहिं होय.
मोह महातम मल हरे, धरे सुमति प्रकाश;
मुगति पंथ परगट करे, दीपक ज्ञान विलास.

मतलब यह कि ज्ञान अनेक गुणों का भंडार है। यह आत्मा अज्ञान से ही इस अटवी मे भटक रहा है, कुमति से लिपट रहा है, मोह में मर रहा है और माया के घनांधकार में घूम रहा है। इसलिये हे रागद्वेष के जीतने वाले प्रभु! मुझे ज्ञान दीजिये, अन्य किसी पदार्थ की वाञ्छा नहीं है। कारण विना ज्ञान के कभी मोक्ष नहीं पासक्ता, और विना मोक्षके अखंड सुख भी प्राप्त नहीं होसक्ता। इसलिये ज्ञान धन यह सब धनों की अपेक्षा प्रधान और श्रेष्ठ है। विना ज्ञान के मनुष्य को कितनी हानियां सहनी पडती है। यह निम्नोक्त दृष्टांत से स्पष्ट प्रगट हो जायगा।

निरक्षर भट्टाचार्य नगर-सेठ के पुत्र हीराचंदजी की कथा.

किसी स्त्री का पति धनोपार्जन के लिये विदेश गया था। उसका बारह वर्ष पश्चात् कुशलता की—सुख शांति की उस स्त्री के नामकी चिट्ठी आई। स्त्री चिट्ठी देखकर अत्यंत प्रसन्न हुई। परंतु स्वयं पढी न होने से हाथ में चिट्ठी ले किसी से पढाने के लिये चली। रास्ते में एक दुकान पर पच्चीस वर्ष का हीराचंदजी नामक एक जवान लडका बैठा था। वह उस शहर के प्रख्यात नवलखा सेठ नवलशा नानजी का जेष्ठ पुत्र था। घर में उस पर सबका अत्यंत प्यार होने से लाडकोड में वह कुछ न पढ सका। उसके मन में अभिमान था कि पढने के लिये व्यर्थ ही माथाकूट में क्यों करूं? मेरे घर कौनसी कमी है? दूसरों की नौकरी करने, गुलामगिरी उठाने कहां जाना है? घर में विपुल धन है जिससे सब कार्य सिद्ध होते ही है। पढना तो गरीबों का कार्य है। ऐसे मिथ्याभिमान में वह डूब रहा था, इसलिये कुछ न पढ सका। प्रायः लक्ष्मीवान के लडके अपढ ही होते हैं; कारण विद्या कष्टसाध्य है, मगजमारी श्रम और दुःख उठाये सिवाय प्राप्त नहीं होसक्ती। कहा है कि —

सुखार्थी वा त्यजेद् विद्या। विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या। विद्यार्थिनः कुतः सुखम्॥

अर्थात्—जो सुख चाहता हैं वह विद्या त्याग दे और जो विद्यार्थी है वह सुख त्याग दे। कारण कि जहां सुख हैं वहां विद्या नहीं है और जहाँ विद्या है वहा सुख नहीं है। सारांश—विद्या प्राप्त करने में कष्ट उठाने पडते है, इसलिये

सुखार्थी विद्या पढना छोड देते हैं। हीराचन्दजी भी सुखार्थी बन विद्या का पूर्ण तिरस्कार किया। जिस समय उस बाई चिट्ठी पढानेआई, तब वह अकेला ही था जिसने शरीर पर सुशोभित अलंकार पहने थे। मुंह में पान चाव रक्खा था और हाथ में छडी थी। गद्दी तकिये पर छैल छबीले की तरह घुटने टेक बैठा था। ये बडे आदमी पढे होगें ऐसा समझकर वह बाई चिट्ठी देकर बोली कि हे वीर! यह चिट्ठी विदेश से मेरे पति की बहुत दिनों में आई है। इसमें क्या लिखा है कृपाकर पढ दे। हीराचन्द जी हाथ में चिट्ठी ले अत्यन्त गहन विचार में लीन हो गया, मुझ से पढते नहीं बनता, यह कहना उसे बहुत बुरा मालूम हुआ कारण लज्जा जाने का समय था। इसलिए उसने लिफाफा खोलकर भीतर से पत्र निकाला और गम्भीरता से देखने लगा। पत्र पर दृष्टि फैंक पढने का ढंग बनाया। परन्तु भाई साहब अपढ थे, पढें क्या उनका सिर? उस समय उन्हें न पढ़ने पर बड़ा भारी पश्चात्ताप हुआ, वह गहन विचार में पड़ गया कि अरे रे! मैं कितना मूर्ख हूं! मैं कुछ भी न पढा, समस्त जीवन मौज शौक में ही बिताया, धिक्कार है मुझे, मुझ मूर्ख शिरोमणि ने विद्यादेवी की कदर नहीं समझी अब इस समय मैं क्या उत्तर दूँ? पत्र में से क्या पढूं? या विचार करते २ उसकी आंखों से आंसू बहने लग गए। आंसू देखकर तो बाई के हृदय में बडा भारी सन्देह हुआ, हाय २ पत्र में कुछ अकुशलता के खराब समाचार होंगे, तभी बिचारे सेठ रोने लग गए हैं। फिर गद् २ कंठ से बाई बोली हे भाई! इसमें क्या लिखा है? मुझे जल्दी कह! तब उसने कहा बाई! क्या कहूं? कुछ कह नहीं सकता, इसलिए बाई रोती २ हाथ में पत्र ले वहां से चली, रास्ते में छाती सिर कूटती, मुंह से बोलती जाती थी कि हो गया? अरे रे! मेरे भाग्य फूट गए, मैं अभागिनी अपने पति से मिल भी न सकी, अब मैं दुखिनी हो गई, मेरे सौभाग्य की यह बिन्दी, चूडी और चोटी आज से उतर गई, घर आकर चूडियां तोड डाली। अडोसियों पडोसियों वालों को एवम् सगे सम्बधी इत्यादि को खबर मिली और वे भी सत्य समझकर क्रियादि कर पत्र ले नदी पर नहाने गए, नदी तट पर पहुँच कर व्यवहारानुसार पत्र निकाल पढने लगे, तो प्रारम्भ किए हुए कार्य के उसमें बिलकुल विरुद्ध लिखा था। उसमें लिखा था कि प्यारी प्राण प्रिये! मैं मौज में हूं, मेरी कुछ चिन्ता फिकर मत करना। मैं थोडे दिनों बाद तुम्हारे लिए अमूल्य वस्त्राभरण लेकर आता हूं। तुम निश्चिंत रहना। सब को कुशल समाचार कहना। चाहे सो मंगाना, सबको बुलाना इत्यादि। इस प्रकार

के सुखद समाचार पढ़कर सब को आश्चर्य हुआ और सब पीछे घर आये। घरको तो रोना धोना होही रहा था। स्त्रीना असह्य दुखसे अथाह रुदन कर रही थी, सिर कूट रही थी और दुःख से भरे हुये दयाजनक शब्द कह रही थी। फिर सब जनों ने उस स्त्री को शान्तकर पूछा कि हे बाई! यह पत्र किससे वचाया था? उसने कहा, नवलशा नानजी के चिरंजीव हीराचन्द जी से वचाया था। विचारे पढकर गद्‌ २ से रो गए थे। उनके भी अश्रुधारा बह चली थी, तब उन पुरुषों में से एक उसे जानता था उसने कहा कि अरे! यह अपढ मूर्ख है, उसे तो कुछ भी पढ़ना लिखना नहीं आता है। देखो! पत्र में तो साफ आनन्द पृच्छिकर समाचार लिखे हैं। फिर सारा पत्र पढ़कर सुनाया, तब सब को हंसी आई और आश्चर्य भी हुआ। उतारे हुए सौभाग्यालंकार वापिस पहने। फिर सब स्त्री पुरुष हसते २ अपने घर गए। रास्ते में दुकान पर बैठे हुये हीराचन्द जी से एक ने पूछा भाई! उस बाई का पत्र तुमने ही पढा था और रोने लग गये थे? तब वह बोला कि पत्र पढ़ा किसने? मैं तो मेरे दुःख को ही रो रहा था। अनपढ़-मूर्ख रहने का दुख हो आया जिससे अश्रु आगये। फिर सब मन में बडबडाते हुए अपने घर को चले गए। इस दृष्टान्त से यही तात्पर्य निकलता है कि दुनिया में अज्ञानी और अनपढ रहने से क्या परिणाम होता है? जबतक घर में अंधकार रहता है तबतक कोई वस्तु दृष्टि नहीं आता। इसी तरह ज्ञान के बिना, हेय, ज्ञेय, उपादेय अर्थात् जानने योग्य, जानने आदरने योग्य, आदरन छांडने योग्य, त्याग करने वाले पदार्थों का भान नहीं हो सका। इसलिए सब सुखों का मुख्य कारण ज्ञान ही सर्वोत्तम है। ज्ञानवान की दशा भिन्न ही होती है। कहा है कि—

❀ इन्द्रविजय छन्द ❀

काज अकाज भलो न बुरो, कुछ उत्तम अधम दृष्टि न आवे,
कायिक वाचिक मानस कर्म, शुं आप विषे न तिहु ठहरावे।
हुं करी हुं न कियो न करूं, अब यूं इंद्रियनकु वरतावे,
दिसत है व्यवहार विषे, नित्य सुन्दर ज्ञानकी कोइक पावे॥

इसलिये हे परम पवित्र प्रभु ! आप को जैसा परम ज्ञान प्राप्त है, वैसा ही ज्ञान मुझे भी बख्शिस दो कि जिससे सब कर्मों का क्षय कर अजरामरत्व को पा सकूँ, यही इस सेवक की विनीत प्रार्थना है।

त्रिद्वितुर्याऽक्षरौघश्च । वल्लभो जैन योगिनाम् ॥
द्वितुर्यौघः स्त्रियां यस्य । समेऽस्तु शरणं सदा ॥६॥

अर्थ —जिन पुरुष के नाम का दूसरा तीसरा और चौथा यह तीनों अक्षर मिलाने से जो शब्द बनता है वह मुनिवरों को वल्लभ लगता है, तथा दूसरा और चौथा यह दोनों अक्षर मिलाने से जो शब्द होता है वह स्त्रियों को वल्लभ है। ऐसे जो पुरुष हैं उनका ही मुझे सदा शरणा प्राप्त हो।

भावार्थ —इस श्लोक में एक समस्या कथित की है। जिसका उत्तर महावीर है। इस शब्दका तीसरा और चौथा अक्षर मिलानेसे "विहार" शब्द बनता है, यह शब्द जैन धर्म में विशेष प्रचलित है, इसका अर्थ देश विदेश में परिभ्रमण करना है। जैन मुनियों को शारीरिक बिना कारण के एक स्थान पर रहकर मौज आनन्द करने की मनाई है। कारण कि एक ही स्थान पर स्थिर वास रहने से अत्यन्त नुकसान होते हैं। प्रथम तो स्थिर रहनेसे लोगों की प्रीति घटती है। धर्म प्रेम की आस्ता नरम पडती है। राग बन्धन बढता है, इत्यादि अनेक साधुता के हानिकारक दोष उत्पन्न होते हैं। ज्यों एक स्थान पर पानी अधिक समय तक स्थिर रहे तो उसमें भी कितने ही दोष पैदा हो जाते हैं, वह बिलकुल जम जाता है, गंदा होजाता है, उसमें जीव जंतु की उत्पत्ति हो जाती है। फिर वह पानी लोगों को दृष्टिगत होताहै परन्तु अच्छा नहीं लगता इसलिए उसे प्रेम से अपनाते नहीं। इसी तरह साधु के लिये भी ऐसा ही समझना चाहिये। कहा है कि —

दोहा.-स्त्री पियर नर सासरे, संजमियो थीर वास ;
ए त्रणे होय अलखामणां, जो रहे घणुं स्थिरवास.

वहेतां पाणी नीरमलां, स्थिर पडयां गंदा होय;
साधुजन फरता भला, डाग न लागे कोय.
स्थिर पडयां पाणी नीरमलां, जो कदी उडां होय,
साधुजन तो स्थिर भला, जो कारण खरूं होय.

मतलब यह कि स्त्री पियर में अधिक दिन रहने से अच्छी नहीं लगती। चाहे जितने कष्ट हों या सुख हों वह सासरे ही शोभा पाती है। लोगों में भी कहावत प्रचलित है कि "पियरकी पालकीसे सासरे की शूली अच्छी है।" लडकी शमशान में सासरा हो तो वहां भी शोभा देती है। परन्तु पियर में वहुत दिन रहने से तो अवश्य प्रीति घट जाती है और कई उपालम्भ आदि सहने पडते हैं। भली बुरी बातें होने लगती हैं। इत्यादि अनेक दोप उत्पन्न होजाते हैं। इसलिये स्त्री पियर में अधिक रहनेसे शोभा नहीं पाती। अगर पुरुष सासरे रहे तो वह भी अनचाहा हो जाता है। दूर देश से जो वहुत वर्षों में आता है वह तो जमाईराज २ कहलाता है, उसका आदर मान होता है अत्यन्त सन्मान होता है। कहा है कि—

परदेश जमाई ते माणेक मूल्य, देश जमाई ते सोवन तुल्य;
गाम जमाई ते ब्राह्मण तुल, अनेघर जमाई ते टांकणतुल्य.

अर्थात्—परदेश से आया हुआ दामाद हीरे मानिक ज्यों वहु मूल्य समझा जाता है। स्वदेश से आया हुआ जमाई सोने ज्यों समझा जाता है। और गाँव का रहने वाला जमाई ब्राह्मण की तरह गिना जाता है जो रोज लोटा लेकर मागने आता है और घर ही रहने वाला जमाई फकर ज्यों समझा जाता है जिससे नौकर ज्यों हलके कार्य भी करवा लिये जाते है। जो श्वसुर गृह में रहकर सासरे के नाम से पहिचाना जाता है उस जमाई को नीति शास्त्रकारों ने भी अधमाधम कहा है।

उत्तमा आत्मना ख्याता । पितु ख्यातास्च मध्यमा ।
अधमा मातुला ख्याता । श्वशुराश्चाधमाधमा ॥

अर्थात्—अपने ही गुणों से प्रख्यात होने वाला नरोत्तम है । पिता के गुण से प्रख्याति पाने वाला नर मध्यम है । मामा के नाम से प्रख्यात होने वाला नर अधम है । और श्वसुर के नामसे प्रख्यात होने वाला नर तो अधमाधम है । इसलिये यह जरूर समझिए कि सासरेमें अधिक रहने वाला जमाई मान रहित हो जाता है । उसका तनिक भी आदर मान नहीं रहता । यह भी अवश्य याद रखिये कि जितनी मौज और प्रीति थोड़े में है उतनी ज्यादे में नहीं । थोड़े से कीमत भी अधिक आंकी जाती है और संसार में थोड़ों का मान भी अच्छा होता है । इस पर दृष्टान्त सुनाते हैं ।

थोड़ा सो मीठा—साहब को शकरकंद अच्छे लगने का दृष्टान्त ।

आजसे करीब १५-२० वर्ष पहिले भावनगरमें कोईएकबड़े भारी साहब आये थे जिन्हें भावनगर नरेशने बड़ी धूम धामके साथ नगर दिखाते हुए ले जा कर लीलगबाग के समीप की पनवाड़ी में ठहराये थे । उस बाग के माली की, उन साहब से बोल चाल एवम् पहिचान हो गयी । जिससे कुछ कहना हो तो माली उनसे हिम्मतपूर्वक कह सकता था । अब शिवरात्रि का त्यौहार आया । घर २ शकरकन्दका भोजन होने लगा क्योंकि इस दिन प्राय शकरकंद का बहुत अधिक मान होता है । माली ने विचार किया कि यह भोजन साहब के भेंट करूं तो साहब मुझपर अत्यन्त प्रसन्न होंगे, परन्तु या ले जा कर उन्हें न दूं । वह उन्हें बाफ, छिलके उतार, उनमें दूध शक्कर मिलाकर स्वादिष्ट बना एक कटोरी में भरकर उसे रकाबी में रख बंगले पर ले गया और साहब को सलाम कर वह रकाबी टेबिल पर रख दी और आप मर्यादा के साथ तनिक दूर खड़ा रहा । साहब ने पूछा ? क्यों माली भाई ! यह क्या लाये ? माली ने कहा साहब ! यह हमारे देशका मेवा है । आज हमारे हिन्दू लोगों में इसका फलाहार होता है । अगर आपको अच्छा लगे तो इसे खाइये । तब साहब ने उसका मान रखने के लिये एक चमच भरकर कुत्ते को डाली । कुत्ता आनन्द से खा गया, विश्वास ला आपने भी थोड़ा सा खाया तो अत्यन्त स्वादिष्ट लगा, अहाहा !!

जिससे वहोत अच्छा ! वहोत अच्छा ! लो माली भाई ! लो दो रुपया लो ! और और लाओ ऐसा कहकर अपने जेब में से दो रुपये निकालकर दिए । माली खुश होता हुआ सबजी मंडी में गया और दो रुपये की मन २ की दो गठडी मोल ले मजदूर के सिर पर धर साहब के सामने लाया । साहब ने पूछा यह क्या लाया ? माली ने कहा—साहब! जो यह आपने खाया वही । क्या ऐसी सस्ती चीज है ! फेंकदो, सबको कूडे में फेंक दो । हम समझे कि ऐसा मेवा तो बहुत महगा होगा । साहब ने सब फिकवा दिया ।

सारांश यह कि थोडे में जितनी मौज-कीमत, कदर और मिठास मालूम होती है उतनी अधिक से नहीं । कविश्वर दलपतराम ने कहा है कि :—

मनहरः-परोणा थई परघेर, पराधीन पेट भरे,
मानजो ते मानवीनुं, मानघटि जाय छे ;
ज्यां सुधी रहेवुं योग्य, अधिक रहे अयोग्य,
होय प्रीति परम ते, नरम थई जाय छे ;
जुओ हितकारी नहिं, जगमां जनेता जेवी,
तेणे पण दश मास, उदर रखाय छे ;
अधिक रहे जो काल, दाखे दलपतराम,
वेरभाव वदी दिले, दीलगीरी थाय छे.

मतलब यह है कि सब अपनी २ योग्यता से शोभा पाते हैं । इसी तरह एक ही स्थान पर अधिक रहने वाले साधु भी लोगों की दृष्टि से गिर जाते हैं । यह सच है कि दुनिया के सब लोग नये २ गुणानुरागी होते हैं । एक ही वस्तु दृष्टिगत होती हो तो उस पर उचित प्रीतिभाव नहीं रहता । प्रथम इस देश में तांबे पीतल के बरतन अधिक व्यवहृत थे । परंतु जब कोपर-ग्लास के नये बरतन आए तब उन धातुओं का मान घट गया और नये बरतनों की विशेष बिक्री हुई । जब जरमन सिल्वर नामक धातु के बरतन चले तब इनकी बिक्री बढ़ी ।

जब पल्युमिनियम नाम की नई धातु निकली, जिसके वरतन अत्यन्त सुन्दर, वजन में हलके तथा चमकीले होनेसे सब धातुओं की अपेक्षा इनकी बहुत मांग हुई। ज्यों२ नये देखे जाते हैं त्यों२ पुराने परसे दृष्टि हटतीजाती है। इसी प्रकार साधु महात्मा फिरते २ प्रत्येक गाव में जाते हों तो उन पर लोगों का पूर्ण प्रेम जमता रहता है। नये साधुका नाम सुनकर हृदय अत्यत प्रसन्न होता है, उत्साह से उनके दर्शन करने के लिये दौड़ता है, प्रेमपूर्वक उनका उपदेश श्रवण करता है अर्थात् नये २ साधु सन्तों के समागम से अपूर्व आनन्द उत्पन्न होता है। देखो द्वितीया का चन्द्र एक माह में उदित होता है तो लोग उत्साह से उनके दर्शन करना चाहते है। परन्तु पूर्णिमा के चन्द्र के कोई दर्शन नही करते। कहा है कि —

❋ मालिनी वृत ❋

प्रथम दिवस चन्द्र सर्व लोकैक वद्य ।
स च सकल कलाभि पूर्णचद्रो नतस्य ॥
अति परिचय दोषात् कस्य ना मानहानि ।
नवनव गुणरागी प्रायश सर्व लोक ॥ २ ॥

अर्थात्—शुक्ल पक्ष के द्वितीया के चद्र को सब लोग नमस्कार करते है, परतु सम्पूर्ण कलाओं से उदित पूर्णिमा क चद्र को कोई भी नमस्कार नहीं करता, कारण कि पद्रह दिन तक हमेशा दृष्टिगत होते रहने से उस पर का पूज्य भाव स्थिर नही रह सकता है, परतु कृष्ण पक्ष मे पद्रह दिनों के अतर से उदित होने पर द्वितीया का चन्द्र सबका वदनीय है। अति परिचय से किसकी हानि नहीं होती ? अर्थात् सबकी होती है। कारण कि प्राय दुनिया के सब लोग नये २ गुणानुरागिनी है। इसी तरह साधु पुरुष भी एक २ ग्राम में नये २ आते हों तो लोगो के भाव शुभ रहते है, जितने एक स्थान पर रहने वाले साधु पर नहीं रहते, तथा साधु भी विदेश मे परिभ्रमण करते रहने से अत्यत लाभ सचय कर सक्ते है। किसी कवि ने कहा है कि—

दोहा-विदेशमां विचर्या विना, मले न मान अपार ।
युरोपियन अहीं आवतां, बन्या राज सरदार ॥

आज कल के विदेशी राज्यकर्त्ता भी प्रथम व्योपारी हो हिन्द में प्रवेश कर क्रम २ से राज्याधिकारी होगये है। कहावत है कि "फरे वह चरे, और डरे वह मरे" इस लिये साधुओं का फिरना ही उत्तम है। एक ही स्थान पर रहने से अनेक प्रपंच होते हैं, रागद्वेष बढता है। समय पर भ्रष्ट हो प्रीति के वध में फँस जाने का अवसर आजाता है। आज न्याय से विदेशी राज्यकर्त्ताओं की सत्ता में प्रत्येक कलेक्टर, मामलतदार, न्यायाधीश तथा पोलिस खाते के प्रत्येक अमलदार सिपाही सब छोटे बडे की बदला बदली हुआ करती है। एक सिपाही की भाग्यसे ही छ महीने में बदली न होती हो? कलकत्ते के बडे लाट तथा बम्बई के गवर्नर इत्यादि भी पांच वर्ष में बदल जाते हैं। तभी राज्य कार-भार ठीक तोर से चलता है। नहीं तो अनेक दंगे, बखेडे मचें और राज्य की खुवारी होजाय। इस हेतु से जैन के प्रत्येक महात्मा को आवश्यक कारण बिना एक ही स्थान पर कायम न रहते शास्त्रकारों ने परिभ्रमण करने का हुक्म फरमाया है। **सर्वज्ञ प्रभु** की इस सुनहरी आज्ञा को तोड आजकल के कितने ही साधु एक ही जगह पडे रहते है तो उसका परिणाम क्या होता है? लोगों की दृष्टि से गिरकर वे कितने अपमानित होते है? हाँ विहार अत्यंत कष्टदाई है परंतु प्रवर मुनि उसे अपने और पराये लाभ का भंडार समझ, हितकर मान, सदा विहार करते ही हैं। कितने ही जैनेतर साधु मठ बांध कर एक गांव में ही धरना दे पडे रहते हैं परंतु उनसे स्वपर का क्या लाभ होता है? भिक्षा माँगकर पेट भरना इसमें कुछ नवीनता नहीं। इसलिये विहार कर विदेश में फिरना यही सर्वोत्तम है और जैन मुनि के लिये यही इष्ट है। पहिले महा विनयवंत पंथक जी नामके साधु के गुरु श्री शेलग राज नामक ऋषि एक ही स्थान पर रह कैसे भ्रष्ट हुए? परंतु धन्य है पंथकजी शिष्य को कि जिन्हों ने अनेक कष्ट उठाकर अत्यंत कठोर वचनों में भी सहनशील रह समताद्वारा गुरुजी को स्थान पर लाये, नहीं तो वे ऋषिराज तो प्रथम गुणस्थान पर ही पहुंच गये थे। इसीलिये सब साधुओं का विचरते रहना ही अनेक लाभदाता है, यही **श्री सर्वज्ञ प्रभु** का कथन है। कारणवश रोगादि के लिये रहना भगवान ने ही फरमाया है। इसलिये महावीर शब्द का तीसरा, दूसरा और चौथा अक्षर मिलाने से "विहार" शब्द होता है और विशेष कर यह जैन मुनियों को इष्ट है। तथा महावीर शब्द का दूसरा और चौथा अक्षर मिलकर "हार" होता है यह प्रायः स्त्रियों को प्रिय है। इस महावीर शब्दको उलट २ कर अक्षर मिलाने से कई

शब्द बनते हैं, ऐसे **श्री महावीर प्रभु !** मुझे सदा शरणदाता हों। कारण कि ये प्रभु जगत के त्राता है। भव्य जीवों को दुःख सागर से बचा अमूल्य अक्षय मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त कराते हैं, इसलिये प्रभु सदा परोपकारी हैं। कहा है कि —

❀ स्त्रगधरावृत ❀

माता भ्राता पिता तूं जगत जयकरा, नाथ मांगल्यकारी।
त्राता ख्याता कृपालु विनती उरधरी, विघ्न नांखो विदारी॥
सारा धारा तमारा परम सुखकरा, जय संताप पापो।
ऐवा प्यारा हमारा श्री वीर जीनवरा, सर्वदा कष्ट कापो॥
शातादाता तमारां चरण शुभकरा, पाप मारां अमापो।
धारा, भारी वधारी, उदय अमतणो, उर उत्साह आपो॥
विश्वाधारा अमोही अजर अघहरा, गुण तारा अमापो।
ऐवा प्यारा अमारा सुखद जीनवरावर्य आनंद आपो॥

सार यह है कि जगत के भव्य जीवों को शरण भूत **श्री वीर वर्धमान स्वामी** हमारे सदा कष्ट हरें और कल्याण करें कारण कि हे प्रभु ! आप ही इस दुनिया में सच्चे देव हैं। आप के शरणागत आए हुए सब प्राणी परमशान्ति पद को पा सकते हैं।

श्री महावीर प्रभु की स्तुति.

वीर जिनेश्वर साहेब मेरा, चरण ग्रह्या में तेरा।
महेर करीने टालो महाराजजी, जन्म मरणना फेरा॥

हवे रे हुं शरणे आव्यो ॥ टेक ॥
गर्भावास तणा दुःख मोटा, उंधे मस्तके रह्या ।
मलरे मूतर मांहे लपटाणो, एवा दुःख में सहिया ॥
नर्क निगोदमां उपनो ने चवियो, सूक्ष्म वादर थइयो ।
विंधाणो सुइ अग्र ने भागे, मान तिहां कीहां रह्यो ॥
नर्क तणी अति वेदना, उलसी सही आते जीवे बहु ।
परमधामी ने वश पड़ियो, ते जाणो तमे सहु ॥
त्रियँच तणा भव कीधा घणेरा, विवेक नहीं त्यां लगार ।
निश दिन नो व्यवहार न जाण्यो, केम उतरूं भवपार ॥
देव तणी गति पुन्ये हुं पाम्यो, विषया रसमां भीनो ।
व्रत पचखाण उदे नवी आव्या, तन मन मांहे लीनो ॥
मनुष्यनो जन्म ने धर्म सामग्री, पाम्यो हुं बहु पुन्ये ।
राग द्वेश मांहे बलीयो, न टली ममता बुद्धि ॥
एक कंचन ने बीजी रे कामनी, तेह शुं मनडुं रे बांध्युं ।
तेह तणा भोग लेवाने हुं शूरो, केम करी जिनधर्म साधुं ॥
मन नीरे दोड़ करी अति भाभी, हुं हुं कोक जड़ जेवो ।
कली २ कल्पमें जन्म गुमाव्यो, पुनरपी २ जीवो ॥
गुरुउपदेशमां नहीं कांईखामी, नआवी सदहतणा स्वामी
हवे तो वड़ाई जोइये तमारी, खिजमत मांहे त्रे खामी ॥

चार गति मांहे वहु रडवडियो, तोए न सिद्धा काज।
रुषभ कहे प्रभु तारा सेवकने, वाह्य ग्रह्यानी लाज ॥
हवे रे हुं शरणे आव्यो ॥ हो प्रभुजी० हवे ॥



सेवाऽमोघफलाऽमला गुरु जनान्नो साधिता कर्हिचिन्।
नानावैभवभोगसक्तमनसा धर्मे न दत्तादरः ॥
दत्तं नो शुभदानमत्र सुखदं धत्तं न शीलं तथा।
दुष्प्राप्यं किल मानुषं वरमिदं हाहा! मुधा हारितम्॥१०॥



अर्थ—जिसने कभी भी प्रेम से सद्गुरु का समागम कर उनकी अमोघ फल देने वाली सेवा न की, नाना प्रकार के संसारिक वैभव भोग भोगने में मन अत्यन्त आसक्त होने से शुद्ध धर्मको कभी आदर भी न दिया, सुखदाई सुपात्र को दान भी न दिया तथा शील तप और उत्तम सद्गुण भी कभी ग्रहण नहीं किये, तो अरे रे! उसने महा दुर्लभ यह मनुष्य जन्म सिर्फ व्यर्थ—यों ही खो दिया ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मनुष्य लोकमें नाना प्रकारके वैभव भोग में सदा आसक्त, मन रूपी आत्मा ने निर्मल तथा उत्कृष्ट फल देने वाली, सत्य मार्गारूढ करने वाली, कभी गुरु जनों की सेवा न की, धर्म को उचित प्रेम से—शुद्ध हृदय से आदर भी नहीं दिया तथा दान, शियल, तपका लाभ भी पवित्र भावनाएं भाकर नहीं लिया तो सचमुच इस पाप में लीन बनी हुई यह आत्मा महा संकटों से प्राप्त हुए इस मनुष्य जन्म को व्यर्थ यों ही खो दिया। सचमुच जिसका जीवन इस दुनियां में परोपकारी न हुआ उसका जीवन बिलकुल वृथा ही है। राजर्षि प्रवर श्री भर्तृहरि ने कहा है कि—

हवे रे हुं शरणे आव्यो ॥ टेक ॥
गर्भावास तणा दुःख मोटा, उंधे मस्तके रह्या ।
मलरे मूतर मांहे लपटाणो, एवा दुःख में सहिया ॥
नर्क निगोदमां उपनो ने चवियो, सूक्षम वादर थइयो।
विंधाणो सुइ अग्रने भागे, मान तिहां कीहां रह्यो ॥
नर्क तणी अति वेदना, उलसी सही आते जीवे बहु ।
परमधामी ने वश पड़ियो, ते जाणो तमे सहु ॥
त्रिर्यंच तणा भव कीधा घणेरा, विवेक नहीं त्यां लगार।
निश दिन नो व्यवहार न जाण्यो, केम उतरूं भवपार ॥
देव तणी गति पुन्ये हुं पाम्यो, विषया रसमां भीनो ।
व्रत पचखाण उदे नवी आव्या, तन मन मांहे लीनो ॥
मनुष्यनो जन्म ने धर्म सामग्री, पाम्यो हुं वहु पुन्ये ।
राग द्वेश मांहे वलीयो, न टली ममता वुद्धि ॥
एक कंचन ने बीजी रे कामनी, तेह शुं मनडुं रे वांध्युं ।
तेह तणा भोग लेवाने हुं शूरो, केम करी जिनधर्म साधुं ॥
मन नीरे दोड़ करी अति झाझी, हुं छुं कोक जड़ जेवो।
कली २ कल्पमें जन्म गुमाव्यो, पुनरपी २ जीवो ॥
गुरुउपदेशमां नहीं कांईखामी, नआवी सदहतणा स्वामी
हवे तो वड़ाई जोइये तमारी, खिजमत मांहे छे खामी॥

चार गति मांहे वहु रडवडियो, तोए न सिद्धा काज।
रुषभ कहे प्रभु तारा सेवकने, बाह्य ग्रह्यानी लाज ॥
हवे रे हुं शरणे आव्यो ॥ हो प्रभुजी० हवे ॥



सेवाऽमोघफलाऽमला गुरु जनान्नो साधिता कर्हिचिन्।
नानावैभवभोगसक्तमनसा धर्मे न दत्तादरः ॥
दत्तं नो शुभदानमत्र सुखदं धत्तं न शीलं तथा।
दुष्प्राप्यं किल मानुषं वरमिदं हाहा!मुधा हारितम्॥१०॥



अर्थ—जिसने कभी भी प्रेम से सद्गुरु का समागम कर उनकी अमोघ फल देने वाली सेवा न की, नाना प्रकार के संसारिक वैभव भोग भोगने में मन अत्यन्त आसक्त होने से शुद्ध धर्मको कभी आदर भी न दिया, सुखदाई सुपात्र को दान भी न दिया तथा शील तप और उत्तम सद्गुण भी कभी ग्रहण नहीं किये, तो अरे रे! उसने महा दुर्लभ यह मनुष्य जन्म सिर्फ व्यर्थ—यों ही खो दिया ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मनुष्य लोकमें नाना प्रकारके वैभव भोग में सदा आसक्त, मन रूपी आत्मा ने निर्मल तथा उत्कृष्ट फल देने वाली, सत्य मार्गारूढ़ करने वाली, कभी गुरु जनों की सेवा न की, धर्म को उचित प्रेम से—शुद्ध हृदय से आदर भी नहीं दिया तथा दान, शियल, तपका लाभ भी पवित्र भावनाएं भाकर नहीं लिया तो सचमुच इस पाप में लीन बनी हुई यह आत्मा महा सङ्कटों से प्राप्त हुए इस मनुष्य जन्म को व्यर्थ यों ही खो दिया। सचमुच जिसका जीवन इस दुनियां में परोपकारी न हुआ उसका जीवन बिलकुल वृथा ही है। राजर्षि प्रवर श्री भर्तृहरि ने कहा है कि—

प्राप्ता श्रिय सकल कामदुघा सतत. कि ? ।
दत्त पद शिरसि विद्विषतां तत किम् ? ॥
समानिता प्रणयिनो विभवैस्ततः किं ? ।
कल्पस्थित तनुभृतां तनुभिस्तत किम् ? ॥ ? ॥

अर्थात् —समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली लक्ष्मी जिसे प्राप्त हो गई है, रणागण मे जिसने शत्रुओं के सिर पर पाव देकर दबाये हैं, अनेक वैभवों को देकर जिसने मित्रादिकों का सन्मान खुशी से किया है और जो कल्प तक जीते रहे हैं? परन्तु जिसने ऊपर बताये हुये परभव के हितार्थ—आत्महित कार्य सुकृत्य नहीं किये ह तो ये सब किस काम के ह ? पैसे के लिए कइयों की सेवा की, परन्तु परमसुख के प्राप्त कराने वाले सद्गुरु का समागम करने वाले का जिसे अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ उसका जन्म वृथा नही गया क्यों न समझा जाय ? गुरु की भक्तिपूर्वक की हुई सेवा मनोवांछित फल देने वाली है, तथा अनत जन्म की परम्परा मिटा अक्षय मोक्षलक्ष्मी सुख देने वाली है तो भी कितने ही अज्ञ मोह में मुग्ध बने हुए मनुष्य ऐसा मानते ह कि —

दोहाः-पैसो मारो परमेश्वर, घरधणिआणी गुरु ।
दीकरा दीकरी चेला चेली, सेवा कोनी करूं? ॥

अहाहा ! वाहरे मोह महिमा ! कैसी मूर्खता ? पैसा मिला कि प्रभु मिले । पैसे में दिन रात चित्त लगाते ह । परन्तु प्रभु को नहीं ध्याते । कदाचित् कुल परम्परा से धर्मस्थान म आये और प्रभु का थाना भी लिया परन्तु चित्त की रमणता पैसे में ही रमती रहेगी ? दो घडी भी शांतता से प्रभु भक्ति में चित्त नही लगाते यही अज्ञानता की निशानी है । जैसे कोई एक श्रावक हमेशा के नियमानुसार चार घडी की सामायिक व्रत लेकर धर्मस्थान में बैठा था । प्रात काल होने से पाट पर विराजित साधु जी महाराज धर्मोपदेश का व्याख्यान सुना रहे थे, वह श्रावक हुंकारा देकर व्याख्यान सुन रहा था । इतने में उस श्रावक का भाई किसी से रुपए की उघाई कर रहा था, बहुत दिनों से वह मनुष्य रुपए न देता था इसलिये उसे बडा तकरार उसके भाई ने, कठोर वचनों की वृष्टि के साथ २ करताई और ताकीद की । वह मनुष्य भी निडर बन सन्मुख आया और परस्पर दोनों की लडाई हो गई । वह वचनों से जला हुआ मनुष्य बोल उठा कि जा जा ! नहीं देते, तुझ से हो सके सो कर लेना ? यह

लड़ाई सुनकर व्याख्यान में बैठे हुए उसके भाई को क्रोध आया और वह शांत न रह सका इसलिये एकदम व्याख्यान में से उठकर बाहर आ आप भी उस मनुष्य की ओर गजपूर्वक बढ़ने लगा, कर्कश वाक्यों की वृद्धि करने लगा और बोला कि क्या तेरे बाप के रुपए हैं जो रख लेगा! देखता हूं कैसे रखता है!! बापका माल नहीं था तो उठा ले गया! तुझसे इस बाप का माल नहीं पचेगा? याद रखना कि कचहरी में जाकर खड़े २ रुपए भिलगाऊं या नहीं? अभी तो मैं सामायिक में हूँ, परन्तु पीछे देखा जायगा। जा त अभी चला जा देखता हूँ कि कैसे तू रुपए नहीं देता है? इत्यादि अनेक वचन कहे। वाह २ उस समय का दृश्य कैसा मनोहर था? मुँह पर मुँहपत्ति, हाथमें गोछा और जीभ में कठोर धानी—सरस्वती देख सब रास्ते के लोग हसने लगे। परस्पर बोले कि देखा! सेठ के सामायिक है? मुँह की मुँहपत्ति की यही शरम है? लड़ना ही था तो थोड़ी देर पश्चात ही राड लेता? क्यों धर्म को लजाया? यों हँसी करते २ चलते बने। इस बात का सारांश सिर्फ इतना ही है कि कर्म की विशालता विचित्र है कि धर्म स्थानक में भी मन को निवृत्ति प्राप्त नहीं हो सकी? मानो पैसा मिला कि सब कुछ मिला! घर में स्त्री यही गुरु? कदाचित् गुरु की आज्ञा का लोप तो होजाय, परन्तु गृहिणी की आज्ञा का भंग होना मुश्किल हो जाय? कितनी अधिक मोह दशा इस जीव की है, कि मिथ्या को सच मान बैठता है! कहा है कि —

कवित्त-ऐसोही अज्ञान कोई, आयके प्रगट भयो।
दिव्य दृष्टि दूर गई, देखे चामदृष्टि को॥
जैसे एक आरसी सदाय हाथ मांहीं रहे।
सन्मुख न देखे फेरफेर देखे प्रष्ठिको॥
जैसे एक व्योम पुनि बादल से छांई रह्यो।
व्योम नहिं देखत, देखत बाह्य दृष्टि को॥
तैसे एक ब्रह्म ही विराजमान सुंदर है।
ब्रह्म को न देखे ओर, देखे सब सृष्टि को॥१॥

अर्थात्—इतनी अज्ञान दशा प्राप्त होजाती है कि जीवन का भान ही भूल जाता है। तथा भवसागर में प्राणी को भटकना और अकर्त्तव्य के गहन खड्डे में उतार देता है।

इसलिये हे भव्य प्राणी! जरा चर्म चक्षु बन्द कर, हृदय चक्षु खोल कर देख! कि तूने इस उत्तम मनुष्य जन्म को पाकर क्या किया! केवल क्षणिक पदार्थों में ही मुग्ध हो तू अन्धा बन रहा है! कभी भी तूने गरीबों पर दया दृष्टि ला सुपात्र दान नहीं दिया तथा सद्गुरु की सेवा सुश्रुषा कर उनके आंतरिक हृदय से निकला हुआ आशीर्वाद रूपी मीठा मेवा—प्रसाद भी नहीं पाया, दीन दुःखी अनाथ जनों पर परोपकार कर दुआ भी न ली, कोई तप भी न किया, लेकिन तूने तो विषय सुख में मदांध हो परदारा गमन, चोरी, जुआ खेलना, झूठ आदि कुकार्य करने में तनिक भी सकोच न रखा, कभी सदाचार से चल शियल भी नहीं पाला, केवल गरीबोंके हृदय जला अनाथ प्राणियों का मर्दन कर अपना पेट पोषा, गुलाब, केवडा, मचकुन्द, जाई, जुई, केसर, कस्तूरी, चन्दन, इत्र आदि सुगन्ध पदार्थों से शरीर को मघमघायमान रखना ही योग्य समझा! चित्तहर मनमोहक सुंदर नारियों को आनन्द देने, उनकी हर एक अभिलाषा-उत्कृष्ट श्रम से भी पूर्ण करते एवम् उन्हें खुश रखने में ही अपना जीवन सार्थक माना। स्त्री, बच्चे तथा अपनी देह को अच्छे २ भोजन, फल, मेवा, मिठाई और पकवान आदि देने में ही परोपकार माना। सेंट, इत्र छिड़के हुए इस्त्रीदार सुंदर वस्त्र पहिन, हाथ में फैन्सी नाजुक छडी, रूमाल तथा छाता ले, सुगधी तेल डाल सुंदर चमकीले काले केश वाले मस्तक पर टेढी चीनी टोपी तथा भभकेदार रंग बिरंगी पगडी बांध चटक मटक से—यथेष्ट मौज शोक से हिरने फिरने में ही स्वर्ग सुख माना! नाटक चेटक इत्यादि रंग राग और विलास में ही हजारों रुपये खर्च कर तूने अत्यंत उदारता दिखाई! परन्तु याद रखना कि यह सब मौज शौक तुझे त्यागकर मरना है।

मौज करो पण मरवुं छे ते विषे (राग आशा गोडी)

मौज करो पण मरवुं अंते वधु मौज करो पण मरवुं.
मेडी मंदिर ने माल खजाना प्राण गए परी हरवुं.

कोटी द्रव्य पण काम न आवे केना सारूं ए करवुं.
धाई धुती ने धंध मचाव्यो स्थिर पणे नथी ठरवुं.
मोहने ममता मनमां न धरवी फरी संसारमां न फरवुं.
सोल शृंगार शरीर ने सोहे तो पण अंते छे मरवुं.
जन्म गयो ने जान जावानो माटे सफल कांई करवुं.
संत समागम करी लेरे बंधु सिद्ध गती ने वरवुं.
कर जोड़ कवि जन विनवे छे आल पंपालथी डरवुं.

❋ भजन राग-घोलनो ❋

प्रभु भक्ति तुं करने प्राणी! सफल थाय मन वाणीजी,
आ संसार स्वप्नानी बाजी तेने स्थिर ते जाणीजी.
काया माया जाण कारमी जेम झाकलनुं पाणीजी,
क्षण भंगुर सौ खेल खल्कनो तुं झट लेने जाणीजी.
जे जायुं ते जरूर जवानुं रंक रायने राणीजी,
अविनाशी प्रभु एक अखंडति गुणातीत गुण खाणीजी.
सोहं शब्द विचार करी ले, निरालंब निर वाणीजी,
कहे छोटम चिंतामणि परखे जो होय बुद्धि शाणीजी.

इस तरह जिसने समस्त जीवन विताया है। उसकी सब दिन रात्रि यों ही व्यर्थ जा रही है? तो भी प्रति दिन नये २ आशा के पास बन्धन से नये २ सुखों को नित्य प्राप्त करने के लिये यह जीव अनेक फंफे मारता है! परन्तु उससे

तनिक भी नहीं लजाता, नहीं सकुचाता। कहा है कि—

> रात्रीसैवपुन स एव दिवसो मत्वाऽबुध उत्तवो।
> धावत्युद्यमिनस्तथैव निभृत प्रारभ्य तत् तत्क्रिया॥
> व्यापारेपुनरुक्त भुक्त विषयेरेव विधेनाऽमुना।
> ससारेण कदर्थिता कथमहो मोहान्नलज्जामहे॥ १॥

अर्थात्—ऊंघते २ और मोह माया में लीन हुए अज्ञानी प्रत्येक रात और दिन बिना उद्याग के व्यर्थ गुमाकर भिन्न २ क्रियाएं करते हैं और हमेशा अनेक व्यापार और उद्यम कर मोह से संसार में फाकें मारते हैं। अरे रे! ऐसे अनित्य संसार से दुःखी पामर प्राणी अब भी क्यों नहीं शरमाते? समस्त जीवन में जिन्हें चेतने का अवसर प्राप्त ही नहीं हुआ और ऐसे क्षण भंगुर सुख में ही जो ग्रसित हो रहे उन पामर प्राणियों ने कैसे २ दुष्कृत्य कर समस्त जीवन व्यर्थ बर्बाद किया है? उसपर वे तनिक भी विचार नहीं लाते हैं। कहा है कि—

❀ गजल कव्वाली ❀

प्रभु की प्रीति ना पाली, कुबुद्धि अन्यने आली;
काया कर्मे करी काली, गुमावी जिंदगी खाली?
गरबमां जिंदगी गाली, अघट घाटे मति घाली;
प्रपंचे चोंपथी चाली, गुमावी जिंदगी खाली?
बन्यो आ जीव-जंजाली, रह्यो जडभावने झाली;
धरमनी टेकने टाली, गुमावी जिंदगी खाली?
ठगायो ठाठमां ठाली, न शोधी पुण्यनी डाली;
स्वदोषो अन्यने ढाली, गुमावी जिंदगी खाली?
तजी शुभ हेमनी थाली, भरी धनधाममां फाली;

गरीबोंना हृदय वाली, गुमावी जिंदगी खाली ?
करमनी रीत ना भाली, ममतमां हुं रह्यो मा'ली;
मती मुज थई न माया'ली, गुमावी जिंदगी खाली ?
न टाली टेव ईर्षाली, न जोयुं हित निहाली,
अविद्याने करी वा'ली, गुमावी जिंदगी खाली !
रमा रामा तणी लाली, हृदयमां रंगनी ताली,
विनयमुनि सुपथ टाली, गुमावी जिंदगी खाली ?

इसलिए हे विवेकी सुज्जनो ! सोचो सोचो ! जिंदगीको सुधारो ! जिंदगी का अन्तिम भाग भी सुधर जायगा तो भी अत्यन्त लाभ होगा । अन्त में भी जो मोह ममत्व त्याग प्रभुभक्ति नहीं करते हैं उनकी जिंदगी फाल्गुनमास की वृष्टि की तरह व्यर्थ ही है, वे संसार सागर में डूबते ही चले जाते हैं, उनके दुःख हटने और भवसागर से तिरने का समय भाग्य से ही आता है ? इस पर एक जहाज की मुसाफिरी करने वाले का दृष्टान्त देते हैं ।

एक जहाज चलानेवाले और मौजी पारसी सेठकी कथा.

कोई एक सेठ जहाज में बैठकर मुसाफिरी करता हुआ परदेश जाता था। आप स्वयं युवान, फाकडा, छैल छबीला होने से कितनी ही वर्तमान समय की फैन्सी चीजें पास रखता था । आप वहां एक सुन्दर कुर्सी पर बैठा था, जिसके आसपास पांच और आराम कुर्सी पडी थीं । आप के सामने एक सुन्दर नक्शीदार नाजुक टेबिल रखा था, जिस पर सुगन्धि पुष्प वाला वृक्ष का कुंडा रखा था । एक तर्फ सांज वर्तमान, बम्बई समाचार, प्रजामित्र, गुजराती इत्यादि कितने ही समाचार पत्र पडे थे, दूसरी ओर सुन्दर फैन्सी रोल्ड गोल्ड वाच (घडी) रखी थी । उस समय सुवर्ण के फैन्सी फ्रेम का पेबल का चश्मा चक्षु पर चढ़ा कर सेठ आराम कुर्सी पर लम्बी तान कर अखबार बांच रहे थे, पढने में लीन थे । वस्त्रों पर सेंट अत्तरादि सुगन्धि तेल छिड़कने से आसपास का

भाग भी महक रहा था, शरीर भी मघमघायमान था। उस समय उस जहाज का एक खलासी घडी में कितने बजे हैं यह पूछने के लिये सेठ के पास आया।

उसने नम्रता पूर्वक धीरे स्वर से पूछा, सेठजी ! घडी में कितने बजे हैं? सेठ जी तो अखबार पढने में लीन थे, इसलिये कुछ उत्तर न पाया, तब दूसरी वक्त पूछा तब भी उत्तर नहीं मिला। जब खलासी ने नम्रतापूर्वक तीसरी वक्त पूछा, तब सेठ जी का पारा चढ गया और वे क्रोधपूर्वक बोले कि चुप २ गडबड मत कर ? साले इतना जड क्यों रहा ? मूढ ! मूर्ख ! देख ले। तू स्वयं ही, तुझे मालूम हो जायगा कि घडी में कितने बजे हैं ? तब बिचारा खलासी नम्रतापूर्वक बोला, सेठजी मुझे तो देखनी नहीं आती, इसीलिये तो मैंने आपसे पूछा है ? तब सेठजी सखेदाश्चर्य हो गर्व से बोले कि बस घडी देखनी भी नहीं आती, तब तो तुझसा मूर्ख कौन है ? इतनी जिंदगी में घडी देखनी भी नहीं आई ! इसलिए जा तेरी पाव जिंदगी व्यर्थ पानी में चली गई !! ठीक जो तू कुछ पढा लिखा भी है ? खलासी बोला नहीं सेठ साहब! हमारे सरीखे गरीब मनुष्य कैसे पढ सक्ते हैं ! मुझ से मेरा पेट ही नहीं पल सकता तो मैं कैसे पढूं ? तब सेठ जी क्रोध से बोले, बस ! कुछ भी नहीं पढा, अरे कमजात, मूर्ख ! तुझसा मूर्ख शेखर कौन होगा ! अरे निर्भागी पशु ! तू 'विद्या गुरुणां गुरुः' ऐसी विद्यादेवीसे भी उदासीन ही रहा ? इस लिये सचमुच **विद्या विहीनः पशुः** इस न्याय से तू पशु ही है, बसन्तऋतु की कदर बिचारा कौन जान सकता है ? रत्न की कीमत भिखमगा घर २ टुकडे माँग खानेवाला रक क्या जान सक्ता है ? विद्या रत्न यह तो सचमुच अमूल्य रत्न है। सुन उसके गुण। कहा है कि —

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुक्ते।
भार्येव चाभि रमयत्य पनीय खेदम् ॥
कीर्तिं च दिक्षु निर्मला वितनोति लक्ष्मीं।
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥ १ ॥

अर्थात्—विद्या माता की तरह रक्षा करती है, पिता की तरह हित में जोडती है, भार्या की तरह खेद मिटाकर आनन्द देती है और निर्मल कीर्ति को दिगन्तर में प्रकाशित करती है, लक्ष्मी को बढाती है, इसलिए कल्पलता सरीखी

यह विद्या क्या ? सिद्धि नहीं प्राप्त करा सकती है ! अर्थात् विद्या से समस्त सुख प्राप्त हो जाते हैं।

ऐसी असमर्थ विद्या तुझे प्राप्त नहीं हुई, इसलिए तेरी आधी जिंदगी विन कम से व्यर्थ गई। पाव जिंदगी घड़ी देखना न आने से और पाव जिंदगी कुछ भी न पढने से, यों आधी जिंदगी तेरी व्यर्थ गई समझ ! क्या तेरा ब्याह हुआ है ? खलासी बोला मेरे बाप ब्याहे थे, मैं तो अभीतक अनब्याहा हूं साहब! पूरा खाना भी खाने को नहीं मिलता तो ब्याह कैसे होसकता है ? विना रुपयोंके कैसे ब्याह हो सकता है ? यह सुनकर सेठ जी गर्व से फूले हुए बोले'—अरे मूढ अधमाधम ! तुझसा हीन भागी कौन होगा ? इतना बडा पशु हुआ और अभी तक नहीं ब्याहा ? अरे छि छि ?? तुम नीच लोग हो, तुम्हें क्या मालूम है कि, **'भार्या हीनं गृहं शून्यम्'** विना स्त्रीके घर शून्य है। दुनिया में जिस ने स्त्री सुख नहीं लिया वह सचमुच पशु से भी खराब हैं। तू भी उतना ही खराब है। सुन ? जगत् स्त्री-रमणी कैसी है ? कहा है कि —

❀ श्लोक ❀

स्मित किंचिद्द् वक्र सरल तरला दृष्टि विभव !
परि स्पन्दो वाचा मभिनव विलासोक्ति सरसः॥
गति नामारम्भ, किसालयित पाद प्रकर, ।
स्पृशत्यास्ता रुण्य किमिहनहि रम्य मृगदृशः ॥ १ ॥

अर्थात्—मन्द २ मुसकानवाली, सरल और तरल चपल दृष्टिवाली, नये शृंगार सज, मिष्ट भाषणों से सुन्दर वाणी की रचना वाली और नवांकुर ज्यों लीला के समूह वाली, गमन आरम्भ में सुन्दर गतिवाली, ये सब कुसुमांगी के सद्गुण किसे प्रिय नहीं लगते हैं ? अर्थात् सब को मनोहर और प्रिय है जो कोकिल कंठ के समान अगणित लीलाए कर निज स्वामी को प्रसन्न करने वाली विनोद रमसे पूर्ण, शृङ्गार सजने में अति निपुण, बिल्वसमान सुन्दर स्तनवाली कोमल और गोर अंग वाली, मुख की सुगंधिवाली नारी जिसे इस जगत में न मिली, उसका मनुष्य जन्म वृथा ही गया, क्योंकि संसार में विषय सुख भोगना ही इस जीवन की सफलता है ! इसलिये हे खलासी ? ऐसी अनेक सुख

भाग भी महक रहा था, शरीर भी मघमघायमान था। उस समय उस जहाज का एक खलासी घडी में कितने बजे हैं यह पूछने के लिये सेठ के पास आया।

उसने नम्रता पूर्वक धीरे स्वर से पूछा, सेठजी ! घडी में कितने बजे हैं? सेठ जी तो अखबार पढने में लीन थे, इसलिये कुछ उत्तर न पाया, तब दूसरी वक्त पूछा तब भी उत्तर नहीं मिला। जब खलासी ने नम्रतापूर्वक तीसरी वक्त पूछा, तब सेठ जी का पारा चढ गया और वे क्रोधपूर्वक बोले कि चुप २ गडबड मत कर? साले इतना जड क्यों रहा? मूढ! मूर्ख! देख ले। तू स्वयं ही, तुझे मालूम हो जायगा कि घडी में कितने बजे हैं? तब विचारा खलासी नम्रतापूर्वक बोला, सेठजी मुझे तो देखनी नहीं आती, इसीलिये तो मैंने आपसे पूछा है? तब सेठजी सखेदाश्चर्य हो गर्व से बोले कि बस घडी देखनी भी नहीं आती, तब तो तुझसा मूर्ख कौन है? इतनी जिंदगी में घडी देखनी भी नहीं आई! इसलिए जा तेरी पाव जिंदगी व्यर्थ पानीमें चली गई!! ठीक जो तू कुछ पढा लिखा भी है? खलासी बोला नहीं सेठ साहब! हमारे सरीखे गरीब मनुष्य कैसे पढ सक्ते हैं! मुझ से मेरा पेट ही नहीं पल सकता तो मैं कैसे पढूं? तब सेठ जी क्रोध से बोले, बस! कुछ भी नहीं पढ़ा, अरे कमजात, मूर्ख! तुझसा मूर्ख शेखर कौन होगा! अरे निर्भागी पशु! तू '**विद्या गुरुणां गुरुः**' ऐसी विद्यादेवीसे भी उदासीन ही रहा? इस लिये सचमुच **विद्या विहीनः पशुः** इस न्याय से तू पशु ही है, बसन्तऋतु की कदर विचारा कौन जान सकता है? रत्न की कीमत भिखमगा घर २ टुकडे माँग खानेवाला रंक क्या जान सक्ता है? विद्या रत्न यह तो सचमुच अमूल्य रत्न है। सुन उसके गुण। कहा है कि —

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते।
भार्येव चाभि रमयत्य पनीय खेदम्॥
कीर्तिं च दिक्षु विमला वितनोति लक्ष्मीं।
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या॥ १॥

अर्थात्—विद्या माता की तरह रक्षा करती है, पिता की तरह हित में जोडती है, भार्या की तरह खेद मिटाकर आनन्द देती हे ओर निर्मल कीर्ति को दिगन्तर में प्रकाशित करती है, लक्ष्मी को बढ़ाती है, इसलिए कल्पलता सरीखी

भोगा भोग फणा इवाति भयदा सद्भिः सदा निंदिता।
श्रायुर्वायु चलत्तरंग निकरा कल्लोल लोलं किल॥
वित्तं वुद्‌बुद सन्निभं भयगृहं पापस्य मूलं तथा।
तस्मात्तापनिवारणेऽमित गुणेधर्मेकुरुध्वं धियम् ॥ ११॥



अर्थ—ससार के काम भोग बडे फनवाले सर्प जैसे अत्यन्त भयकर और उत्तम पुरुषोंसे निन्दनीय है। आयुष्य झझावात के चलने से उठे हुए जलके तरगों के कल्लोल जैसा सचमुच अति चपल है और धन पानी के वुदवुदे जैसा चचल तथा भय और दुखका सदन और सब पापोका मूल है। इसलिए सकष्ट दूर करने वालों को जिसमें अमित गुण हैं उस शुद्ध धर्म पर बुद्धि लगाकर उसका सेवन करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस लोक के भोग भुजग फन की तरह अत्यन्त भयकर हैं, पुरातन पडित जिनकी अत्यन्त निन्दा कर चुके है। आयुष्य कैसा है? वायु के चलने से उठी हुई जल तरग के कल्लोल जैसा अतिशय चपल है तथा धन तो सचमुच पानी के बुदबुदे सरीखा एवम् भय का महान भाडार दुख और भय का दाता, जगतके समस्त पापों का मूल है। मतलब यह है कि ससारमें जितने भी पदार्थ हैं, सब मोह के उत्पन्न करने वाले हैं और अन्त में महा दुख देकर भवसागर की वृद्धि कराने वाले हैं तथा क्षणभगुर देखते २ विद्युत झबकारे की तरह अलोप होने वाले है। इसलिए हे भव्य जनो ? जन्म, जरा, और मृत्यु तथा आधि, व्याधि और उपाधि इत्यादि अनेक सासारिक तापों को नाश करने वाले तथा असख्य उत्तम गुण वाले धर्ममें अपनी तमाम शक्तियां बुद्धि सहित ओट दो अर्थात् शुद्धि धर्म में अपना मन-बुद्धि लगाओ, तो अवश्य तुम सुखी होओगे। सांसारिक लोग कामभोग में सुख मानते हैं, परन्तु उनका परिणाम तो महान दुःखद ही है जिनको उत्तम पुरुषों ने त्याज्य कह निंदा की है कारण मोक्ष द्वार में जाने वालों के लिये ये साकल या भागल के समान हैं। अष्टावक्र गीता में जनक राजा ने मोक्ष प्राप्ति के सम्बन्ध में प्रश्न पूछा है कि —

सागरी नारी भी तू नहीं व्याहा तो ' अपुत्रस्य गतिर्नास्ती '
इस न्याय से तेरी सद्गति भी न होगी। इसलिए जा, तेरी पौरा जिंदगी व्यर्थ पानी में गई। पाव घडी देखना न आनेसे, पाव अनपढ रहने से और पाव व्याह न करने से, यों तेरी पौण जिंदगी बिलकुल व्यर्थ गई? अरे! मूर्ख तू कितना बदमाश है।

सेठ उस खलासी से घमड के साथ बोल रहे हैं और अपने सुख वैभव की बडाई गर्व से हॉक रहे है, इतने ही में आकाश में जल्दी मेघ के पटल छा गये, मेघ की घनघोर गर्जनाएं होने लगीं, बिजली के कडाकेपर कडाके होने लगे, तुफान चढने की वायु से जहाज उथल पुथल होने लगा, पवन के झपाटे से डाड टूट गया, पतवार गिर पडा, दिशाओं में अन्धकार छा गया। ऊपर से मेघवृष्टि भी मूसलाधार होने लगी। जिससे जहाज एक चट्टान के साथ अकस्मात् टकराया। इस दृश्य से खलासी एकदम घबराया और चिल्लाकर एकदम बोल उठा—सेठ साहब! तैरना भी आता है? जल्दी करो, आज जहाज जोखिम में आ गया है, अब बचने का कोई एक भी उपाय नहीं है। सेठ तो यह सुनकर दिग्मूढ हो गये और घबराकर बेभान हो बोरा कि—भाई अब मैं क्या करूँगा? मुझे तो तैरना नहीं आता है, तब वह खलासी बोला आपको तैरना नहीं आता तो बस हो गया। सुनिये सेठ साहब! मेरा तो पौण जिंदगी पानी में गई है ऐसा आपने कहा परन्तु आप की समस्त जिंदगी व्यर्थ—पानी में गई। कारण कि आप को तैरना नहीं आता, हम तो सागर के जीव कहलाते हैं। चाहे जो उपाय करेंगे और तट पर पहुँच जायगे, परन्तु सेठजी आप तो अब इष्टदेव का स्मरण करिये? इतने में तो जहाज टूटा इत्यादि और उनका समस्त कुटुम्ब अगाध जल में डूब गये। सिर्फ खलासी तैर कर तट पर आया, खलासी के सिवाय सब डूब मरे।

इस दृष्टांत का सार यह है कि मनुष्य ससारिक वैभव सुख में अन्ध हो अन्य को धिक्कारते है, परन्तु समस्त जिंदगी में भी ससार सागर तैरने की राह नहीं ढूंढ सकते। अन्त में वे उस सेठ की तरह महा दुःखी होते है। इसलिये हे उत्तम सुज्ञो! इस उत्तम मानव जीवनको व्यर्थ न खो कुछ भी आत्महित कारक कार्य करो यही इस मानव जीवन के प्राप्त करने का परम कर्तव्य और सार है।



कटाक्ष तीक्ष्ण बाणों से बिंध जाते हैं और हमेशा वश रहते हैं, उसकी प्रेरणा से न करने योग्य कार्य भी कर डालते हैं और मन में ऐसा मानते हैं कि यह स्त्री तो मेरी ही है, परन्तु मोह के कारण उन्हें इतना भी ज्ञान नहीं होता कि कोई स्त्री किसी की हुई नहीं और न होगी। वह तो स्वार्थ की ही सगी है। उसके वश में लीन हुए मोहमुग्ध विषयी महान दुःख पाये हैं। धारापति भोज राजा का चाचा मुंजराज स्त्री के वश हो कितना दुःखी हुआ? घर २ भिक्षा मागने का समय भी आया! और दोनों अंत में अकाल मृत्यु पाये। प्रदेशी राजा की सुरीकंता नाम की पटरानी ने विष देकर मार डाला, जिनरक्ष और जिनपाल नाम के दो वैश्य पुत्रों को रयनादेवी ने वश कर महा दुःख दिया इत्यादि अनेक दृष्टांत शास्त्रकारों ने अपन जैसे अज्ञ जनों को सद्बोध देने के लिये अच्छी तरह वर्णन किये हैं। किसी कवि ने एक घड़े को देख उत्प्रेक्षा की है कि कोई स्त्री कुए पर पानी भरती थी घड़े के गले में रस्सी लगी थी, जब घड़ा कुए में डाला गया और ऊँचा नीचा किया गया तब उसमें पानी भरने के साथ २ बुद २ शब्द निकलता था उसे देख कर कवि ने घड़े से कहा कि —

❋ शार्दूल विक्रीडित वृत ❋

रे रे कुंभ! कुवा विषे उतरीने पोकार तुं शुं करे!
जो आयुष्य हशे हवे तुजतणुं तो तुं अहीं उगरे;
जे थाशे नर नारीनाज वशमां, तेनी दशा आ थशे,
फांसो घाली गला विषे तुरत ते, उंडे कुवे उतारशे.

अर्थात् —घड़े की तरह गलेमें फांसा डालकर स्त्रियां विपत्ति रूपी कुए में उतारेगी अर्थात् इस अन्योक्ति पर विवेक सहित विचार करने से बहुत ज्ञान सम्पादन हो सका है। सचमुच विषय ऐसे ही हैं। इसी कारण सर्वज्ञ महाजनों ने धिक्कारे हैं परन्तु समस्त स्त्रियां एकसी नहीं होती। स्त्रियों को रत्न कुक्षधारिणी भी कहा है।

कथं ज्ञानमवाप्नोति कथं मुक्तिर्भविष्यति।
वैराग्यं च कथं प्राप्त मेतद् ब्रूहि मम प्रभो ॥ १ ॥

अर्थात—हे कृपालु प्रभु! अनादि काल से लीन हुई इस आत्मा को ज्ञान कैसे प्राप्त होसक्ता है? तथा वैराग्य और मुक्ति किस रीति से मिल सक्ती है? कृपा कर फरमाइये? जिसके उत्तर में उपकारी कृपालु गुरुजी कहते हैं कि —

मुक्तिं मिच्छसि चेत्तात! विषयान् विषवत्त्यज।
क्षमार्जव दया तोष, सत्यं पीयूषवद् भज ॥ १ ॥

अर्थात—हे मुमुक्षु! जो तू मुक्ति चाहता है तो अवश्य विषयों को विष के समान त्याग दे तथा क्षमा, नम्रता, दया, संतोष और सत्य आदि सद्गुणों का अमृत की तरह सेवन कर। क्योंकि ये विषय मोह के कारण त्यागे नहीं जाते परन्तु अन्त में वे दुर्गति में ले जाते हैं। मोह के कारण जो अत्यंत प्रिय मालूम होते हैं परन्तु परिणाम जिनका अप्रिय अनिष्ट होता है। मोह की महिमा अपार है। कहा है कि —

शिखरिणी-नरो नारी पासे नट सम थई नृत्य करता,
कुरंगाक्षी केरा नयनशरथी घायल थता;
वदे प्यारी प्यारी मधुर मुखथी पामी लघीमा,
थता वृद्धावस्था नहि रस जुओ मोह महिमा!
लूलोनेत्रे काणा अति कृशअने ते खस भर्यो,
पड्या काने कीड़ा विषम अति पीड़ाअनुसर्यो;
तथापि ते श्वान प्रबल मदने जाय रतिमां,
शूनि पुंठे वेगे विषमय जुओ मोह महिमा!;

मतलब यह कि—कामभोग में आसक्त बने हुए विषयी मनुष्य स्त्री के आधीन हो कैसे नट ज्यों नाच रहे हैं! चाहे कैसे भी धीर वीर पुरुष स्त्री के

कटाक्ष तीक्ष्ण बाणों से बिंध जाते हैं और हमेशा वश रहते हैं, उसकी प्रेरणा से न करने योग्य कार्य भी कर डालते हैं और मन में ऐसा मानते हैं कि यह स्त्री तो मेरी ही है, परन्तु मोह के कारण उन्हें इतना भी भान नहीं होता कि कोई स्त्री किसी की हुई नहीं और न होगी। वह तो स्वार्थ की ही सगी है। उसके वश में लीन हुए मोहमुग्ध विषयी महान दुःख पाये हैं। धारापति भोज राजा का चाचा मुंजराज स्त्री के वश हो कितना दुःखी हुआ ? घर २ भिक्षा मागने का समय भी आया ! और दोनों अन्त में अकाल मृत्यु पाये। प्रदेशी राजा की सुरीकंता नाम की पटरानी ने विष देकर मारडाला, जिनरक्ष और जिनपाल नाम के दो वैश्य पुत्रों को रयनादेवी ने वश कर महा दुःख दिया इत्यादि अनेक दृष्टांत शास्त्रकारों ने अपन जैसे अज्ञ जनों को सद्बोध देने के लिये अच्छी तरह वर्णन किये हैं। किसी कवि ने एक घडे को देख उत्प्रेक्षा की है कि कोई स्त्री कुए पर पानी भरती थी घडे के गले में रस्सी लगी थी, जब घडा कुए में डाला गया और ऊंचा नीचा किया गया तब उसमें पानी भरने के साथ २ बुद २ शब्द निकलता था उसे देख कर कवि ने घडे से कहा कि —

❀ शार्दूल विक्रीडित वृत ❀

रे रे कुंभ ! कुवा विषे उतरीने पोकार तुं शुं करे !
जो आयुष्य हशे हवे तुजतणुं तो तुं अहीं उगरे;
जे थाशे नर नारीनाज वशमां, तेनी दशा आ थशे,
फांसो घाली गला विषे तुरत ते, उंडे कुवे उतारशे.

अर्थात् —घड़े की तरह गलेमें फांसा डालकर स्त्रिया विपत्ति रूपी कुए में उतारेगी अर्थात् इस अन्योक्ति पर विवेक सहित विचार करने से बहुत ज्ञान सम्पादन हो सक्ता है। सचमुच विषय ऐसे ही हैं। इसी कारण सर्वज्ञ महाजनों ने वे धिक्कारे हैं परन्तु समस्त स्त्रियें एकसी नहीं होती। स्त्रियों को रत्न कुक्ष धारिणी भी कहा है।

दोहाः-नारी रत्न नी खान छे, पण वश तेने थाय;
तो तेनो ते कर ग्रही, नर्क मध्ये लई जाय.

अर्थात्—जो उसके साथ अत्यन्त परिचय कर वशीभूत बना रहता है तो वह उसका अवश्य कर पकड नर्क रूपी गहन कुए में उतार देती है, नहीं तो पृथ्वी में उत्तम नर रत्न पैदा करने वाली भी वही है तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव तथा बडे २ सन्त महन्त और महात्मा भी इसी रत्नखान से प्रकट हुए हैं। दुनिया में सब स्त्रियाँ तथा सब पुरुष एक से नहीं होते। कहा है कि—

दोहाः-सरवे सरखा नर नहि, सर्व सरखी नहि नार;
कोई भला कोई भुंडा, एम चाल्योजाय संसार.
एक २ नारी एहवी, पहोंची अविचल ठाम;
निसतारो होय जीवनो, लेतां नित्य प्रत्ये नाम.
मोटी मोटी महा सती, पाल्यो शियल आचार;
कष्ट पडये कायम रही, पामी मोक्ष दुवार.
रयण कुखनी धारिणी, कही जिनेश्वर नाम;
आगम अनुसारे करी, केटलीनां कहुं नाम.

सारांश—कितनी ही उत्तम सतियां हुई हैं, तो भी विषय में लीन और स्वार्थ की सगी स्त्रियाँ तो तनिक स्वार्थ में कमी हुई कि अपने प्रिय पति के प्राण लेने में भी नहीं चूकती। इसलिये विषय विकार को सदा धिक्कार है। आयुष्य जल के तरंग समान अति चंचल है और लक्ष्मी भी अनित्य है। किसी के घर भी वह अचल निवास नहीं करती और अनेक पाप संचय कराती है। कहा है कि—लक्ष्मी किसी की हुई नहीं और न कभी होगी।

अर्थमनर्थं भावयनित्यं नास्ति ततः सुखः लेश न सत्यम्.

अर्थात्—अर्थ-धन अनर्थों या पापोंका बीज है। नष्ट हुए बाद चक्षुओं से अश्रु धारा प्रवाहित कराता है। इसलिए यह विश्वास के अयोग्य है। कुटुम्ब परिवारादि सब स्वार्थ के सगे हैं, स्वार्थ में कुछ कमी हुई कि सब छिन्न भिन्न हो जाते हैं। सिर्फ धर्म यही श्रेष्ठ और सदा साथी है। धर्म के प्रभाव से उभय-लोक में अपूर्व सुख और प्रचुर लाभ मिलता है। इस पर **धनदत्त सेठ** जी की कथा कहते हैं।

स्त्रीका साहस, धनदत्त सेठजी की गंभीरता और रहस्य.

पोतनपुर में **धनदत्त** नामक कोई एक लक्षपति सेठ रहता था। उसके **सुदत्ता** नाम की स्त्री थी। वह सुशीला और पति भक्ति परायणा थी। पश्चात् कभी सेठजी को व्यापारमें बडा भारी नुकसान लगनेसे दुकानें बन्द हो व्यापार कम होगया जिससे सेठजी की धीरे २ सब लक्ष्मी नष्ट होगई। घर द्वार तथा स्त्रीके समस्त अलंकारादि भी बेचना पडे। सेठजी बिलकुल दीन हालतमें होगया जिससे पश्चात्ताप करने लगा कि -ओहो! यह लक्ष्मी किसकी हुई है? क्षण में आती है और क्षण में विलीन होजाती है। पलभर में खुश करती है और पलभर में रुलाती है, इत्यादि एक समय सेठ को मुरझाया हुआ देखकर उसकी स्त्री ने कहा कि -अब हमें यहां रहना योग्य नहीं है, क्योंकि जहा अतिशय वैभवसौख्य भोगे हैं वहा दीनदशा में दीन दिखना यह कम निर्लज्जता नहीं! इसलिये सब से अच्छी बात तो यह है कि, अपन दोनो मेरे पियर चले चलें वहाँ जरूर-सुखी रहेंगे।

> घर वन व्याघ्र गजेंद्र सेवितं। जलेन हीनं बहु कण्टकावृतम्।
> तृणानि शय्या परिधान वल्कलं। न बन्धु मध्ये धनहीन जीवनम्॥

अर्थात्—जल रहित कंटकों से पूर्ण और व्याघ्र, सिंह तथा गजेंद्रों से भरें हुए जंगल में रहना, एवम् घास का बिछोना और झाडों की वलकलके वस्त्र पहनना तो अच्छे हैं, परन्तु धनहीन होकर अपने ही बांधवों में रहना अति बदतर है। ऐसा सोच दम्पति थोडी बहुत जो२ वस्तुएं थी एक टोकरी में रख-कर प्रात काल जल्दी उठ चलते बने। जिनका घर का समान बडे महल में भी

न समाता था उनका सामान अब एक छोटे से टोकरे में ही समा गया। कर्म की गति न्यारी है। उदयास्त सब का हुआ ही करता है, परन्तु धीर पुरुष कदापि संकट में हिम्मत न हारते एवम् घबराकर पागल से भी नहीं बनते और सब सहन करते हैं।

दोहा:-चडती पडती सर्वनी, ये दुनियानी रीत;
चन्द्रकला सुदमां वधे, वदमां घटे खचीत.
एक दिवसना सूर्यनी, उभय गति देखाय;
उदय थाय परभातमां, अस्त सांजरे थाय.
सुखने छेडे दुःख पडे, दुःख छेडे सुख थाय,
जे स्थले छांयो देखिये, फरी त्यां ताप तपाय.
ज्यां भरती त्यां ओट छे, जल त्यां स्थल निधार,
कालतणी गति कारमी, हर्षशोक नव धार.

ऐसे२ विचार करते सेठजी आगे२ चलते थे और सेठानीजी भी धीरे२ पीछे चली आरही थी, चलते२ जब दो प्रहर का समय आया तब सेठानीजी ने कहा "हे प्राणनाथ! मुझे बहुत अधिक प्यास लगी है, कहीं पानीकी तलाश करें तो ठीक हो?" तब सेठजी ने कहा हे प्यारी? मुझसे चलते भी नहीं बनता, तो भी आगे चलता हूं, कहीं तलाश करके तुझे शांत करूंगा। स्त्री ने सोचा अरेरे! अबतो यह तरुवर ठूंठ रह गया, मेरे प्रीतमकी देह अब नहीं शोभती, जिस तरह राहु से ग्रसित चन्द्र और सूर्य अपनी प्रतिभा नहीं दिखा सकते हैं, उसी तरह इन सेठजी का वदन दारिद्र रूपी राहु से श्याम और निस्तेज हो गया है। अब ये मुझे क्या सुख देंगे? जैसे जल रहित तालाब व्यर्थ है, वैसे ही ये निर्धन सेठ अब व्यर्थ से हैं। यों बुरे विचार विचारती हुई चलने लगी। रास्ते में एक कुआ आया जिससे सेठजी ने कहा कि, अब तुझे पानी पिलाता हूं।- रस्सी तो उनके पास थी ही नहीं। बिचारे सेठजी ने अपने सिर की पगडी से लोटा बांधकर कुए में डाला, फिर भी पानी दूर रहा, इसलिये बहुत-अधिक झुककर-

पानी के लिये हाथ फका। अब यह स्त्री ने कुए की साथिनी ने अपने दिल में सोचे हुए ध्यान की काम करने का ठीक अवसर समझ फिर सोचा कि —अब इस दारिद्री के पास रहने से कुछ लाभ नहीं है। यह मेरी उम्मेदें पूर्ण न कर सकेगा और पियर में भी सब मेरे पिताजी के सिर पडेगा इसलिये इसे इस कुए में डाल दूं और अकेली ही अपने पियर चली चलूं तो ठीक होगा। ऐसा सोच जिसके लिये प्राण की परवाह भी न करते लम्बे २ हाथ फैंक जो कुए से पगडी बांधकर भी पानी निकालने का साहस कर रहे थे उस सेठजी को प्यारी स्त्री ने पीछे से अकस्मात् धक्का दे कुए में डाल दिया और आप निडर पियर चली गई, उस के बाप ने अकेली आई हुई समझ पूछा कि, बहिन अकेली क्यों आई ? कहाँ से आई ? ऐसी स्थिति कैसे हुई ? तेरे पति सेठजी कहाँ है ? इन सब प्रश्नों के उत्तर में उसने कहा हमारे व्यापार में बडा भारी नुकसान लगने से हम दारिद्री हो गए, जिससे सेठ जी परदेश में व्योपारार्थ गए है और मैं उनकी आज्ञा ले यहा आई हूं। ऐसा कह वह सुख से अपने माता पिता जी के यहा रहने लगी।

प्रिय पाठक ! अब उन सेठजी की तलाश में चलिये ? वे बिचारे अचानक कुए में गिर पडे। परन्तु उस कुए में पानी अधिक न होने से डूबे नहीं, परन्तु चोट अधिक लगी ? फिर वे उसी में बैठे हुए सोचने लगे कि अहो ! स्त्री तो केवल स्वार्थ की ही सगी है। उसे अब तक मेने अपनी समझी, उसके मोह में फंस अनेक कुकार्य किये परन्तु अन्त में वह मेरी नही ही हुई। बडे २ बलवानों को जलाबला कर भस्म करने वाली इन अबलाओं को कवियों ने क्यों अबला कही होगी ? स्त्री चरित्र अपार है, पिङ्गला के चरित्र से आश्चर्यान्वित हो राजर्षि प्रवर श्री भर्तृहरि ने कहा है कि —

❋ श्लोक ❋

आवर्त संशयानाम विनय भवन पत्तन साहसाना।
दोषाणा सन्निधान कपट शत मय क्षेत्रम प्रत्ययानाम्॥
स्वर्गद्वारस्य विघ्नो नरकपुर मुख सर्व माया करड।
स्त्रीयन्त्र केन सृष्ट विषममृतमय प्राणिनामेकपाश॥

अर्थात् —संशय की खानि, अविनय का भवन, साहस का बडा क्षेत्र, दोषों का भंडार, सेकडा कपट सहित अविश्वास का घर, स्वर्ग द्वार के लिए एक बडा भारी विघ्न, नरकपुरी का मुख और माया के करंडिये समान, अन्दर

सेठानीजी ने सोचा कि मेरे पति परदेशमें जाकर खूब द्रव्योपार्जन कर आये हैं ? एकदम खुशी होतीर घरगई और अपने माता पिताजी को बधाई दी और कहा कि आपके जमाईराज लक्ष्मी कमाकर परदेश से यहा आये हैं और इस गावके बाहर पडाव डाल कर वहां रसोई करा रहे हैं, यह ठीक नहीं कहलाता, इसलिए आप जल्दी जावें और गाजते बाजते बडे समारोह के साथ उन्हें गाव में लावें ? यह सुन कर सब सामने गए और सेठ जी को जाकर घर चलने के लिए कहा। सब आपस में मिले और कुशल समाचार पूछने के पश्चात् लगभग हर्ष विनोद की बातें होती रहीं पश्चात् सेठ जी को घर चलने के लिए आग्रह के साथ आमंत्रित किया। सेठ जी का तो सासरे जाने का बिलकुल विचार न था, कारण कि स्त्री का हृदयद्रावक कृत्य मन में से अभी मिट नहीं गया था। परन्तु अत्यत ही सब का आग्रह होने से समयज्ञ प्रेमी विवेकी चतुर सेठ जी ने वहा चलना मजूर फरमाया। फिर सेठ जी को वाहन पर बिठाये और गाजे बाजे के साथ सब मडल घर की ओर चला। उस समय सेठानी जी भी सेठ जी की शोभा देखने के लिए सुन्दर वस्त्रालंकार सज घर के उपर छत पर खडी थी, वहा जब आकर गाडी खडी रही तब सेठानी जी ने सेठ जी को देखा, सेठ जी की भी स्वभाविक ऊपर दृष्टि गई, तब सेठानी जी ने सेठ जी की ओर देख कर एक गुप्त समस्या की, उस समस्या म एक फूल सेठ जी पर डाला। जिससे यह सुनाया कि, मेरी की हुई भूल कुए की बात किसी को सुनाई है या तुम एक ही जानते हो ? नहीं तो मुझे मरना पडेगा, तब सेठ जी ने फूल लेकर आश्चर्य से ऊपर की ओर देखा और समस्या का भाव समझ गया। वह भी महा चतुर, शिरोमणि और विचक्षण व्यौपारी था, जिससे उसने उस समस्या के उत्तर में एक अगुली उठा कर दिखाई कि कुए की बात मे अकेला ही जानता हूं तुम बेफिकर रहो ? उसे यह समझ गई और निश्चित होगई। फिर सेठ जी वहा पाच सात दिन आनन्द से रहे, श्वसुरने अत्यत मानसन्मान किया, अहा! लक्ष्मी तेरी महिमा अपरम्पार है। सब सगाई लक्ष्मी की है। पास में धन हो तो सब अपने होजाते हैं। जब पास लक्ष्मी होगई तो उसी सेठानी जी ने भी कैसा मान दिया। कहा है कि —

त्यजति मित्राणि धनैर्विहीन । पुत्राश्च दाराश्च सुहृद्गणाश्च ।
तमर्थ वत पुनराश्रयति । अर्थोहि लोके पुरुषस्य बधु ॥
वयोवृद्धा तपोवृद्धा । ज्ञानवृद्धाश्चये जना ।
ते वृद्धा धन वृद्धाना । द्वारि तिष्ठति सर्वदा ।

अर्थात्—धन रहित मनुष्य को उसकी स्त्री, पुत्र, मित्र, भ्रातृ वगैरह त्याग देते हैं और अगर वही पुरुष फिर लक्ष्मी का पात्र होजाता है तो सब सम्बन्धी उसका सहारा लेने लगते हैं, उसकी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं। इसलिये अर्थ पैसा यही पुरुष का सच्चा बान्धव है। कहावत है कि "अर्थ बिनाको गांगलो, अर्थे गांगा सेठ" वयोवृद्ध, तपोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध मनुष्य भी आज धनवृद्ध मनुष्यके द्वार पर आ खड़े होते हैं—सेवा करते हैं और उससे द्रव्य पाने की आशा रखते हैं।

पश्चात् सेठजी ने सबकी आज्ञा ले कुंए पर चीते हुए सब लोग प्रयत्न भारी को ही दे सेठानी जी को साथ लिया, सेठानी जी का भी साथ जाने का पूरा आग्रह था, जिससे वे साथ गईं। रास्ते में स्त्री ने अपनी भूल का पूर्ण पश्चात्ताप किया, अपने अपराध की दीनता से सविनय क्षमा मांगी। परन्तु सेठजी ने मीठे स्वर से मर्म वचन में कह दिया कि, मेरी ओर से तो माफी ही है, परन्तु प्रभु से माफी मांगना। कर्म का बदला अवश्य देना होगा। यही कर्म देव का अटल नियम है। कदाचित् यहाँ पर भाग्योदय से अपने कुटिल अपराधी कर्म चाहे छिप जाय। परन्तु परभव में कर्मदेव से छिपना असम्भव है। अविचार से किये हुए साहसिक कर्म का विपाक प्राणान्त तक नहीं भूला जासकता। उसका हृदय से अन्त भी नहीं होता, इसलिये विवेकी पुरुषों को खूब सोच समझ कर ही काम करना चाहिये। बिना सोचे समझे काम करने से प्राणी को पूर्ण पश्चाताप ही होता है। कहा है कि—

गुण वद गुण वद्वा कुर्वता कार्य मादौ।
परिणति अवधार्या यत्नत पंडिते न॥
अति रमस कृताना कर्मणा मा विपत्ते।
भवति हृदय दाही शल्य तुल्यो विपाकः॥ १॥

अर्थात्—भला या बुरा साहस करते समय विवेकी पुरुष प्रथम उसका यत्न पूर्वक परिणाम सोचते हैं, कारण कि अत्यन्त शीघ्र साहसिक कार्य करने वाले को विपत्ति बीत जाने पर भी जन्म पर्यंत उसका शल्य तुल्य दाह करने वाला कर्म विपाक हृदय से नहीं भूला जासका। इसलिये जो कुछ काम करना हो खूब सोच समझ कर करना चाहिये। पश्चात् सेठानी जी ये सब

वचन सुनकर अत्यत लज्जित हुई और नीचे दृष्टि रख दीनता से अपनी भू
कबूलकर पश्चाताप कर खेदपूर्वक क्षमा मांगने लगी। घर गए पश्चात् द पत्तीव
परस्पर स्नेह सम्बन्ध बढ़ा, कुछ काल पश्चात् सेठजी को एक लडका हुआ
जब वह बडा हुआ उसका अच्छे घर व्याह किया। घरमें बहू आई समभ
सेठानी जी अपने को भाग्यशाली समझने लगी और सुख तथा आनद में सबके
दिन व्यतीत होने लगे। जब पुण्योदय होता है तब सब अच्छा ही होता है।

पश्चात् एक समय जब दो प्रहर को सेठजी जीमने बैठेथे उसके शरीर पर
सूर्यका एक चलका गिरा जिससे सेठानीजी अपने ओढ़नेके वस्त्रसे छाया करती
खडी रही। इस दृश्यसे सेठजी तनिक हस पडे और हँसते हुए मनमें बोले कि
वाह २? स्त्री का क्या प्रेम है? हाय? पाव पकडकर कुएमें डालने वाली भी यही
स्त्री थी। और अभी छाया करनेवाली भी यही स्त्री है? क्या मैं धूपमें गला जाता
था? सेठजी की हँसीसे सेठानीजी को भी मन्द २ मुसकान हो आया और कुए
की बात दोनोंको इस समय याद हो आई जिससे नीचे दृष्टिकर सेठानीजी शरमा
गई। यह सब दृश्य भोजनशाला में भोजन करती हुई वधूने देखा, उसके मन में
विचार हुआ कि मेरे सास श्वसुर आज क्यों हँसे? कुछ भी कारण तो अवश्य
होना चाहिये। परन्तु पूछ कैसे सकी थी? मेरे पति घर आवें तब देखा जायगा,
इतने में सेठका पुत्र मोतीचन्द जी घर आया, तब उसकी स्त्री ने उसे एकान्त में
पूछा कि —आज तुम्हें एक काम करना होगा? उसने कहा कि बहुत अच्छा
खुशीसे कहो, करने योग्य होगा तो अवश्य करूँगा। स्त्री बोली? नहीं, करना ही
पडेगा, करने सरीखा ही है बिना किए छुटकारा नहीं होगा। मोतीचन्दने कहा
कहो तो सही, बात क्या है? फिर विचार करूँगा, तब स्त्रीने कहा, कि आज मेरे
सास श्वसुर जीमते २ क्यों हँसे थे, जिसका क्या कारण है? इसलिए तुम अपने
पिताजीसे पूछ इसका पता लगाओ। वह यह बात सुनकर आश्चर्य चकित होगया,
पश्चात् बोला.-अरे स्त्री! इन बडे २ की बातों में पडने से अपनेको क्या सारांश
है? वे चाहे जो बातें करें, चाहे हँसे, उनके बीच में अपने को पडने से क्या
मतलब। जिससे स्त्री क्रोधित हो बोली कि -हमारा काम क्या कभी किया है तो
आज भी करो? हम क्या तुम्हें प्यारी हैं? हम तो पत्थर ज्यों जहां तहां पडी
रहती हैं? आप से फिर प्रार्थना कर कहती हू कि आप इस बात का अवश्य
पता लगावें कि वे आज क्यों हँसे? नहीं तो आप के और हमारे नहीं बनेगा।
फिर पश्चात्ताप करता हुआ मोतीचन्द जी दुकान पर गया, परन्तु मर्यादा त्याग

पिताजी से न पूछ सका। माता पिताजी के बीच का रहस्य मैं कैसे पूछ सका हूं? इसलिये मुझसे नहीं पूछा जा सकता। जब वह रात को घर आया तब स्त्री ने व्योरा पूछा तब कुछ बहाना बनाकर उसने बात उड़ा दी यों करते २ छ माह व्यतीत होगये परन्तु स्त्री ने अपनी टेक न छोडी, जबर वह घर आता था इसकी माग पहिले होती थी, एक समय तो वह अत्यन्त रुठी हो खिझकर मुँह चढ़ाकर घर में बैठी थी कि, मोतीचन्द जी आये। उसने आज का दृश्य भिन्न ही देखा। मन में सोचा कि आज का भेष तो बिलकुल बदल रहा है। आज तो स्त्री अत्यन्त क्रोधित है। इसका कारण भी वह जानता था परन्तु जान बूझकर भी उसे मनाने के लिये उसके पास गया और बोला कि, सब खिझ जायें तो चल सकता है, परन्तु स्त्री के खिझने पर कैसे काम चल सक्ता है? संसारिक मोह विचित्र है। समस्त दुनिया स्त्री के वशीभूत है। पश्चात् मोतीचन्द जी स्त्री को मनाने के लिए बोला —

तोटक छंद.

मुज प्राणप्रिया तुं उदास बनी केम वेठी निरास मृगानयनी;
दिल व्याकुल केम बन्युं तरुणी, मुजवातकरोतुमदुःखतणी.
धूधवो नहिं घूमरगोट तमे करो वात बरावर बोल गमे ;
तुजशब्दप्रियामुखथीभलवा करूं दुःखनिवारणशांतकला.

या नम्रता से मनाते रहने पर भी स्त्री ने अपनी रोषाकुल प्रकृति एवम् हठ नहीं छोडी। अन्त में स्त्री का हठ दुराग्रह समझ उसने रात को घर सोना ही छोड दुकान पर सोना आरम्भ कर दिया। स्त्री के असन्तुष्ट रहने से शरीर में चिंता ज्वर घुसा। शरीर सूखने लगा। सचमुच चिंता ऐसी वस्तु है। चिंता रूप प्रबल अनल से शरीर सदा दुःखी ही रहता है। कहा है —

श्लोक —माता सम नास्ति शरीर पोषणं।
चिंता सम नास्ति शरीर शोषणम्॥
भार्या सम नास्ति शरीर तोषणं।
विद्या सम नास्ति शरीर भूषणम्॥

अर्थातः—माताके समान शरीरकी रक्षा करने वाला दूसरा कोई नहीं है, चिंता के समान शरीर को सुखाने वाला दूसरा कोई नहीं है। सुभार्या के समान देहको संतुष्ट करनेवाला दूसरा कोई नहीं और विद्याके समान शरीरका अलंकार दूसरा कोई नहीं है। उसका चिंता से दिन २ शरीर सूखता गया। चिंता से देह गलता हुआ देखकर एक समय उसके पिताजी ने पूछा, भाई मोतीचंद! तू आजकल दुकान पर क्यों सोता है ? और तेरा शरीर दिन २ क्यों सूखता जाता है ? उसके उत्तर में उसने कहा कि —कुछ नहीं पिता जी! यह तो स्वभाविक ऐसा ही है, अभी दुकान पर सोने का तो यही कारण है कि, जमा खर्च बढ गया है, जिससे रात को लिखता हू, यों कह कर भी उसने कितने ही दिन निकाले। परन्तु जब शरीर अत्यन्त ही सूख गया, जिससे उसके पिता जी ने अत्यत आग्रह से उसे प्रेमपूर्वक पूछा, तब मोतीचंद ने सोचा कि स्त्री रोज हठ लेती है, मेरा पिंड नहीं छोडती, इसलिए वह बात आज पछ लू! अभी अवसर भी ठीक है और पिताजी का आग्रह भी है, ऐसा सोच पिताजी से कहा कि —पिता जी! और तो कुछ नहीं परन्तु जब आप अत्यत आग्रह से पूछते है जिससे कहना पडता है कि मेरी स्त्री ने बहुत समय से यह एक दुराग्रह लिया है कि छ माह पहिले आप मेरी माता के साथ भोजन करते हुए हसे थे, उसका क्या कारण है ? यह सुन कर सेठ जी विस्मित होगए और कहा कि —भाई यह बात तुम्हारे जानने के अयोग्य है, तो भी मै तेरा अत्यत आग्रह देखकर कहता हू, परन्तु तू अपनी स्त्री से मत कहियो, नही तो बडी भारी हानि होगी! फिर कहा कि "पच्चीस वर्ष के पहिले मै अत्यत दीन हालत में आगया था, जिससे हम दोनों जनें परदेश जाते थे, उस समय तेरी माता ने मुझे कुएमें धक्का देकर गिरा दिया था और आज से छ माह पूर्व उस दिन मेरे शरीर पर सूर्य की किरणें गिरती हुई देखकर तेरी माता ने अपने ओढे हुए वस्त्र से मुझ पर छाया की थी कि जिससे मैं गल न जाऊं! जिससे मुझे हसी आगई थी!! दूसरा कुछ नही।" यही बात है परन्तु याद रखना अपनी स्त्री से यह बात भूल कर भी मत कहना।

भाई मोतीचंद! तू जरूर याद रखना कि यह बात किसी के आगे न जाय। "अच्छा मै नही कहूंगा।" यह बात कह कर समय होते ही मोतीचन्द जी घर भोजन करने गया कि, स्त्री ने वही मांग मागी! उत्तर दिया — हा! परन्तु वह बात तुझे न जानना चाहिए, वे तो यों ही हसे थे। स्त्री को और भी सदेह

हुआ, जिससे स्त्री पूर्णाग्रह कर कहने लगी कि, जो मुझे यह बात न कहोगे तो मैं खाऊंगी भी नहीं और खाने भी न दूंगी। जीव देदू और तुम्हारे साथ कभी प्रेम का व्यवहार न करू। जब मोतीचंद ने स्त्री हठ उत्कृष्ट देखा तो कहा कि, अच्छा म कहता हू, तू किसी से कहेगी तो नहीं। स्त्री ने कहा नहीं मैं किसी से न कहूंगी। बात चट कहिये। फिर पिता जी से सुनी हुई सब हकीकत उसने स्त्री से व्यौरेवार कहदी कि "मेरी माता ने मेरे पिता जी को एक समय कुए में डालदिया था और उसदिन सूर्यकी किरणें पिताजी पर गिरती थीं तो वही माता अपने वस्त्र से पिताजी पर छाया करती खडी थी जिससे दोनों परस्पर हस पडे थे"। जो यह तुझे कही है, वह तू किसी से मत कहना।" स्त्री बोली "नहीं मैं किसी से भी न कहूंगी। परन्तु तुम्हारी माता राज फूल कर चलती है और मुझे रोज गाली देती है, परन्तु अब अवसर आने पर जरूर सामना करूंगी" पति ने उसे ऐसा करने से रोका और सौगन्द दिये। तो भी स्त्री के पेट में नीर की तरह वह बात नहीं टिक सकी। प्रात काल होते ही वह अत्यत खराब बुहारी से कूडा निकालने लगी और बाहर दातन करती हुई अपनी सास पर जान बूझ कर कूड़ा धूल उडाने लगी। जिससे सास ने धीरे और मीठे स्वर से कहा कि बहू, बेटा। तनिक देखकर कचरा निकालो, धूल उडती है उसकी खबर नहीं है। तब बहू क्रोधित हो बोली —बाईजी! सब खबर है, चुपचाप ही रहो! 'बंधी मूठी लाख की, ने उघाड़ी वा खाय' आपने अपार औगुण भरे हैं और दूसरों को सदुशिक्षा देने चली हो! मैं आपको पहिचानती हू। जबतक म नहीं बोलती हू तबतक ही? तब सेठानी जी बोली —बहू! इतनी अधिक क्यों चिढ जाती हो! और हमारे में क्या काला धोला देखा? कि ऐसे बक रही हो? देखा हो तो चट कह दो, तब बहू ने झट कहा कि — कहदूगी तो उलटा सुलटा हुए बिना रहेगा नहीं! मुफ्त की बडाई मारती हो? उस दिन रास्ते में आते समय मेरे श्वसुर को कुए में धक्का देकर गिरा दिया था, यही न और कोई, तुम अपनी ही अपनी हॉकती हो, मैं न बोलू वहां तक ही!? यह ताना सेठानी जी को बहुत ही लगा और एकदम अत्यन्त चोट पहुंचने से सोचा कि —बस होगया, गजब होगया? अब जीने में सार नहीं है। सेठजी ने बात की होगी और स्त्री के पेट में नीर की तरह इसके पेट में न टिक सकी। सेठ जी ने बुरा किया! कहा है कि —

षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्णो न भिद्यते ।
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन षट्कर्णं वर्जयेत् सुधी ॥७॥

अर्थात्—चार कान से छ कान तक जो वात गई कि वह फैले विना नहीं रह सकती। अब यह मुझे अधिक फजाहत करेगी। इसलिये अब जीने की अपेक्षा मरना ही श्रेयस्कर है। ऐसा सोचकर ऊपर मजिल जाकर गले में फाँसी डाल अपघात कर मर गई। जब दोपहर को श्वसुर जीमने आये तो सेठानी जी को न देखकर पूछा कि, तुम्हारी सास कहाँ है? तब उसने कहा कि, वे सवेरे से ऊपर गई हैं, कौन जानता है कि वे अब तक क्या कर रही हैं? वे अब तक उतरी ही नहीं! सेठ जी को सन्देह हुआ और वे ऊपर जाकर देखते हैं तो मुर्दा लटकता मिला। यह देख सेठजी एकदम त्रस्त हुये मन में समझ गये कि हाय! गजब हुआ? जरूर यह वात प्रकट हो गई, इस कमजात लडके के पेट में नहीं टिकी, जिसका ही यह परिणाम हुआ है। वस! अब मेरा जीवन भी व्यर्थ है ऐसा सोच स्त्री के गले की फाँसी खोल अपने गले में डाल ली और थोडे समय में आप भी मर गये। बहुत देर होने पर भी जब सेठजी भोजन कर दुकान पर न पधारे तो मोतीचन्द जी घर भोजन करने आया। स्त्री से पूछा कि मेरे माता पिताजी कहां है? तब स्त्री बोली कि—कौन जानता है कि क्या खबर है? कभी से ऊपर चढकर चुपचाप वातें कर रहे हैं, अभी तक नीचे आये भी नहीं। कौन जानता है मुझे घर से निकालेंगे, या अन्य कोई आपदा ढावेंगे या मेरे पर सौत लावेंगे? कुछ खबर नहीं है कि, वे ऊपर क्या गुप्त वातें कर रहे हैं? तुम तनिक द्वार पर खड़े रह कर चुपचाप सुनो तो। वे अपनी ही वातें कर रहे होंगे? यह सुनकर मोतीचन्द जी बोला कि माता पिता जी गुप्त वातें कर रहे हों वहां मुझे जाने की क्या आवश्यकता है? ऐसा कह भोजन कर लिया। बहुत समय होने पर वे अब नीचे नहीं आए और तनिक भी सचार मालूम न हुआ जिस से मोतीचन्द जी घबराया और धीरे २ द्वार पर चढ़ा, अन्त तक ऊपर चढ गया, तब दोनों मुर्दे देखे। यह दृश्य देख मोतीचन्द जी ने अत्याश्चर्य पाया। अरे रे! मुझ पापी ने बहुत ही बुरा किया? जरूर स्त्री के पेट में यह वात न टिकी होगी और उसने अवश्य ताना मारा होगा जिसका ही यह परिणाम हुआ दृष्टिगत होता है। धिक्कार है मुझे, मुझ मूर्खने वह वात दिलमें न रक्खी? अब मुझे भी जीकर क्या करना है! अपने पिता जी के गले की फाँसी अपने गले में लगा कर आप

मर गये। जब बहुत देर होने पर भी मोतीचन्द जी न आया, तो स्त्री ने सोचा कि—ये भी उन्हीं के होगये। लडका भी बाप के साथ मिल गया। जरूर अब तीनों मिलकर मुझे दुःख देंगे, निकाल देंगे या नमालूम क्या करेंगे। परन्तु चलूँ सुनू तो सही कि, वे क्या २ बातें कर रहे हैं? यह धीरे २ ऊपर चढी। ऊपर जाकर देखा तो अपना पति मरा हुआ लटक रहा है। हाय २! ये तो तीनों मर गये? गजब होगया! मैंने अत्यन्त बुरा काम किया, अब मैं जीवित रहकर क्या करूँगी? गाँव में हत्यारी गिनाऊंगी, धिक्कारी प्राप्त होंगी और समस्त गाव में मेरी किरकिरी होगी इसलिये मुझे भी वही करना श्रेष्ठ है जो इन तीनों ने किया है। आप स्वयं भी पति के गले की फाँसी अपने गले में लगाकर मर गई। जब चारों के मरने की खबर लोगों को मिली तो उन्हों ने अत्यन्त आश्चर्य और खेदपूर्वक सब का अग्निसंस्कार किया।

इस बात से मुमुक्षु प्राणियों को अत्यन्त जानने, विचारने और समझने योग्य शिक्षा प्राप्त होती है। प्रथम तो गिरती फिरती दशा, स्त्री का स्वभाव, स्त्री की सुख में सगाई, सेठजी की दुःख के समय धैर्यता पूर्वक सहन शीलता, गुह्य बात, रहस्यमय बात प्रकाशित होने का दुष्परिणाम, स्त्रियों की कम अकल, पात्र के बिना अयोग्य से बात करनेमें आने वाली दुःखदाई आफत और जुल्म इत्यादि सद्शिक्षाएं मनुष्यके हृदयपट पर अंकित होनेयोग्य है। इसलिये महात्मा पुरुषों ने संसारिक कामभोग तथा उसके विषय विकारों की निन्दा की है, धिक्कारा है। हलुकर्मी उसमें न फँस उसे त्याग देते हैं और कर्मों का क्षय कर वे मोक्षपुर पाटण सिधारते हैं और अजरामर बनते हैं।

अहो महा कष्ट मनर्थ मूलं।
तदर्जने च प्रतिपालने च॥
प्राप्तेऽपि दुःखं प्रगतेऽपि दुःखं।
धिग्धिग् धनं कष्ट निकेतनं तत्॥१२॥



अर्थ—अहा ! धन महा कष्टदाई है। अनेक अनर्थों का मूल है। उसे प्राप्त करने एवम् संचय करने में अनेक संकट सहने पडते हैं। धन आता है तब भी महादुःख देता है और विलीन होता है तो भी महान् कष्टदाई होता है। अनेक कष्ट के भंडार ऐसे धन को धिक्कार हो। कारण कि हर एक तरह से वह दुःखदाता है। इसलिये ज्ञानी पुरुषों ने इसे हमेशा कष्टमय ही कहा है ॥१२॥

भावार्थ—अन्तःकरण से खेद पाते हुए कोई पंडितवर्य धन के लिये फरमाते हैं कि—इस दुनिया में जितने संकट धन प्राप्त करने में सहने पडते हैं, उससे भी अधिक संकट उसकी संरक्षा में सहने पडते हैं, फिर भी यह धन सब पापों का मूल है। जब घर में अत्यन्त संकट से यह धन आता है तब मनुष्य सोचता है कि, अब मैं क्या करूँ! किस तरह से इसे संचित रक्खूं ? जो कचित भी असावधान रहूंगा, तो जरूर यह महा संकटों से प्राप्त हुआ मेरा सब धन, चोर आदि चुरा लेजायगे, तो फिर मैं क्या करूँगा ? ऐसे २ डर से डरता रहता है और घर से धन विलीन न हो जाय ! इसलिये हमेशा संरक्षा किया करता है तथा चिन्ता रुपी महासागर में डूबा रहता है। फिर कभी कारण वशात् धन विलीन हो जाय तो प्राप्त होते समय जो चिन्ता और फिकर लगी थी उससे भी अधिक और अधिक चिन्ता सागर में निमग्न हो वह रात दिन कनिष्ठ विचार में ही अपना परम प्रिय जीवन व्यतीत कर देता है। इसलिये प्राचीन महा पण्डित पुरुषों ने धन को धिक्कार दे, तिरस्कृत किया है और कहा है कि—जो महा संकटों का एक मन्दिर है उससे क्या कार्य सिद्ध हो सक्ता है ? इसलिये बुद्धिमान पुरुषों को तो सचमुच धर्म को ही धन समझना चाहिये। कारण यही धन मनुष्य की स्वर्ग अपवर्ग की अभिलाषा पूर्ण कर देता है और यह धन तो अगर दान पुण्य, परोपकार तथा सुकृत के कार्य में लगाया जाय तभी सार्थक है, नहीं तो अवश्य दुर्गति का दातार है और पूर्व पुण्योदय अस्त होते ही थोडे समय में नष्ट होजाता है। इसलिये बुद्धिमानों को हमेशा धन पर से मोह-मूर्च्छा कम कर धर्म रुपी धन ही प्राप्त करना चाहिये। इसी में मानव जीवन की सार्थकता है और यही **सर्वज्ञ श्री महावीर प्रभु** का कथन है।

केवल धन के लोलुप-लुब्ध मनुष्य आत्महित कार्य कुछ नहीं कर सके। सचमुच धन यह दुनिया में ऐसा लोहचुम्बक पदार्थ है कि छोटे बडे प्रत्येक को यह अत्यंत प्रिय है। उसे प्राप्त करने के लिये अनेक विकट सङ्कट सहन करते हैं। महा पाप करके भी लोग पैसा पैदा करते हैं, जिसके लिये बिचारे गरीबों का गला घोट डालते हैं। महा मिहनत कर अत्यंत दुःख उठा धन प्राप्त भी किया, परन्तु उसकी रक्षा के लिये अनेक चिंताएं करनी पडती हैं, कारण कि काया को भय नहीं रहता और माया का है, जहां धन है वहीं इतने दुःख और हानिकारके अवसर उत्पन्न होते हैं। कहा है कि —

श्लोक स्नग्धरावृत.

दायादा स्पृहयंति तस्करगणा मुष्णांति भूमि भुजो।
गृह्णन्तिच्छल माकलय्य हुतभुग् भस्मीकरोति क्षणात्॥
अंभः प्लावयति क्षितौ विनिहितं यक्षा हरंति हठाद्।
दुर्वृत्ता स्तनयानयंति निधनं धिग् बह्वधीनं धनम्॥

अर्थात् —जिसके पास धन है, उसको भागीदार इच्छा करते हैं, समय आने पर उसका प्राण घात कर आप हकदार बनने का प्रयत्न करते हैं। अगर चोरों को मालूम हो तो वह सकेन रूप चुरा लेजाते हैं, सीधी रीति से न दे तो मार कूट कर लेजाते हैं, राजा को मालूम हो तो कुछ दोष लगाकर दण्ड ले लेते हैं या कुछ बहाना बनाकर पैसे निकलवा लेते हैं। कभी अग्निदेव भी जलाकर भस्म कर डालते हैं, अथवा उस धन को जलकी लहर भी बहा लेजाती है। कदाचित् पृथ्वीमें गाडा हो तो यक्ष देव बलात्कार उसका हरण कर लेते हैं। घर के लडके दुर्व्यवहार से अथवा व्यर्थ खर्च कर उस धन को उडा देते हैं या इस धन के लिये पिता के प्राण भी ले लेते हैं। इसलिये ऐसे अनेकों के आधीन रहने वाले, एवम् भय के भण्डार रूप इस धन को धिक्कार हो! कारण कि **श्री भगवंत** ने इस जीव के लिये दुःख का मूल कारण परिग्रह ही कहा है। यह जिसके पास होता है उसे श्रद्धा-विहीन बना देता है, किसी पर फिर वह विश्वास नहीं रखता, धनवतो तथा राजाओं को अपने सगे पुत्र से भी डर लगा रहता है कि, यह कहीं मुझे मारकर धन न ले जाय! यों रात दिन चिन्ता में व्यतीत करता और अपने सम्बन्धियों का भी विश्वास नहीं करता है, उनसे हर समय डरता

रहता है तथा दान मे भी हमेशा वैरभाव रखता है। कहा है कि.—

अर्थ मनर्थं भावय नित्यं। नास्ति ततः सुख लेश सत्यम्।
पुत्रादपि धन भाजा भीति.। सर्वत्रैषा विहीता रीति.॥

अर्थात—हे भव्य जनो! अर्थ यही अनर्थोंका मूल है। ऐसा खास दिल में सोच लो। इसमें सचमुच तनिक भी सुख नहीं है। धनिकों को पुत्र से भी डर रहता है और यही रीति सब तरफ प्रचलित है। इसलिये धन को भय का भार ही समझो।

गुरु मच्छेंद्रनाथ और योगी गोरखनाथ.

मच्छेंद्रनाथ योगी एक समय सुवर्ण की ईंट ले झोली में छिपाकर किसी गाँव की ओर जा रहे थे। उनके पीछे उनका शिष्य गोरखनाथ भी चला आ रहा था। जब रास्ते में कोई भी मनुष्य मिलता तो गुरु मच्छेंद्रनाथ उससे पूछते कि, इस रास्ते में कुछ डर तो नहीं है? जब दो चार मनुष्यों से इसी तरह का प्रश्न किया तो पीछे २ चलनेवाले शिष्य गोरखनाथने सोचा कि गुरुजी महाराज रास्ते में चलते हुए क्यों डर रहे हैं? भय का कुछ कारण अवश्य ही होना चाहिये! नहीं तो ऐसा सब लोगोंको क्यों पूछा! पश्चात् एक वृक्षके नीचे दोप्रहरको दोनों गुरु शिष्य विश्रान्ति लेने बैठे। देह चिन्ता निवारणार्थ गुरु जी झोली शिष्य को दे, सभालने की कह पाखाने गये, पीछे से गोरखनाथ ने झोली देखी तो उसमें एक सुवर्ण ईंट थी, इसेही भय का कारण समझ ईंटको कुए में फेंक दिया और उतनाही बड़ा पत्थरका टुकड़ा वस्त्र में लपेट झोली में रख दिया, पश्चात् गुरुजी ने आकर साफ हो झोली लेकर चलना प्रारम्भ किया। फिर चलते २ रास्ते में किसी पथिक से पूछा कि, इस रास्ते में कुछ भय है? यह सुनकर पीछे चलने वाले गोरखनाथ बोले—"गुरु जी! भय सब पीछे कुए में डाल दिया है, अब भय नहीं है, भय सब पीछे रह गया, आगे नहीं है, अब तो शांतता से चलियेगा"। ये मर्म वचन सुन गुरु जी चमके, शका शील हुए और झोली देखी तो सुवर्ण ईंट की जगह पत्थर दृष्टिगत हुआ। जिससे गुरु जी को बहुत बुरा लगा और शिष्य को उपालम्भ देने लगे कि हे गोरख! तूने ऐसा क्यों किया? महा श्रम से सम्पादन कर तेरे लिये यह एक ईंट मैंने रक्खी थी, तूने उसको क्यों फेंक दिया?-रक्खी रहती तो कभी दुष्काल विषम समयमें काम ही देती! तूने बहुत

मूर्खता की ? यह सुनकर गोरखनाथ बोले गुरुदेव ! सुवर्ण २ क्या करते हो ? सुवर्ण बनाना क्या बड़ी बात है ? देखिए ! अब उन्होंने ऐसा कहकर एक पत्थर की शिला पर पेशाब किया तो सारी शिला सुवर्ण की होगई । गुरु जी से कहा, लीजिए उठाइये । जितना सुवर्ण चाहिये उतना ले लीजिए ! यह चमत्कार देख मच्छेन्द्रनाथ गुरु बहुत प्रसन्न हुये और शिष्य की अत्यन्त स्तुति की । मतलब यह कि जहाँ पैसा है वहाँ अतुलित भय है । अहाहा ! परिग्रह क्या नहीं कर सकता ? श्रेणिक राजा को कैदी बनाकर पिंजरे में बैठाने वाला भी यही परिग्रह था, अपने सगे पुत्र राजा कोणिक ने राज्य के लोभ से पिता जी को कारागृह में रख कैद किया और उनका जेलखाने में ही अन्त हुआ, उसी कोणिक राजा ने अपने बेल और व्यास नामक भाइयों से युद्ध किया, यह भी परिग्रह का ही प्रतापथा । एक हार और एक हाथी के लिये पद्मावती रानी के वचनों पर महा भयंकर युद्ध हुआ और एक करोड़ और अस्सी लाख मनुष्य की इस परिग्रह के कारण ही घात हुई। औरंगजेब बादशाह ने अपने पिता, चाचा, भाई, भतीजे इत्यादि कुटुम्ब को मारकर राज्य प्राप्त किया । अहाहा! परिग्रह क्या नहीं करा सकता है ? । पैसा सगे भाइयों म विरोध कराता, क्लेश पैदा करता, धर्मप्रेम नष्ट करदेता, हृदयको जड़ बना देता, प्रीति रूपी बन्धन को छिन्न कर डालता, क्षमा, दया, शान्ति आदि सद्गुणों को जलाकर नष्ट कर देता, मन को मलीन बनाता परम् शुभ परिणाम से गिरा देता है । इसलिये अनेक दुःख के भण्डार रूप परिग्रह का धिक्कार है। इस द्रव्य का कर्म योग से नाश भी होता है, तब भी दुःख का पारावार नहीं रहता, बिचारा वह बेभान हो जाता है और ऐसा समझता है कि मानों अपना सर्वस्व हार गया है । वह शून्य मूढ-दिग्मूढ हो जाता है । इस तरह धन के नष्ट होने पर भी अनेक दुःख पैदा हो जाते हैं । इसके कई दृष्टान्त वर्तमान काल के मौजूद हैं । थोड़े ही वर्ष के पहिले एक सेठ जी को व्यापार म अत्यन्त हानि हुई और टोटा लगा । जिससे उसका मन अत्यन्त उद्वेग में लीन हुआ और चिन्तातुर रहते २ अन्त में वह चित्तभ्रम पागल हो गया । वे समस्त जीवन पागल की तरह बेभान अवस्था में ही व्यतीत कर मृत्यु पाये । इसलिये पैसा प्राप्त करनेम जितना परिश्रम नहीं है, उतना उसकी रक्षा करने में है । जिसके लिये अथाह श्रम उठाना पड़ता है । मन को, तन को तनिक भी विश्रान्ति नहीं मिल सकती । कहा है कि —

दोहा-धन मेलवतां दुःख छे, साचवतां पण दुःख;
जो आवेलुं जाय तो, जाय समूलु सुख.

अर्थात—पैसा प्राप्त करने में, सचय करने में और नष्ट होने में तीनों तरह से दुःख ही होता है। चाहे जितना उसे सञ्चय करें, अन्तमें तो वह अवश्य जायगा ही। कारण कि शास्त्र में इन तीनों पदार्थों को चचल कहा है।

दोहा-काया माया कामिनी, त्रणे भगीनो गणाय;
तन मन दई रक्षण करे, तोपण विणसी जाय.

अर्थात्—काया, माया और कामिनी की चाहे जितनी रक्षा की जाय। धन को जमीन में, भण्डार में, या लोहे की मजबूत तिजोरियों में रखा जाय, पर इन तीनों पदार्थों को नमक के स्वाद ज्यों ही समझना उचित है। इस माया के सम्बन्ध में सुन्दरदास कवि ने बहुत ही सुन्दर उपदेश मुमुक्षु प्राणियों को आत्मज्ञान का बोध करने के लिये दिया है। वे कहते हैं कि—

कवित्त-माया जोरी जोरी नर, राखत यतन करी,
कहत है एक दिन, मेरे काम आई है;
तोहि तो न रहत कछु, वेर नहिं लगे सठ,
देखत ही देखत, बबुला सो विलाईए;
धन तो धर्यो ही रहे, चलत न कोडी ग्रहे,
रीते हाथ नसे जैसो, आयो तैसो जाई है;
करी ले सुकृत यह, वेरी या न आवे फिरी;
सुन्दर कहत नर, पुनि पछताई है.

इसलिये जो ऐसी अस्थिर लक्ष्मी का विश्वास करता है वह खूब पछताता है। इस पर एक दरिद्री ब्राह्मण का दृष्टान्त कहते हैं।

दुर्भाग्य और दरिद्री, दो ब्राह्मणों की दुर्दशा.

किसी एक नगर में एक जन्म दारिद्री ब्राह्मण रहता था, उसके घर में खाने के लिये अनाज भी न था, परन्तु खाने वाले बहुत थे। बिचारा सारा दिन परिश्रम करता, परन्तु वह पेट भरने जितनाभी कठिनता से प्राप्त कर सक्ता था। उसके दुःखका पारावार न था। दारिद्रदेवकी उसपर महत्कृपा फिर दुःखमें कमी किस तरह रह सक्ती है? 'न दारिद्रात् परं दुःखम्' दुनिया में दारिद्र से अन्य कोई बड़ा भारी दुःख नहीं है, क्योंकि 'सर्व शून्यं दरिद्रता' अर्थात् दरिद्री केलिये सब दिशाएं शून्य हैं। फिर उसके भाग्योदयसे उसे स्त्री भी राक्षसी ही मिली थी, वह रात दिन बिचारे को गालिया देती थी। उस कुभार्या की गालियें बिना खाये उसका कोई एक दिन शुभ भाग्य से ही बीतता था। एक समय उसकी स्त्री ने उसे अत्यन्त उपालम्भ देकर कहा कि, परदेश में जाकर कुछ कमाई कर लाओ, तभी मै तुम्हें यहा घर में रहने दूंगी, जब उसकी ऐसी हठ देखी, तो बिचारा मुरझाया और उसी गाँव में रहते हुए एक अपने ब्राह्मण मित्र से मिला, वह भी बिचारा निर्धन और दुखी था इसलिए दोनों मनुष्यों ने परदेश जाने का निश्चय कर, उसी दिन वहा से चल पड़े। बहुत देश विदेश फिरे, परन्तु कुछ नहीं मिला। अन्त में किसी एक बड़े नगर के राजा की दानेश्वरी, सुन वे भी उस शहर में आये। कर्मोदय से वे राजा बाहर गाँव गये थे, इसलिये बहुत दिन वहाँ ठहरे रहे। एक दिन राजा आ रहे थे तब उनकी घोड़े गाड़ी के सामने खड़े रहे और दोनों ब्राह्मण मधुर वचनों से आशीर्वाद देने लगे।

मालिनी वृत्त।

निवसतु तव गेहे निश्चला सिंधुपुत्री। प्रविशतु भुजदण्डे चण्डिका वैरिहन्त्री॥
तव वदन सरोजे भारती मातु नित्य, न चलतु तव चित्त पादपद्मान्मुरारे॥

अर्थात्—हे महाराजा! आपके घरमें सिंधु पुत्री—लक्ष्मी अटल निवास करे, आपकी भुजाओं में वैरी को दमन करने वाली चंडिकादेवी बसे, आपके मुख

दोहा-धन मेलवतां दुःख छे, साचवतां पण दुःख;
जो आवेलुं जाय तो, जाय समूलु सुख.

अर्थात—पैसा प्राप्त करने में, सचय करने मे और नष्ट होने में तीनों तरह से दुःख ही होताहे। चाहे जितना उसे सचय करें, अन्तमें तो वह अवश्य जायगा ही! कारण कि शास्त्र में इन तीना पदार्थों को चचल कहा हे'।

दोहा-काया माया कामिनी, त्रणे भगीनो गणाय;
तन मन दई रक्षण करे, तोपण विणसी जाय.

अर्थात्—काया, माया और कामिनी की चाहे जितनी रक्षा की जाय! धन को जमीन में, भण्डार में, या लोहे की मजबूत तिजोरियों में रखा जाय, पर इन तीनों पदार्थों को नमक के स्वाद ज्यों ही समझना उचित है। इस माया के सम्बन्ध मे सुन्दरदास कवि ने बहुत ही सुन्दर उपदेश मुमुक्षु प्राणियां को आत्मज्ञान का बोध करने के लिये दिया हे। वे कहते हे कि—

कवित्त-माया जोरी जोरी नर, राखत यतन करी,
कहत है एक दिन, मेरे काम आई है;
तोहि तो न रहत कछु, वेर नहिं लगे सठ,
देखत ही देखत, बबुला सो विलाईए;
धन तो धर्यो ही रहे, चलत न कोडी ग्रहे,
रीते हाथ नसे जैसो, आयो तैसो जाई है;
करी ले सुकृत यह, वेरी या न आवे फिरी;
सुन्दर कहत नर, पुनि पछताई है.

इसलिये जो ऐसी अस्थिर लक्ष्मी का विश्वास करता है वह खूब पछताता है। इस पर एक दरिद्री ब्राह्मण का दृष्टान्त कहते हैं।

दुर्भाग्य और दरिद्री, दो ब्राह्मणों की दुर्दशा.

किसी एक नगर में एक जन्म दारिद्री ब्राह्मण रहता था, उसके घर में खाने के लिये अनाज भी न था, परन्तु खाने वाले बहुत थे। विचारा सारा दिन परिश्रम करता, परन्तु वह पेट भरने जितनाभी कठिनता से प्राप्त कर सक्ता था। उसके दुःख का पारावार न था। दारिद्रदेव की उसपर महत्कृपा फिर दुःख में कमी किस तरह रह सक्ती है? 'न दारिद्रात् परं दुःखम्' दुनिया में दारिद्र से अन्य कोई बड़ा भारी दुःख नहीं है, क्योंकि 'सर्व शून्यं दरिद्रता' अर्थात् दरिद्री केलिये सब दिशाएं शून्य है। फिर उसके भाग्योदयसे उसे स्त्री भी राक्षसी ही मिली थी, वह रात दिन विचारे को गालिया देती थी। उस कुभार्या की गालियें विना खाये उसका कोई एक दिन शुभ भाग्य से ही बीतता था। एक समय उसकी स्त्री ने उसे अत्यन्त उपालभ देकर कहा कि, परदेश में जाकर कुछ कमाई कर लाओ, तभी मैं तुम्हें यहां घर में रहने दूंगी, जब उसकी ऐसी हठ देखी; तो विचारा मुरझाया और उसी गाँव में रहते हुए एक अपने ब्राह्मण मित्र से मिला, वह भी विचारा निर्धन और दुखी था इसलिए दोनों मनुष्यों ने परदेश जाने का निश्चय कर, उसी दिन वहां से चल पड़े। बहुत देश विदेश फिरे, परन्तु कुछ नहीं मिला। अन्त में किसी एक बड़े नगर के राजा को दानेश्वरी सुन वे भी उस शहर में आये। कर्मोदय से वे राजा बाहर गाँव गये थे, इसलिये बहुत दिन वहां ठहरे रहे। एक दिन राजा आ रहे थे तब उनकी घोड़े गाड़ी के सामने खड़े रहे और दोनों ब्राह्मण मधुर वचनों से आशीर्वाद देने लगे।

मालिनी वृत।

निवसतु तव गेहे निश्चला सिंधुपुत्री। प्रविशतु भुजदंडे चंडिका वैरिहन्त्री॥
तव वदन सरोजे भारती भातु नित्य, न चलतु तव चित्त पादपद्माग्मुरारे॥

अर्थात्—हे महाराजा! आपके घरमें सिंधु पुत्री—लक्ष्मी अटल निवास करे, आपकी भुजाओं में वैरी को हनन करने वाली चंडिकादेवी बसे, आपकेमुख

कमल में सरस्वती देवी का निवास हो और आपका मन प्रभु चरण में तनिक भी न हटे इत्यादि आशीर्वाद दे हाथ जोड सामने खडे रहे। राजा बहुतही परोपकारी, दीनबन्धु और दयालु थे, उन्होंने गाडी खडी रखी दोनो पर दया लाकर दान देने के लिए जेब में हाथ डाला तो फक्त दो ही रुपये निकले। राजा जब दो ही रुपये देने लगे तो ब्राह्मण अत्यत निराश हो नरमाई करने लगे, यह देख पास ही बैठे हुए मन्त्री साहब ने राजा जी से कहा कि, हे दानदक्ष महाराजा! ब्राह्मण बहुत तडफते है, विचारे बडी दूरसे इस आशासे आये है जिन्हें आप दो ही रुपये देरहे हैं, आप मालिक हैं परन्तु **महत्संगे महत्फलम्** अर्थात— बडे के सग से बडा फल होना चाहिए, आप इस वाक्य के योग्य हो। यह सुन तत्वदर्शी गभीर महाराजा ने कहा—मन्त्रीजी इनके भाग्यमें अधिक नही है क्योंकि प्रत्येक समय जेब म से या पास रखी हुई सदुक में से बडी रकम निकलती है और आज इनके भाग्योदय अनुसार फक्त दो ही रुपये निकले हैं। अगर फिर इनके भाग्य की विशेष तलाशी लेना हो तो कल इन्हें सभा में बुलाओ, इनके लिए कुछ युक्ति करेंगे। फिर दूसरे दिन ब्राह्मणों को कचहरी में बुलाया। उस समय राजा की आज्ञानुसार मत्री जी ने एक ऐसी युक्ति रची कि, सभा में एक दो रुपये की और दूसरी पॉचसो रुपयेकी ऐसी दो पक्तिया रची उनके सामने दो चिट्ठिया नामवार रखीं। मन्त्री जी की आज्ञानुसार दोनो ब्राह्मणों ने चिट्ठी उठा कर देखी, तो दो रुपये वाली ही चिट्ठी निकली, यह देख मन्त्री जी चकित हुए और भाग्य परीक्षा में कुशल महाराजा श्री की प्रशसा करने लगे। उधर दोनों ब्राह्मण अपने कम भाग्य पर पश्चाताप करने लगे। फिर मन्त्री जी ने कहा कि तुम्हारा भाग्य बुरा है। कहा है कि —

भाग्य हीना न पश्यति नयनाग्रेपि मानवा ।
दपतिना यथा धेन न दृष्ट कर्ण कु डलम् ॥

अर्थात् — भाग्यहीन मनुष्य अपने सामने पडी हुई वस्तु को भी नहीं देख सकते है, जैसे जान बूझ कर अधे बने हुए किसी मनुष्य को किसी एक दम्पति का रास्ते में रखा हुआ सुवर्ण कुण्डल दृष्टिगत नहीं हुआ। इसी तरह हे द्विजो! तुम भी उन्ही से हो। राजा जी ने उनके भाग्य में न होते हुए भी वह सब रकम उन्हें दे दी। दोनों ब्राह्मण राजा जी को आशीर्वाद देकर खुशी होकर बाहिर आये। दोनों ब्राह्मण उस गाव की धर्मशाला में सोयेपड़े थे कि इतने में एक

चोर आकर सब धन चुरा लेगया, वे जब सुबह उठे तो परदेश में न जाकर, घर जाने का निश्चय कर थैली लेनेगये, परन्तु जब थैली वहां न मिली तो हायर कर एकदम चिल्लाकर रोने लगे, मूर्छागत होगए । जब थोड़े समय बाद मूर्छा दूर हुई तो रोने पीटने लगे हाय २ गजब होगया ! चिल्ला २ कर माथा कूटने लगे । धन न था उससे भी आज उन्होंने अधिक दुःख माना, रोये, पीटे, बहुत तड़फे, पश्चात् तड़फते २ दोनों मनुष्य परदेश में कमाने के लिए आगे बढ़े । रास्ते चलते २ छोटा भाई बड़े भाई से कहने लगा कि मित्र देखा ! कर्म की दशा कैसी विचित्र है । भाग्य रेखा कभी टाली नहीं टल सकती ।

दोहाः—अभागिया तुं आथडमां, बेठा रहे भारमां;
तुं बेसीश गाडीमां तो, हुं बेसीश तारमां.
कर्म विना करमशीभाई, जानमां शां जावां;
भरी पंगतमां होंशे बेठा, तोय लूखां खावां.
प्रारब्ध को पेखणां, और देख दिवस का खेल;
विभीषण को राज मिला और हनमत को तेल.

अर्थात—हजारों उद्यम करो, परन्तु भाग्य तो दो कदम आगे ही चलता है यों एक दूसरे से अपने २ दुःख की बातें करते हुए आगे चले । धन के लिए बहुत से दावपेच किये, निर्दयी कार्य भी धन के लालच से करने लगे, द्विज जाती के अयोग्य निंद्य कर्म भी वे करने से न चूके । सचमुच वित्तार्थी मनुष्य वित्त के लिए क्या २ काम नहीं करते हैं ! द्रव्यार्थी लोग सचमुच पातक से भी नहीं डरते । कहा है कि —

नीचस्यापि चिरं चटु निरयन्त्यायाति नीचैर्नति ।
शत्रोरप्य गुणात्मनोपि विदधत्युच्चैर्गु णोत्कीर्तनम् ॥
निर्वेदम न विदति किंचिद कृतज्ञस्यापि सेवा क्रम ।
कष्टं किं न मनस्विनोपि मनुजा कुर्वन्ति वित्तार्थिन ॥

अर्थात—द्रव्यार्थी मनुष्य नीच से भी मीठे वचन बोलते हैं, तथा उन्हें

नमस्कार करते हैं। अवगुणी शत्रु का भी अत्यन्त गुणगान करते है, अकार्य करने से तनिक भी नहीं हिचकते, निरक्षर कृपण चाचा की भी सेवा करते हैं, भयकर वन में घूमते है, विकट अनार्य देशों में जाकर अनार्य हिंसादि के काम भी करते हैं, समुद्र के गहरे जल में डुबकी लगाते हैं, महा कष्टकारी कृषिकर्म (खेती का काम) करते हैं, ब्राह्मण जाति के लिए खेती का धधा अति निंद्य तथा शास्त्र से निषिद्ध होते भी आजकल कितने ही ब्राह्मण खेती का धधा करते हैं, अर्थात् जहा वित्तार्थीपना हो वहां ब्राह्मणत्व इत्यादि श्रेष्ठत्व नहीं रह सकता, तथा द्रव्यार्थी मनुष्य महा भयकर लड़ाई में भाग लेते हैं । इत्यादि दुर्घट कर्म करते हैं।

अपने दृष्टांत के नायक दोनों ब्राह्मणों ने भी द्रव्य के लिए कुछ करना बाकी न रक्खा। धीरे२ बारह वर्ष में पाचसौ मुहरें सचय कीं! परन्तु ये पाचसौ मोहरें कैसे प्राप्त हुई यह लिखते लेखक का हृदय फटता है, तो पढने वाले दयालु पुरुषों का हृदय क्यों न पसीजेगा? मतलब यह कि —उन ब्राह्मणों ने किसी शहर के बगीचे में एक लखपति सेठ के पुत्र को खेलता हुआ देखा, उसके शरीर पर अत्यन्त कीमती वस्त्राभूषण लदे थे। उसका रक्षक उसके लिए विविध भाति के पुष्प चुन रहा था, सध्या समय और एकात स्थान देख दोनों ब्राह्मणों के हृदय में लोभ राक्षस घुसा। लोभ आया कि दया,लज्जा, क्षमा, सत्य, सतोष, धर्म आदि उत्तम गुणों को तो भगना ही पडता है, यही इस लोभ राक्षस का प्रभाव है। फिर दोनों ब्राह्मणों ने निश्चय किया यह अवसर ठीक है। अपने बहुत वर्षों से घूम रहे हैं, परन्तु कहीं भी कुछ नहीं मिलता है। इसलिए कुछ नहीं तो यही सही। **करना हो सो करिये और पाप दोष न गिनिये** उस बालक को कुछ लोभ दिखा उसे फुसला कर गुप्त रीति से दूर जगल में उठा लेगए और गला मरोड कर मार डाला। फिर सब अलकार उतार लिए और चलते बने, क्रमश स्वदेश की ओर चलना प्रारभ किया। थोडी दूर जाकर एक देश में उन अलकारों को बेच डाला और पांचसौ रुपये नकद कर लिए। रास्ते में परस्पर दोनों के हृदयमें दुष्टभाव उत्पन्न होने लगे, उसमें से एक ने विचार किया कि —आधा धन तो ये ले जायगा तो मुझे क्या मिलेगा? इसलिये इसको मार डालना ठीक है तो सब धन मुझे ही मिल जायगा। यों दोनों ने परस्पर एक दूसरे को मार डालने के लिये अनेक प्रपच रचे। परन्तु

किसी का कुछ दाव न लगा। अन्त में वह धन दोनों के नाम से एक सेठ के यहां व्याज पर रख दिया और कहा कि हम थोडे दिन बाद यहा से जावेंगे तब लेते जावेंगे। पश्चात् कुछ विशेष पैदा करने की इच्छासे वे वहा रहे और अनेक उपाय किये, यों दो वर्ष बीत गए, अनेक दाव पेंच किए। अहाहा! तृष्णा कितनी खराब वस्तु है! जो तृष्णा नदी में न बहा हो उसको कोटिश धन्यवाद है। जब उन्हें कुछ विशेष लाभ न हुआ तब वे ही रुपए ले उन्होंने घर जाना निश्चित किया। दोनों ब्राह्मण सेठ के यहा आये और रुपए मागे। सेठने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक देना स्वीकार किया और विशेषमें यह कहा कि आज हमारे यहां मिष्टान्न-लड्डू खाकर बेशक आप अपने रुपए ले जाइए। एक को रसोई का कार्य करने लगाया और एक बाहर के कार्य में रहा। रसोई सब तैयार हो गई, तब रसोई बनाने वाले ने अपने मित्र से कहा कि मित्र! सेठ की दुकान से दाल में डालने के लिए नमक लाओ। वह दुकान पर आया, दुकान रसोई बनाने की जगह से बिलकुल सामने थी। नमक लेने आया हुआ ब्राह्मण अत्यन्त चतुर और महा धूर्त था, उसने मन में सोचा कि, यह अवसर ठीक है, अभी मैं सेठ से सब रुपए माग लू और लेकर यहां से कूच करू। "लगा तो तीर, नहीं तो तुक्का ही सही" ऐसा मन में दृढ निश्चय कर सेठ के पास आया और पाचसौ रुपए मागे। सेठने सोचा कि, विचारे ब्राह्मण बडे अधीर हैं! इसलिए सेठ ने कहा कि 'बेशक गिन लो' परन्तु अपने भाई से पूछ लो, वह हा कह दे तो मैं देदेना हूं। तब उसने कहा कि — सेठ जी! वह तो खुशी से हा कह रहे हैं उसके कहने से ही तो मैं यहा आया हू, तो भी आप को विश्वास न हो तो मैं आप के सामने यहीं से पूछता हू, ऐसा कह उसने उस ब्राह्मण से कहा कि हे भाई! सेठ से तू हा कह दे तो वह देदेंगे। यह सुन रसोई घर में उसने चिल्लाकर कहा कि, सेठ जी! उसको देदो, देदो, मैंने भेजा है, तब सेठ ने निशक हो सब रकम सौंप दी। वह तुरन्त रुपए ले कुछ बहाना बना वहा से ना दो ग्यारह हुआ। जब रसोई बनाने वाला ब्राह्मण बहुत देर से राह देखता हुवा थक गया कि वह अभी तक क्यों नहीं आया? पश्चात् वह बाहर निकला और सेठ से कहा कि — सेठजी! अभी तक नमक नहीं दिया? नमक का नाम सुनते ही सेठजी चौंके! कि तुमने क्या मगाया था। तब उस ब्राह्मण ने कहा कि सेठजी तुमने क्या दिया? सेठजी ने कहा, उसने तो मुझसे रुपये मागे, इसलिये

मैंने तुम से पूछ कर उसको सब गिन दिये। यह बात सुनते ही मानो उस ब्राह्मण के मस्तक पर कोई एक बडा भारी वज्र गिरा हो, वह सुनते ही चट पृथ्वी पर गिर पडा और रोने पीटने लगा, छाती माथा कूटने लगा। माना उसके कोई बीस वर्ष के पुत्र का वियाग होगया हो !! वह अत्यत विलाप करने लगा। हाय २ अब मै क्या करूगा ! वह तो लेकर न मालूम कहा चला गया होगा ! हाय २ गजब होगया ! रोते २ उसने कचहरी में जाकर इसकी सेठ पर नालिश की, जिससे सेठ कचहरी में बुलाए गए। सेठजी तो विचारे घवराते २ कचहरी में गए, मुकदमा चला, बहुत प्रश्नोत्तर हुए। अन्त में सेठजी ने विना तलाश किये दोनो के दस्तखत न ले रुपये देने का साहस किया, इसलिये सेठजी को इस ब्राह्मण को भी रुपये देने पडेंगे ऐसा न्याय मिला। इस न्याय से सेठजी घवराए और पश्चाताप का पारावार न रहा ! इस न्याय से उस ब्राम्हण के कुछ जीव में जीव आया। सेठ जी तो विचारमग्न हो गये कि अब क्या करू ! यह तो मुझपर मिथ्यादड हुआ ! वह पश्चाताप करता हुआ घर आया और एक हुशियार वकील को बुलाकर सलाह करने लगा कि इस मुकदमे मे मुझे क्या करना उचित है ? मै व्यर्थ मारा जाता हू और दोनों तरह दड पाता हू। वकील साहबने अक्ल घुमा कर कहा कि सेठजी पचास रुपये फीसके दो तो यह मुकदमा मै तुम्हें जिता दू। सेठजीने अत्यत प्रसन्न हो यह बात स्वीकार की। दूसरे दिन इस मुकदमेकी बडी कचहरी मे अपील कीगई और तारीख के रोज वादी प्रतिवादी सब हाजिर रहे। अनेक प्रश्नोत्तर हुए, अत में बडी कचहरी के न्यायाधीश ने भी सेठ के वकील से कहा कि सेठ जी को रुपये देने ही होंगे, नीचे की कचहरी ने जो ठहराव किया वह उचित है। यह सुनकर सेठ के वकील ने कहा कि '—साहब ! हमारा सेठ ब्राह्मण को रुपये देने को तय्यार हे (इस वाक्य से सेठ के हृदय मे तो बडा भारी दु ख पहुचा कि अरे रे ! वकील ने तो रुपये देना मजूर किया ! इतने में सुना कि) परतु दोनों ब्राह्मण का दस्तखत लेकर रुपये देना ऐसा सही खाते में लिखा है। रखते समय भी दोनों का दस्तखत लेकर रुपये रखे थे, तो यह ब्राह्मण उस ब्राह्मण को ले आवे और दस्तखत देकर रुपए ले जावे। अगर दोनों का दस्तखत हो जायगा, तो मेरा सेठ तुरन्त रुपए गिन देगा और तनिक भी देर न करेगा, यह ब्राह्मण अकेला नहीं माग सकता। इस दलील से न्यायाधीश आदि अत्यन्त प्रसन्न हुए और वकील की चतुराई की, अत्यन्त तारीफ करने लगे। सेठ भी अत्यन्त खुशी हुए, उनके हर्ष का पार

न रहा। परन्तु ब्राह्मण के तो अश्रुधारा बहने लग गई, वह अफसोस करने लगा, वह बिचारा रोता हुआ बाहर आया। उसके होश उड़ गए, मानो उसके हृदय में कोई भूत भर गया हो? वह बेभान होगया। जहां तहा रुपया २ बकने लगा, जब बकते २ वह अपने गॉवमें आया, जब खाली हाथ लेकर गया था और खाली हाथ लेकर आया देखा तब उसको राक्षसी समान स्त्री ने खूब धमकाया। बिचारा हाय २ करता हुआ रुपया २ बकता हुआ छ मास तक पागल रह अन्त में अकाल मृत्यु पाया। अब यह दूसरा ब्राह्मण जो कपट कर सेठ जी से रुपए ले गया था और अपने ग्राम में आ रहा था, तीसरे दिन किसी चोर ने रास्ते में उसे लूट लिया और सब रुपए छीन लिए। इसलिए वह भी इसी तरह झुर २ कर पागल हो थोड़े ही महीनों में हाय २ करता हुआ मर गया।

पैसा २! तूने तो बडा गजब किया! दोनों से अपार दुष्कर्म कराए और पागल बना मार डाले। इस तरह तूने अनेकों नए भृष्ट कर दिए हैं। इस दृष्टात से यही मतलब निकलता है कि, पैसा प्राप्त करने में और उसकी रक्षा में तो दु ख है ही, परन्तु उसके विलीन होने में भी दु ख है अर्थात् पैसा सब तरह से दु खदाई ही है, फिर अनीति से प्राप्त करने में तो महान कर्म बन्ध जाते है और भवोभव में परिभ्रमण करना पडता है। इन दोनों ब्राह्मणोंने अत्यन्त निर्दय कार्य कर पैसा प्राप्त किया, परन्तु उनके भाग्य में तो आखिर रोना, तडफना, झुरना ही था। कीडी संचे तीतर खाय, पापी का धन परले जाय। ऐसा ही हुआ। इसलिये पैसा प्राप्त कर कुछ दान, पुण्य, परोपकार आदि सुकृत्य करने में लगाओगे तो कुछ लाभ होगा, नहीं तो यह पैसा महा अनर्थ पैदा कर पाप की गठडी बाध इस दुनिया में अत्यन्त हैरान करेगा और अन्त में दुर्गति में ले जायगा।

निंदा स्याद्यदि वल्लभा सुखकरी स्वीकां कुरु त्वं ततः।
क्रोधः स्याद्यदि वल्लभो भय भरे भोगे कुरु त्वं तत॥
दर्पः स्याद्यदि वल्लभो गुण गृहे ज्ञाने कुरु त्वं ततो।
लोभः स्याद्यदि वल्लभोऽमित गुणे धर्मे कुरु त्वं ततः॥१४॥

अर्थ—हे प्राणी! जो तुझे निंदा करना अत्यन्त प्रिय हो, तो तू सुख पैदा करने वाली आत्म निन्दा ही कर, अगर तुझे क्रोध अत्यन्त प्रिय हो, तो अनेक प्रकार के भय से भरे हुए सासारिक काम भोग पर ही क्रोध कर, अगर तुझे अभिमान विशेष प्रिय हो, तो ज्ञान प्राप्त करने में ही अभिमान कर और तुझे लोभ अत्यन्त प्रिय हो, तो अनेक शुभ फल के देनेवाले अतुलित और अपार गुण वाले धर्म के लिये लाभ कर। ऐसा **सर्वज्ञ प्रभु ने** शास्त्रमें फरमाया है॥१४॥

भावार्थ—हे भव्यजनों! जो तुम्हें निंदा अतिशय प्यारी हो तो सचमुच सुखदायिनी अपनी आत्मनिंदा करो। अगर तुम्हें क्रोध अत्यन्त प्रिय हो, तो नाना प्रकार के भय से पूर्ण सासारिक नाना प्रकार के भोगों पर क्रोध करो, अगर तुम्हें अभिमान-गर्व अत्यन्त प्रियहो, तो गुण निधान ज्ञान सम्पादन करने में गर्व करो अर्थात् मुझे ज्ञान क्यों नहीं आता है? तथा ऐसी मनमें टेक रक्खो कि आज जितना ज्ञान प्राप्त किया है कल इससे अधिक प्राप्त करूंगा। यों निरन्तर ज्ञान सम्पादन करने में उत्साहपूर्वक टेक रखो। अगर तुम्हें लोभ अत्यन्त प्रिय हो तो अनेक गुण वाले सद्धर्म के लिये धर्म प्राप्त करने के लिए लोभ करो। आत्मनिन्दा करने से पुरुषों को कैसे २ लाभ प्राप्त हुए हैं वे तनिक ध्यान से सुनो। अपने परम पवित्र **श्री वीर पिता ने** सिद्धान्त सागर में तत्व भरे हुए प्राचीन महा पुरुषोंके चरित्र अपने जैसे मूढ़ हृदयों को प्रकाशित करनेके लिये समर्पण किए हैं। श्री लक्ष्मीकांतके छोटे भाई **गज सुकुमाल** लघु वयमें ही वैराग्यवत हुए और दीक्षित हो शमशान भूमिमें जाकर ध्यान धरा। आप एकाग्र ध्यान में अटल थे कि अचानक आप महान परिसह से ग्रसित हुए उस समय आपने भयकर उपसर्ग देने वाले अपने श्वसुर का कुछ भी अपराध नहीं किया था परन्तु उन्होंने आप के मस्तक पर प्रात कालीन सूर्य के प्रतिबिम्ब जैसे धधकते खेर के खीरे रखे। आप बिलकुल रोषाकुल नहीं हुए और न उनकी निन्दा ही की परन्तु आपने अपनी पूर्वोपार्जित कर्मोदय से घिरी हुई योगात्मा तथा कषायात्मा की ही अत्यन्त निन्दा की और एक प्रहरमात्र में ही निर्मल, जन्मादिक दोषों रहित अक्षय मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त कर अजरामरत्व पाये। इसके सिवाय भी कई दृष्टान्त प्रत्यक्ष साक्षीभूत है। इसलिए मोक्षेच्छु प्राणियों को आत्म निन्दा ही करना उचित है। क्रोध भी सासारिक काम भोगों पर ही

करना उचित है, कारण कि विषय भोग से अनेक भयङ्कर दुःख उत्पन्न होते हैं, जो भोग्य पदार्थ सुखदाई प्रतीत होते हैं ये किसी समय दुःखदाई हो जाते हैं। उदाहरणार्थ - घर बार और कुटुम्ब परिवार के लिये अनेक कुकर्म कर उन्हें खुश करते हैं, परन्तु जब अपन किसी विपत्ति में फस जायगे तो उस समय वे पदार्थ कुछ भी सहायता न कर सकेंगे, तब कितना दुःख होगा ? पुत्र जन्मता है तब कितना आनन्द होता है और जब वह बड़ा होकर ब्याहता है तब भी अत्यन्त आनन्द होता है परन्तु जब वह स्त्री के मोह बन्धन में फँसकर स्वतन्त्र होता है। अनेक तुफान मचाता है, माता पिता को अधिक दुःख देता है, हमेशा उठकर सासु बहु में तथा माता पिता और पुत्र के आपस में खून गर्म होने का समय आता है तब उसे देख माने हुए आनन्द का मजा मिलता है। मोह महिमा ही अपार है। प्रथम सुख दिखानी है, परन्तु पीछे वही सुख महा दुःखकारक हो जाता है। कहा है कि —

❀ शिखरिणी वृत ❀

थतां पुत्रो प्यारा अधिक उरमां स्नेहज धरे,
झुलावे फुलावे हरख सुखथी लालन करे;
थतां ज्यारे मोटा मदधर वये धारी गरीमा,
पिता सामा थाये अतिबल जुओ मोह महिमा!
तजो ऐवा मोहो विषयसुख छे चंचल अति,
जनो तेथी धारो निज हृदयमां धर्मनी मति;
भजो धारी प्रीति प्रभु चरण ने मोक्षगतिमां,
जशो थई निरागी प्रबल नहि तो मोह महिमा.

ऐसी मोह महिमा विचित्र है। इसलिए ऐसे काम भोगों में आसक्त न बन, उन पर क्रोध करना उचित है। अनादिकाल से इस जीव को विषय भोग प्रिय हैं, तो उन पर यह आत्मा कैसे क्रोध कर सकती है ? यह बात सच है,

परन्तु ससार के विषय सुख भोगते २ कभी घृणा हो आती है या त्रासदायक दृश्य दृष्टिगत होता है, अथवा साक्षात् श्रवण में आता है। तब उस विषय पर इतना क्रोध हो आता है कि फिर पूछना ही क्या है? इस क्रोध में कभीर आत्मा का बडा अहित हो जाता है। कितने ही अपघात कर लेते हैं, कितने ही भग जाते हैं और मौका मिल जाय तो दूसरों के प्राण तक ले लेते हैं। इस तरह अनेक रीति से कुपथ में वह क्रोध समा जाता है, परन्तु विवेकी पुरुष कुपथ पर न लग आत्मा को सन्मार्ग पर लगाकर क्रोध सफल करते हैं। उदाहरणार्थ जैसे राजर्षि भर्तृहरि का पिंगला रानी पर अत्यन्त प्यार था, वह प्यार इतना अन्ध प्यार था कि राजा को राजपाट इत्यादि के नष्ट होने की भी कुछ परवाह न थी, सिर्फ पिंगला के अखण्ड रहने की ही इच्छा थी। प्यार के कारण पिंगला के प्रत्येक मायावी शब्दों पर राजा का अटल विश्वास था, उसके मिथ्या वचनोंको प्रमाणिक समझ उन्होंने अपने परम प्रिय सद्गुणी सुज्ञ बन्धु श्री विक्रम को तिरस्कृत कर देश निकाला दे दिया था। परन्तु आपने रागाध लीन होने से तनिक भी विचार न किया था। अमरफल खाकर आप स्वय अमर न बनके, अपनी प्यारी पिंगला को अमर बनाने को आप प्रस्तुत थे परन्तु जब वही अमरफल चक्कर खाता हुआ फिरता२ अपने ही पास आया तब उनका मन कैसा हुआ होगा, सोच लीजिए! अन्त में पिंगला की माया जाल खुल गई, हृदय में क्रोधाग्नि एक दम प्रज्वलित हो गई और सच्चे अन्तःकरण से पश्चात्ताप करते हुए वे पिंगला रानी के पास आकर बोले कि —

भर्तृहरि के पिंगला से कहे हुए क्रोधपूर्ण कटाक्ष वाक्य.

अये कमजात पिंगला! तूने बहोत दगा दिया.
भाई जैसा भाई मैंने देश निकाल किया ॥ टेक ॥
तेरे पर इतबार रखा तैं बुरा किया;
जन्म मेरा आजतैं खराब कर दिया. अय कम० ॥

कपट वचन बोल कहती आओ मेरे पिया ;
जार कर्म गुप्त करती धिक्धिक् त्रिया. अय कम०॥
निर्दोष मेरा बंधु मालव देशसे गया ;
नठोर कठोर नारी जात दिलमें नहीं दया. अय कम०॥

फिर अपने भ्राता विक्रम के, देश निकाल देते समय कहे हुए वचन याद आजाने से आप गद्गद् कंठ से अश्रुपात करते हुए विक्रम बन्धु को सम्बोधन दे कहने लगे कि —

❀ मालिनी वृत. ❀

वचन सरव साचा विक्रमा बंधु तारा,
श्रवण युगल कांचा कामथी भ्रात मारा ;
वगर समझ काढयो भ्रात ! तुंने विदेशे,
भरथरी नृप भूल्यो भामिनीने भरूसे.

❀ भरतृहरि का पिंगला पर क्रूर क्रोधावेश ❀

(योगी लोको सारंगीमां गाय छे ते राग)

देखीने अमर फल, क्रोध उपरनो प्रवल ।
पिंगलानों जाण्यो छल भेद रे ॥ भरथरी ॥
अंगे उलटयो अनल, बन्यो अंतरे विकर;
पिंगलाना नाम पर खेद रे ॥ भरथरी ॥

हाथमां खड्ग झाली, आव्यो महेलमां चाली;
बोल्यो ततकाल करी क्रोध रे ॥ भरथरी ॥
धिक् धिक् नार तुने, ठग्यो ठगरमी मुने ;
करूं हवे तुज सिर छेद रे ॥ भरथरी ॥
विक्रम समान मारो, भाई गयो गुण भारो ;
जाण्यो नहीं दुष्ट तुत तारो रे ॥ भरथरी ॥
आखेंथी आंसू झरे छे, नजरे बंधु तरे छे ;
वचन तेना सरव सांभरे ॥ भरथरी ॥
कपट तारूं कलायुं, चितडुं मारूं चलायुं ;
नारी हत्या करतां हुं डरूं रे ॥ भरथरी ॥
नथी संसारमां कांई, जाउं वस वन मांहीं ,
रहुं जंगलमां बनी जोगी रे ॥ भरथरी ॥
एम कही गयो वन, तजीने राज-भवन ;
विनय मुनि वदे एहरे ॥ भरथरी ॥

❋ वसंततिलकावृत श्लोकः ❋

यां चिंतयामि सततं मयिसा विरक्ता ।
साप्यन्य मिच्छति जन स जनो ऽ्यसक्त ॥
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या ।
धिक तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥

अर्थात्—जिस पिंगला रानी की मै अहर्निशि चाह करता हू, वह अन्य (अश्वपाल) के आधीन है और मुझ से विरक्त मन रखती है। वह अश्वपाल गणिका पर आसक्त है और यह वैश्या मुझ से प्रेम करती है। इसलिए यह अमर फल लाकर मुझे दिया। इसलिए धिक्कार हो इस रानी को ! धिक्कार हो अश्वपाल को ! धिक्कार हो उस वैश्या को ! और धिक्कार हो कामदेव को ! तथा मुझे हजार२ बार धिक्कार है कि मैं मोह में फसा रहा और तनिक भी सोचा विचारा नहीं। अहा !! ससार का माया जाल कैसा विचित्र है। अन्त में लाल नेत्र कर तलवार मियान से निकाल आप पिंगला रानी का शिरच्छेदन करने,को तैयार हुए, परन्तु स्त्री हत्या का घातकी कार्य बिलकुल अनुचित समझ क्रोध को वैराग्य में परिणित किया। बस कुछ नहीं, ससार में किसने सार ढूढा है ? इसमें रह कर कौन सुख पाया है ? महा मोह राजा को किसने जीता है ? यह तो मोह महिमा ही अपूर्व है। कहा है कि—

❀ शिखरिणी वृत ❀

स्तनो जे नारीनां रुधिर रस मांसे थकी भर्या,
मृदु गोरा गालो पण रुधिरने अस्थीथी सर्या;
भर्यो योनि कुंड स्त्रव रुधिर मूत्र विकृतिमां,
नरो स्वादो माने तहीं पण जुओ मोह महिमा !

पश्चात् उन्होंने विषय को उद्देश्य कर सच्चे अन्त करण से पश्चाताप करते हुए ऐसा सचोट उपालम्भ दिया है कि दूसरों पर उसका प्रभाव हुए बिना नहीं रह सकता। इसलिए यह उपालम्भ यहा लिख देते हैं।

विषय !! विषय !!! तूने हद करदी ! तुझ सा पराक्रम धारी कौन होगा। तू सचमुच महा धूर्त है, तूने अपने पजे में अनेक २ पुरुषों को फसा कर उनके जानमाल को ही नष्ट भ्रष्ट नहीं किया वरन उनकी कांति, धन और सर्व राज्य ऋद्धि को भी नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। तुझ में लीन हुए मनुष्य मा बहिन और लड़की की भी चारपाई न देख सकें। बड़े २ देव भी तेरी अद्भुत शक्ति के

आधीन होगए तो मुझ जैसे पामर की क्या शक्ति है ? अरे दुष्ट काम ! तेरा नाम सुनते ही मेरा हृदय कांपता है मुझे नष्ट करने वाला तथा मेरे लघु बांधव विक्रम से वियोग कराने वाला भी तू ही है, जो तुझे सेवन करते हैं उन्हें वैसा ही बुरा फल मिलता है। अन्य देवों का स्मरण करने से तथा उनकी सेवा करने से वे विचारे अनेक संकटों से बचा अपार सुख दिलाते हैं, परन्तु तू तो सब से विपरीत ही चलता है। यह तेरा कितना जुल्म है! और तू कितना उलटा है ! तुझे देव समान मानना ही भयंकर भूल है। तेरा स्मरण मात्र ही दुःखदायक है, तो तुझे सेवन करने से क्या दुःख शेष रह सक्ता है ? पंडित पुरुषों ने तुझे तिरस्कृत किया है। तेरा आभास मात्र ही इतना दुःखदाई है, तो जब तेरा स्वयं साक्षात्कार होजाय तो कौन जानता है उसकी क्या दशा हो ? धिक्कार है तुझ पापी को ! तू देव नहीं परन्तु साक्षात् दानव ही है। चोर है, चांडाल है, लूटने वाला है, हिंसक है, और मदांध है। अनंत अवगुणों की खानि, दुःख देनेवाला, और अनेक प्रकार से सन्तप्त करने वाला तू ही है। तुझे जो पुरुष पोषते हैं उन्हें भी धिक्कार है तथा तुझे जो बहुत मान देते हैं उन्हें भी धिक्कार है कारण कि तू तो नर्क में लेजाने वाला और स्वर्ग सुख को छुडाने वाला है। महा दुःखदाई हे दुष्ट काम ! तुझे मेरा अंतिम प्रणाम है।

एक २ इन्द्री के वशीभूत होने से ही जो महा दुःखी हो मृत्यु के शरण चले जाते हैं, तो मनुष्य की पांचों इन्द्रियां तेरे वश होजाने से वह असह्य संकट में क्यों न लीन हो ? इसलिये हे काम! तुझे मेरा अंतिम प्रणाम है। ऐसा कह वैराग्यधारी गुरु गोरखनाथ के पास जाकर संसार का त्याग कर योगी बन गये।

इसी तरह प्रथम चक्रवर्ती **भरत महाराज** के बंधु **बाहुबलजी** ने भी अपने प्रचंड क्रोधानल को वैराग्य दशा में प्रणित किया है। राज लोभ के कारण दोनों भाइयों में प्रबल युद्ध हुआ, और बारह वर्ष तक हजारों मनुष्य मरते रहे परन्तु किसी की हार जीत न हुई तब अन्त में इन्द्र ने आकर बिना कारण से होती हुई घात रोक कर दोनों भाइयों में पांच शर्त की लड़ाई प्रारम्भ कराई। १ **दृष्टियुद्ध**, २ **नादयुद्ध**, ३ **बाहुयुद्ध**, ४ **मुष्टियुद्ध**, ५ **दंडयुद्ध**। इन पांचों शर्तों में भी भरत महाराज हार गए, तब भरत महाराज ने अनीति से बाहुबल जी का शिरच्छेद करने के लिये चक्र चलाया। परंतु

चक्र, गोत्र गर्दन न काट पीछे फिर आया, भरत की इस अनीति से बाहुबल जी को सख्त क्रोध आया और एक ही मुष्टि से भरत के प्राण लेलेने के उद्देश्य से मुष्टि उठाई, वह उठी ही रही। जब वह उठाई गई थी वह समय ही भिन्न था और जब वह पीछे नीचे गिरी वह समय ही भिन्न था। इस क्षण भर में मन के परिणाम बदल गए। क्रोधाग्नि का महा प्रचंड चक्र पीछे घूमा, विरोधी वैर मेघ बिखर गया। उनकी एक ही मुष्टिका भरत के प्राण लेलेने का महा सामर्थ्य रखती थी परन्तु उन्हें ऐसा घातकी कार्य करना बिल्कुल अनुचित जचा। एक ही जिन्दगी के राज्य के लिये बन्धु के सिर काटने की अपेक्षा अखण्ड प्रौढ प्रतापी मुक्ति पुरी का विशाल राज्य लेने का प्रयत्न करना उन्हें श्रेयस्कर जचा और उसी मुष्टि से वैराग्यपूर्वक अपने सिर का लोच किया, तथा संसार त्याग दिया। अहाहा! किस कसौटी के समय अपूर्व वैराग्य! क्या हे वैराग्य! तू धर्मस्थानक में ही भरा हुआ है? या तू साधु महात्मा की झोली में ही रहता है? या हवेली, मन्दिर मस्जिद में तेरा स्थान है? नहीं नहीं वैराग्य तो सर्वत्र व्यापक है, समस्त जगत वैराग्य से भरा हुआ है। दुनिया में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो वैरागी न हो, आत्मा अनुकूल हो तो सर्वत्र वैराग्य है और प्रतिकूल हो तो सर्वत्र ही संसार है। कहा है कि —

> वनेपि दोषा प्रभवंति रागिणां। गृहेपि पचेंद्रिय निग्रह स्तप ॥
> अकुत्सिते कर्मणिय प्रवर्तते। निवृतरागस्य गृह तपोधनम् ॥

अर्थात् —रागांध मनुष्य चाहे वैराग्य धारणकर जंगल में भी जा बैठे तो वहां भी उन्हें विषय कषाय आदि दोष घेरे रहेंगे और पांचों इन्द्रियों का निग्रह करने वाला वैरागी अगर घर में भी रहे तो उसके लिये वह घर ही तपो वन है। कारण कि जिसने निंदित कार्यों की दीक्षा ली है, वह संसारी होने पर भी उसका जीवन साधुमय ही है। **सर्वज्ञ महावीर प्रभु ने** भी इन जीवों प्रशंसा की है। **काम देव श्रावक, महासतकजी, आणन्द श्रावक, सुलसा, सुभद्रा, दोपदी, कुन्ताजी, दमयंती, अन्जना सुन्दरी, सीताजी, राजेमती, शीलवती** इत्यादि कई सतियों के जीवन भी ऐसे ही थे। इसलिए अकार्य प्रवर्तनका परिहार करना यही उत्तम साधुता का सरल लक्षण है और साधु जिंदगी में निंदित कार्यों का प्रवर्तन जो न त्यागता हो तो वह बाह्य साधु संसारी मनुष्यों से भी बदतर है।

उसे सर्वज्ञ महाजनों ने द्रव्यलिंगी अथवा पासथ्था, इस नाम से पहिचाना है। ऐसे निंदित कार्यों से मस्त बनकर कपटमय साधु जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा निंदित कार्यों से रुकी हुई नीतिमय सासारिक जिंदगी सर्वोत्कृष्ट है। **बाहुबल जी** ने क्रोध को वैराग्य में परिणित कर अपना जन्म सार्थक किया और आप चट दीक्षित हो चलते बने, तथा जंगलमें जा कायोत्सर्ग किया। इनका जीवन चरित्र अन्य ग्रन्थों में अवलोन कीजियेगा।

सारांश यह है कि, निन्दा अपनी ही आत्मा की करनी, क्रोध विषय भोग पर करना, अभिमान ज्ञान सम्पादन करने में करना और लोभ धर्मध्यान में करना उचित है। यही मनुष्य जन्म सफल करने का सच्चा और सद् रास्ता है और पवित्र अक्षय सुख मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय है।



यद्यस्तिते मोह महार्णवस्य।
कांक्षा महा भाग! हिपार मेतुम्॥
क्षिप्रं तितिक्षां करुणां कुरुत्वं।
शुद्धं तपो माणवकं गुणौघम्॥१५॥



अर्थात्:—हे महाभाग! इस मोहरूपी महासागर को पार करने की जो तेरी प्रबल इच्छा हो तो तू जल्दी क्षमा, दया, शुद्ध (बिना आशा किये किया हुआ) तप अत्यन्त गुण के भण्डार ब्रह्मचर्य इन चार वस्तुओं को अंगीकृत कर, ये ही जगत में सर्वथा सुखदाई हैं॥ १५॥

भावार्थ—हे महाभाग! जो तुझे सचमुच इस महा मोह रूपी महार्णव—पार करना है तो तू **तितिक्षा**—क्षमा, दया, एवम् ऐहिक और पारलौकिक सुख भोग तथा सासारिक फल रहित ऐसा शुद्ध तप तथा जिसमें अनेक गुण गर्भित हैं उस स्वर्ग अपवर्ग सुख के देने वाले **माणवकं**—ब्रह्मचर्य इन चार मोक्ष सुख के मूल कारणों को अंगीकार कर जिससे तेरी आत्मा शीघ्र ही अजरामरत्व पा सके।

यह तो बिलकुल सच है कि अपने अपराधी के किए हुए अपराध का बदला न लेते उस पर दया करना, क्षमा कहलाता है। यह क्षमा गुण सर्वोत्कृष्ट है तथा क्षमा यह सज्जनों का परमभूषण है। उत्तम पुरुष दूसरों के अपराध की ओर न देखते और अपने सिर पर कोई कष्ट आ पड़े तो उस पर क्रोध न करते उनका भला ही चाहते हैं। यह "महता मिदं लक्षणं" अर्थात् -महा पुरुषों का सुलक्षण है तथा क्षमा से कोई शत्रु मार २ करता हुआ आवे तो भी वह शांत हो जाता है। इसलिये क्षमा यही शत्रु को वश करने एवम् विनष्ट करने का शस्त्र है ऐसा चौकस समझना। कहा है कि —क्षमा शस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति अर्थात —जिसके पास क्षमा खड्ग है उसका शत्रु क्या कर सकते हैं? अर्थात् कोई कुछ नहीं कर सकता। इसलिए क्षमा सद्गुण हमेशा धारण करना चाहिये। इसी तरह दया, तप और ब्रह्मचर्य ये तीनों भी मोह रूपी महासागर पार करने के परमोपयोगी मार्ग हैं।

प्रभु ने दया मार्ग को प्रधान पद दिया है, दूसरे प्राणियों की दया पालने से ही अपनी दया पलती है। दूसरों की घात करने से अपनी घात होती है। सुखात् सुखं दुःखाद् दुःखं अर्थात् सुख से सुख और दुःख से दुःख मिलता है। इसलिए दुनियां के प्रत्येक प्राणी को अपना समझ उन पर करुणा करना, बने वहां तक उनको दुःख से बचाना हरएक प्राणीमात्र का कर्तव्य है। सिंदुर प्रकरण में कहा है कि —

क्रीडा भूः सुकृतस्य दुष्कृतरजः संहार वात्याभवो।
दन्यग्नौ व्यसनाग्नि मेघपटली संकेत दूती श्रियाम्॥
निश्रेणिस्त्रि दिवौकस प्रिय सखी मुक्ते कुगत्यर्गला।
सत्वेषु क्रियतां कृपैव भवतु क्लेशैर शेषैः परैः॥ १॥

अर्थात् —दया कैसी है? जिसके उत्तर में कहते हैं कि दया पुण्यो-पार्जन करने का क्रीड़ा भवन है, दया दुष्कृत रूपी रज को नष्ट करनेवाले प्रचण्ड वायु के समान है, भवोदधि का नाश करने वाली है, दुःख रूपी दावानल के लिये मेघ समान है, लक्ष्मी प्राप्त करने की संकेत दूती है, स्वर्ग की सीढ़ी और मुक्ति रूपी रमणी की प्रिय सखी है, एवम् दुर्गति की आड़ है। इसलिए अन्य कष्टों से चाहा तो अलग रहो सिर्फ दया ही स्वीकार करो।

[illegible] का विनाश करने के लिए तीसरा सुवर्ण तप है, तप यह भी आत्म शुद्धि का मुख्य साधन है। ज्यों अग्नि से सुवर्ण शुद्ध होता है त्यों आत्मा भी तप रूपी अग्नि से शुद्ध होती है, तप से प्राचीन कर्मों का नाश होता है, कर्म रूपी भारी पर्वत को गिराने के लिये यह वज्र समान है, विषय विकार जलाने के लिए यह दावानल तुल्य है, अन्धकार को नष्ट करने के लिए यह सूर्य समान है और मोक्ष रूपी लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए यह कल्पलता रूप है। कहा है कि-

यस्माद् विघ्न परंपरा विघटते दास्यं सुरा कुर्वते।
कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगण कल्याण मुत्सर्पति॥
उन्मीलन्ति महर्द्धय कलयति ध्वंस च कर्मणां।
स्वाधीन त्रिदिवं शिवं च भवति श्लाघ्य तपस्तन्न किम्॥

अर्थात्—जिससे अनेक विघ्नों का नाश होता है, देव [illegible]

भी स्त्रीलिंगपने का अवतार लिया। इसलिये तपम माया, कूट कपट अथवा क्रोध भी नहीं करना चाहिए तथा किसी सांसारिक सुख की लालसा भी न करनी चाहिये। निस्पृहता से तपस्या करना उभय लोक में फलदाई है।

अब चौथा मार्ग ब्रह्मचर्य है यह भी इस भवसिंधु को पार करने के लिए बड़ा साधन है, इससे आत्मा शुद्ध होती है। शीलव्रत सचमुच अमूल्य चिन्तामणी है, शील से जिसका हृदय शुद्ध है, वह प्रभु समान है। शील के बिना की हुई सब क्रिया बिना नमक के बनाये हुए भोजन के समान अफल है। जिसकी मनोवृत्ति कुशील से मलीन होगई है, उसका बाह्य व्यवहार भी मलीन ही समझना चाहिए। फिर शियल यह अमूल्य अलंकार है। इस अद्वितीय अलंकार से सब सद्गुण देदीप्यमान हो जाते हैं। इसके लिए राजर्षि प्रवर श्रीमान् भर्तृहरि ने कहा है कि —

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमः।
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रेव्ययः॥
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता।
सर्वेषामपि सर्वं कारण मिदं शीलं परं भूषणम्॥

अर्थात् —बड़प्पन का अलंकार सुजनता है, शूरवीर का भूषण वाणी का संयम है, ज्ञान का भूषण शांतता और शास्त्र पढ़ने का भूषण विनय है, द्रव्य का भूषण सुपात्र दान है, तपस्या का भूषण समता है, बड़ों का भूषण क्षमा और धर्म का भूषण सरलता है और सब पदार्थों में सबका मुख्य कारण रूप शील है। यह परम आभूषण है। इसलिये विवेकी पुरुषों को इसे ग्रहण करना चाहिये। कारण कि शियल से कुलका कलंक मिटता है, पापपंक का नाश होता है, अनेक सुकृत्य सञ्चय होते हैं, त्रिभुवन में श्लाघा फैलती है, देव समूह आकर उसे नमस्कार करते हैं, दुष्ट उपसर्ग को टालते हैं और आनंदपूर्वक स्वर्ग और मोक्ष के सुख प्राप्त होजाते हैं। ऐसी अपूर्व महिमा ब्रह्मचर्य व्रत की है। पवित्र वृत्तिसे जो मनुष्य ब्रह्मचर्य सेवन नहीं करते, और व्यभिचार से आप स्वयं को तथा कुलको कलंकित करते हैं। उनका अवतार पशुवत् व्यर्थ ही है। अब तप, क्षमा, ब्रह्मचर्य और दया, इन चारों पर चांडाल कुलोत्पन्न होते भी सर्वोत्तम माने गए एक हरिकेशी मुनि का दृष्टांत कहते हैं।

नीच वंश में उत्पन्न हुए कोई भी प्राणी अर्हित भाषित धर्म

करले, तो भी हरिकेशी मुनि की तरह मोक्ष के सुख प्राप्त करते हैं और अजर अमर बनते हैं।

हरिकेशी मुनि का दृष्टांत.

मथुरा नगरी के शङ्खभूपति राजा ने काम भोग की इच्छा निर्वाण (क्षय) होजाने से राज्य त्याग संयम अंगीकार किया। क्रमश गीतार्थ हो विहार करतेर थे गजपुर पधारे, वहां गोचरी गए। परन्तु मार्ग से अनजान थे इसलिये खिडकी में बैठे हुए सोमदेव पुरोहित को मार्ग पूछा। ईर्षा से दुष्ट पुरोहित ने कौतुक समझ अनलमय मार्ग दिखाया। दैवकोप से वह मार्ग अग्निमय उष्ण होगया था। सरल स्वभावी मुनि उसी मार्ग से जाने लगे, योगानयोग मुनि की तपश्चर्या प्रभाव से वह मार्ग शांत होगया, वे आगे बढते ही गये। साधु को हरिया सुमति ढूढते हुए और उनके तप के प्रभाव से शीतल हुए मार्ग को देख सोमदेव ने सोचा कि "अहो! धिक्कार है मुझ जाति मद करने वाले दुष्ट को! कि मैंने इन सरल स्वभावी, मुनिराज को प्रतिकूल मार्ग दिखाया! इन साधु के सत्य शील आदि सद्गुण मनन करने योग्य हैं और ये श्रुत के पारगामी हैं"। ऐसा सोच सोमदेव उनके पास आया और उसने धर्मोपदेश सुन दीक्षा ग्रहण की, ग्रहण किये पश्चात् सेवा विनय कर शिक्षित हो शास्त्र के पारंगत विद्वान् हुए, उन्हों ने तनिक अभिमान—जातिमद किया कि हमारी जाति उच्च है, परन्तु सद्भावना से संयम पालन किया। इसलिये आयुष्य क्षीण हुए बाद सम्यक आराधन कर मृत्यु पा देवलोक में महाद्युतिमान देव उत्पन्न हुए। वहां से मर कर वे नीच गोत्र कर्म के उदय से गंगातट पर बलकोट चांडाल के हरिकेशी नाम का पुत्र हुआ। पुत्र का जन्म होने से बलकोट और उसकी स्त्री गौरी को अत्यंत खुशी हुई। वे हरिकेशी सबको बडा उद्वेग देने वाले हुए। वैसे ही बदरूप थे और जिनके आठों अंग भी वक्र—कुबड़े थे। एक समय जब वह अपने बंधुओं के साथ क्रीडा करते थे, उस समय आपस में कलह होगया, जिससे वृद्ध पुरुष ने इन्हें निकाल दिया। इतने में वहां एक सर्प और एक गिंजाई निकली, लोगों ने सर्प को विषधर समझ कर मार डाला और गिंजाई की कुछ छेड छाड़ न की, यह दृश्य देख हरिकेशी सोचने लगे कि **प्राणियों पर अपने ही गुण दोष से सुख दुःख आ पड़ता है।** इसलिये अब मैं दूष त्याग

गुण प्रकाशक बने। कहा है कि दोष द्वारा दुष्ट पुरुष दुःखी होते हैं और गुण द्वारा पुण्यवंत जीव सुखी बनते हैं। वन में उत्पन्न हुआ फूल ग्रहण किया जाता है और अंग का मैल जल से धोकर साफ किया जाता है। इसी तरह प्राणियों को अपने गुणों द्वारा सम्पत्ति प्राप्त होती है और दोषों द्वारा विपत्ति आती है।

ऐसी भावना भाते हुए साधु से धर्मोपदेश सुन **हरिकेशी ने** दीक्षा अंगीकार की। पश्चात् तपश्चर्या करने से जिनकी देह दुर्बल होगई, फिर वे ऐसी ही अवस्था में वाराणसी नामक नगरी में पधारे। वहां तिंदुक नामक वन में रह कर उग्र तप करने लगे। जिससे तिंदुक नामक यक्ष आकर्षित हो रात दिन इनकी सेवा करने लग गया। एक समय उस यक्ष के एक मित्र ने उस से पूछा कि "हे मित्र! तू आजकल यहाँ दृष्टिगत क्यों नहीं होता है? उसने उत्तर दिया कि इन मुनि की सेवा करता हूं" तब दूसरे यक्ष ने कहा "ऐसे तो, मेरे उद्यान में भी बहुतसे तापस रहते हैं"। उस यक्ष ने कहा कि "वे ऐसे न होंगे"- ऐसा कह दोनों यक्ष उन्हें वहां देखने गए, तो वे उपाधि और विकथा में फसे बैठे थे। तब से ये दोनों यक्ष इन हरिकेशी मुनि के अत्यंत भक्त होगए।

एक समय उस उद्यान में वहां के राजा कौशल की कुँवरी भद्रा क्रीडा करने आई। उसने प्रथम यक्ष मंदिर में जाकर यक्ष की पूजा की। बाहर आने पर उसे वे कुरूप और कुवस्त्र पहिने हुए साधु नजर आये जिन्हें देख उसने उन पर थूका, मुँह मुचकाया, नेत्र मटकाये, और निंदा करती हुई बिलकुल मंदिर से बाहर आकर बोली कि:—"देखो! यह मल मूत्र का पर्वत! सचमुच यह तो दर्शन करने योग्य ही है!!" यों राजकन्या को इन साधु की निंदा करती हुई देखकर वह यक्ष अत्यंत क्रोधातुर हुआ और उसने भद्रा के शरीर में प्रविष्ट हो उसे परवश कर पागल बनादी तब से वह कुँवरी चाहे जो अट सट (मन में आया सो) बकने लगी, राजा ने उसे घर लाकर वैद्यजी, मंत्र यंत्र जानने वाले इत्यादि पुरुषों द्वारा उसके कई उपचार कराए, परन्तु सब क्रियाएं खार में बोए हुए अन्न की तरह निष्फल हुईं, वैद्य जी विद्या विहीन बन गए, मंत्र वादियों के मंत्र मिथ्या होगये, तब यक्ष ने स्वयं आकर कहा कि —"तपोराशी और महात्मा एवम् ममत्व रहित साधु की इस कन्या ने अत्यंत ही निंदा की है तो मैं अब इसे कब छोडूंगा? हे राजा! तू इस कन्या को इन साधु से ब्याह दे तो मैं इसे जीवित छोडूंगा, नहीं तो नहीं"। राजाने सोचा कि 'इसका

ब्याह कर देने मे ही यह जीवन लाभ प्राप्त कर सकती हो तो ठीक है"। ऐसा कह वन में लेजाकर उन मलीन शरीर वाले मुनि के साथ उसका पाणिग्रहण कर दिया, फिर राजा तो उसे वहीं छोड कर चला गया, पश्चात् पिछली रातको यक्ष ने वह अत्यत डराई धमकाई और कहा कि "अब तू अपने घर जा, तूने मुनि की अवहेलना की थी जिसका फल तुझे मिल चुका। जो अब फिर से ऐसा करेगी तो निश्चय से मृत्यु पायगी"। वह राजकन्या तो उन मुनि के पास जा उनके चरणारविंद पर शीश झुका कर अपनी आत्मनिंदा करने लगी, कारण कि अब यक्ष ने उसका वह पागलपन दूर करदिया था, स्त्रीका स्पर्श हुआ समझ कर मुनि ने कहा कि —अरे! तू मेरे पास क्यों आई है? मैं तो मुनि हू। मैंने तो स्त्रियों का सम्बन्ध तृण की तरह त्याग दिया है, हम तो सिद्ध स्त्रीके इच्छुक हैं, तुझसी दुर्गंध वाली और अपवित्र स्त्री के हम वाञ्छक नहीं है।" भद्रा ने कहा कि "आपने स्वयं मुझे बलात्कार गृहण किया है, मेरा आपके साथ ब्याह हुआ है। तो अब आप ऐसे टेढे क्यों बोल रहे है?" हे करुणा सागर! आप तो उत्तम पुरुष है, अगर आप ऐसा करेंगे तो मेरी क्या दशा होगी? मुनि ने कहा कि "तू किसी ने ठग ली है, तेरे शरीर में भूत भरा गया है। स्त्री से भोग करना तो दूर रहा परन्तु हम तो उससे बात भी नहीं करते है। कारण कि स्त्री में हजारों दोष है। कहा है कि —स्त्रिया सन्देह की खानि (पूर्ण भाण्डार) अविनय का घर, साहसों का केन्द्र स्थल, दोषों का भाण्डार, सैकडों कपट की जगह और अविश्वास का क्षेत्र है। इसलिए उत्तम पुरुषों को तो ऐसी स्त्री गृहण भी नहीं करनी चाहिए? ऐसी माया की खानि और विष भरी होते भी ऊपर से अमृत मय दिखती हुई स्त्री को धर्म का नाश करनेके लिये किसने रचा है? जिनके असत्य, साहस, माया, मूर्खता, अति लोभ, निःस्नेह और निर्दयता ये तो स्वाभाविक लक्षण हैं, तो ऐसी स्त्री को कौन अंगीकृत कर सक्ता है? यह सुन मद-नैत्र वाली भद्रा अत्यन्त चिन्तातुर हुई उसने अपने पिताजी के पास आकर सब वृन्तात कह सुनाया, राजाने अपने मन्त्री, सामन्त, पुरोहित आदि सबके सन्मुख कह सुनाया कि "मेरी कन्याको गॉव बाहरके यक्षने उस हरिकेशी नामक मुनिसे ब्याहा और ब्याहने पश्चात् इसकी बहुत हसी की है, मुनि तो इसे मन से भी नहीं चाहते है। तो अब इस मेरी कन्या को किसको देना चाहिये? यह सुनकर सब ने कहा कि "हे नृपति! आपने इसे ऋषि को ब्याही है, अतएव यह ऋषि पत्नी हुई, अब इसे किसी ब्राह्मण को दे देना चाहिये।" इसलिये राजा ने वहीं रुद्रदेव

नामक ब्राह्मण को बहुत धन दान देकर ब्याह दी। रुद्रदेव ब्राह्मण भी राजकन्या प्राप्त होने से मानो स्वर्ग प्राप्त हो गया ऐसा मानने लगे। फिर ब्राह्मण ने उसको शुद्ध करने के लिए बड़ा भारी यज्ञ रचाया।

उधर उन हरिकेशी मुनि महात्मा ने स्त्रीसंग से लगे हुए पाप के प्रायश्चित में एक मास के उपवास किये। वे मास क्षमण के पारने शुद्ध आहार की गवेषणा करते हुए जहां यह यज्ञ हो रहा था, वहां आया उन्हें उस यज्ञ स्थान में प्रवेश करते देखकर वे ब्राह्मण अपने जाति के मद में उन्मत हो एकदम बोलने लगा कि "हे दुराचारी! पापी, चांडाल, तू हमारे पवित्र यज्ञ के पात्रों को नष्ट भ्रष्ट करने कहां से आगया है? ऐसा कह सब ब्राह्मण बड़े जोर से चिल्लाये। उस समय ऋषि पत्नि भद्रा आकर कहने लगी कि —अरे ब्राह्मणो! मेरे पिता जी ने मुझे इन मुनि को अर्पी थी। परन्तु इन्हों ने मुझे बिना भोगे त्याग दी है, ऐसे साधुओं का अगर तुम अपमान करोगे तो ये तुम सबको त्रास देंगे, इसलिये तुम सब ब्राह्मण इनके चरण छूकर इनसे क्षमा मांगो, अगर ऐसा नहीं किया तो जरूर तुम्हारी मृत्यु होगी। भद्रा के ऐसे वचनों को वे अग्निमें घी होमने वाले समझकर क्रोध से प्रज्वलित हो कहने लगे कि "अरे स्त्री! तू यहां से हट जा, इन्होंने हमारा यज्ञ बिगाड़ा है, इसलिये हम तो इनको मारेंगे ही! तू यहां से हटजा, नहीं तो तेरी भी ऐसी दशा होगी।" ऐसा कह ये ब्राह्मण उन साधुओं को मारने लगे, तब साधु के देह में प्रवेश कर वह यक्ष बोला कि "हे ब्राह्मणो! मुझे भिक्षा दो, नहीं तो अवश्य तुम्हारी मृत्यु होगी, तुम दुराचारी ब्राह्मण यज्ञ के बहाने अपने उदरपूर्णार्थ जीवोंको नष्ट करतेहो। मैंने हिंसा रोकी है। मैं असत्य, चोरी, परिग्रह आदि से निवृत हूं और ब्रह्मचारी हूं, इसलिए मुझे धर्म समझकर भिक्षा दो। ब्राह्मणों ने कहा कि – यह सब अन्न कुलीन उत्तम ब्राह्मणों के लिए ही तैयार हुआ है यह तुम जैसे शूद्रों को देने के लिए नहीं बनाया है! इसलिए तुम्हें यह ग्रहण करने की वृथा इच्छा न करनी चाहिए। तब मुनि ने कहा कि –हिंसा और आश्रव सेवन करने वाले तुम ब्राह्मणों ने जो यह गले में जनेऊ धारण किया है इसलिए ब्राह्मण होगए ऐसा न समझो! अग्नि में होम किया हुआ सब भस्म होता है, इसी तरह तुम ब्राह्मणों में भस्म हुआ भी वृथा है, इस न्याय से तुम्हें दियाहुआ सब दान तो भस्म ही होनेवाला है। जन्म से ब्राह्मण और चांडाल के मध्य में कुछ अन्तर नहीं है, ब्राह्मणत्व कर्म से प्राप्त होता है। इसलिए तपोधनी जो यह उपार्जन करना चाहिए। कर्म से

द्रिव्य सम्पति मिलती है और कर्म से ही नरक गति प्राप्त होती है । जाति से कभी मनुष्य सद्गति नहीं पा सकता । जो शुद्धतापूर्वक सत्कर्म में तत्पर रहता है वह तीन लोक में पूज्य है और अकार्य में रक्त चाहे ब्राह्मण भी क्यों न हो निंदा के पात्र हैं । हे मूढ जनो ! मृत्यु होने के पश्चात् उसकी तृप्ति के लिए तो तुम श्राद्ध करते हो, यह छेदन भेदन कर जला कर भस्म किये हुए वृक्ष को जल सींचने के समान है । जो जल भुन कर भस्म किये हुए मृत्यु पाये हुए अपने पिता को श्राद्ध से तृप्ति होती हो, तो स्त्री से पुत्र पैदा होता है उसे भी तृप्ति होनी ही चाहिये । उसे तृप्ति क्यों नहीं होती ? इसलिये यह सब ब्राह्मणों के लिये छिलके कूटना जैसा है अथवा जले हुये धान्य को क्षारभूमि में बोकर उत्पन्न करने जैसा है । फिर तुम्हारा ब्राह्मणपन भी मध्यम है । मूर्ख मनुष्य जप, यज्ञ और होम की प्रशंसा करते हैं, इसलिये हे मूर्खो ! वेद रूप भार को उठाने वालो तुम्हें धिक्कार है ।"

साधु के ऐसे हृदय भेदक मर्म वचन सुन कर वे सब ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधातुर हो लाठी आदि लेकर साधु को मारने दौडे, परन्तु उन सब को यक्ष ने प्रहार किया । जिससे वे मुँह में से खून गिराते हुए चेष्टा रहित हो भूमि पर गिर पडे और उन्हों ने अत्यन्त कोलाहलपूर्वक आक्रंद करना प्रारम्भ किया । जब अपने पर बीती तब लाचार हो सब ब्राह्मण उस साधु को प्रसन्न करने के लिये हाथ जोडकर बोले कि "हमने आपकी अत्यन्त अवहेलना की है और यह हमने आपका बडा भारी अपराध किया है, कृपाकर आप हमें क्षमा कीजिये ।" मुनि ने कहा "मैं किसी पर मन वचन तन से द्वेष नहीं करता । यह सब यक्ष ने किया है, तुम सब को अब यह यज्ञ बन्द कर देना चाहिये, कारण कि यह नरक का हेतु है । कहा है कि-अस्थि में रुद्र रहते हैं, मास में कृष्ण और रुधिर में ब्रह्मा रहते हैं, इसलिये मास नहीं खाना चाहिये । जो मनुष्य तिल और सरसों के दाने जितना भी मास खाता है वह सूर्य चन्द्र रहते हैं वहा तक नर्क में रहता है, अग्नि से ब्राह्मण, शस्त्र से क्षत्रिय, कृषि कर्म करने से वैश्य और सेवा करने से शूद्र गिने हैं । कुटुम्ब में न रहे, ममत्व न रक्खे, परिग्रह का त्याग करे, परमात्मा में लीन रहे, किसी का संग न करे ये पांच ब्राह्मण के लक्षण हैं । मार्कंडेय ऋषि ने सूर्यास्त के पश्चात् जलपान को रुधिर पान समान कहा है और अन्न ग्रहण करने को मांस भक्षण समान कहा है, अंग, उपांग और लक्षण सहित चारों वेद का अध्ययन कर ब्राह्मण शूद्रों से भी प्रतिग्रह (दक्षिणादि) लेवे

हैं। उन्हें गधा समझना, वे गधे के बारह जन्म करते हैं, सुअर के साठ जन्म करते हैं, श्वान के सत्तर जन्म करते हैं ऐसा मनु ने कहा है। ऐसा न समझना चाहिए कि सिर्फ मस्तक मुंडने से ही साधु हो जाते हैं, संस्कार से ब्राह्मण हो जाते हैं। अरण्यवास से मुनि या वल्कल पहिरने से तापस हो जाते हैं। जो धन, धान्य, कलत्र, पुत्र, पौत्र, परिग्रह प्रमुख त्यागकर पाप रहित मार्ग पर फिरते हैं उन्हें ही ब्राह्मण कहते हैं" ये बातें हो ही रही थीं कि आकाश में वह यक्ष अदृश्य रह कर बोला कि हे ब्राह्मणो! तुम सब अपना भला चाहते हो, तो ये साधु कहें वैसा करो। नहीं तो मैं तुम सब को मारूंगा।" यह सुन वे सब ब्राह्मण खड़े हो उन हरिकेशी मुनि के चरण छू कहने लगे कि "हे मुनि! आज से हम आपके सेवक हुए। रुद्रदेव आदि ब्राह्मणों ने भी इन्हें गुरु मान अपना अपराध क्षमाया। उन्होंने पूछा कि "हे मुनिराज! मुक्ति सुख देने वाला धर्म कौनसा है? और यज्ञ का स्वरूप क्या है? इसके उत्तर मुनिराज बोले "सुनो! यह संयम (दीक्षा) यही यज्ञ है। इसमें के जीव को वेदी रूप समझो, तपको अग्नि रूप समझो, शरीर को छलणी और कर्म को काष्ठ समझो। शान्तिकर्म संयम का साधन समझो, सत्यादिक धर्म द्रह समझो, निष्पाप पना ब्रह्मतीर्थ समझो, और आत्मा की लेश्या शुद्धि को भवरोगाग्नि के नाश करने वाला स्नान समझो ऐसे होम को जो शांत हो गए हैं और जो उपरोक्त स्नान से निर्मल हैं वे ही पुरुष सिद्ध वधू के सम्बन्ध की सम्पत्ति के योग्य हैं"। फिर उन ब्राह्मणों ने हरिकेशी मुनि को शुद्ध आहार दिया तब यक्ष प्रकट हो बोला कि "तुमने इन साधु को प्रतिलाभ कर नमस्कार किया है, यह तुम्हें मुक्ति प्रदाता हो अगर तुम फिर कभी यज्ञ करोगे तो तुम्हारे प्राण पखेरू उड़ जायगे समझना।, इसलिये इन्होंने जो धर्म तुम्हें बताया है वह ग्रहण करो।" फिर उन ब्राह्मणों ने जैन धर्म अंगीकार किया। अनुक्रम से हरिकेशी बल मुनि, बहुत वर्ष तक तपश्चर्या करते केवलज्ञान प्राप्त कर भव्य जीवों को उपदेश दे मोक्ष पधारे। इसलिये दुनिया में धर्म यह अपूर्व वस्तु है। सच्चे प्रेम से धर्म पालने वाले अपूर्व सुख प्राप्त करते हैं। भव्य शुद्ध धर्म का सेवन ही भवसागर का अन्त कर देता है और अक्षय मोक्ष लक्ष्मी दिलाता है।



नोमेमित्रकलत्रपुत्र निकरा नोमेशरीरं त्विदं ।
नोमेज्ञाति रियंनमे परिकराः सेवानुरक्ताः सदा ॥
नोमे धान्यधरा धनानि विभवो नोमे शुभं मंदिरं ।
त्यक्त्वासर्वमिदं व्रजंतिमनुजास्तद्वद् धृवंमेऽपिच॥१६॥



अर्थः—मित्र, कलत्र, और पुत्र के समूह मेरे नहीं हैं, यह शरीर भी मेरा नहीं है, ज्ञाति और सेवा में सदा अनुरक्त दास भी मेरा नहीं है, धन धान्य धरा इत्यादि सब वैभव भी मेरे नही हैं, मेरे रहने का मंदिर—घर भी मेरा नहीं है। जैसे सब मनुष्य इन सबको त्याग कर चले जाते हैं, मुझे भी सचमुच इन्हें त्याग कर जाना होगा ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस जगत में पूर्वोपार्जित शुभ पुण्योदय से प्राप्त हुए सद्गुणी मित्र, मन को अत्यंत वल्लभ सुन्दरियाँ, आज्ञाकारी पुत्र ये सब मेरे नहीं हैं तथा जिसकी रक्षा के लिये अनेक पापों से बनी हुई दवाइयां उपभोग कर स्वास्थ्य सुधारना चाहता हूँ, मनको इष्ट मिष्ट और स्वादिष्ट महा पाप से तैयार हुए विविध खुराक से पुष्ट करना चाहता हूं, जिसके लिये अनेक पातकों के असह्य भार से दब कर कुकर्म करता हूं, वह शरीर भी अंत में मेरा नहीं है। कारण कि जिस शरीर में दो क्रोड और पचानव लाख रोम राय गले पर हैं तथा निन्नानवे लाख रोमराय गले नीचे है, कुल साढे तीन क्रोड रोम राय हैं और हर एक रोम राय पर पौने दो २ रोग भरे हैं ऐसे शरीर का क्या विश्वास है! न मालूम कब कौनसा रोग शरीर में भभक जाय उस समय वह महा वेदना दूर करना कठिन होजाती है कोई साधन नहीं मिलता। इसलिये एक दिन यह शरीर अवश्य सडेगा, पडेगा और विध्वंस होगा, तब इस शरीर को फिर मेरा कैसे माना जाय! तथा यह जाति भी मेरी नहीं, अहर्निश सेवा करने में अनुरक्त अनुचर—सेवक भी मेरे नहीं तथा ये धान्य के ढेर, यह विशाल पृथ्वी तथा यह लक्ष्मी, ये नाना प्रकार के सुख वैभव भी मेरे नहीं है तथा अत्यंत खर्च कर अत्यंत परिश्रम उठाकर बनाया हुआ यह खास मेरे ही रहने का सुन्दर मंदिर मकान, बाग, बंगला भी मेरा नहीं है। उपरोक्त सब पदार्थ मेरे क्यों नहीं हैं?

जिसका कारण बताते हुए कहते हैं कि ऊपर कही हुई सर्व वस्तुएं यहीं छोड़ प्रत्येक मनुष्य अकेला ही परलोक गमन करता है । उसी तरह से मुझे भी जाना होगा । मुझे भी सब वस्तुएं यहीं छोड कर जाना पड़ेगा । सिर्फ हर्ष अथवा खेद से उपार्जित शुभाशुभ कर्म ही मेरे साथ चलेंगे । इसलिये स्वात्म-हितेच्छुओं को सांसारिक पदार्थों पर से अति ममत्व भाव का त्याग कर सिर्फ एक पवित्र धर्म का ही शरण लेना श्रेयस्कर है । ये सब दृष्टिगत पदार्थ क्षणिक हैं । एक पल भर में हसाते हैं और दूसरे पल में अश्रुपात कराते हैं, यह मोह माया ठगारी है इस मोह जाल में जो फसते हैं वे नहीं निकल सकते । इसलिये हे प्यारी आत्मा ! अब जागृत हो और विचार कर । कहा है कि :—

❀ शार्दूल विक्रीडित वृत. ❀

मेडीसाल महेल अश्व गजने मूकी जवुं एकला,
संबंधी जन स्वार्थी अर्थी सघला अंते रहे वेगला;
वाड़ी खेतर बंगला बगी वली छाजे छजां गोखला,
जागी जो नर मोहजाल सघली तैयार था तोड़वा!
जाया ने जननी प्रिय जनक सहु माया रची मानवी,
तत्वे जाण नहिंज तुज सघलुं ए चेतजे मानवीं;
देखी ए भभको वधो उपरनो जो छारना छोडवा,
जागी जो नर मोहजाल सघली तैयार था तोड़वा.

मतलब यह कि मंजिल, मंदिर इत्यादि सब पदार्थ अनित्य हैं । यह सब माया का मोह जाल है । प्राणी मोह में लीन रहते हैं । परन्तु इतना भी विचार नहीं करते कि सिर पर काल का नकारा बज रहा है क्षणभर में, प्रहरमें पकडा या पकड लेगा । अहो माया का पड़दा कितना आश्चर्यजनक है ! भले भलों को भी भ्रमजाल में भुला कर चक्कर में डाल देती है और चतुर को भी प्रतिकूल मार्ग लगा देती है । सिर पर अनेक दुःख घूम रहे हैं तो भी लोग

आत्महित करने के लिये तनिक भी प्रेरित नहीं होते, विचार नहीं करते। कहा है कि :—

व्याघ्री व तिष्ठति जरा परितर्जयंति ।
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरंति देहम् ।
आयु परिस्रवति भिन्न घटा दिवांभो ।
लोकस्तथाप्य हितमा चरतीति चित्रम् ॥

अर्थात्—हमेशा जरा (बुढापा) नाम की व्याघ्रणी तर्जना कर रही है और प्रतिदिन शक्ति हीन बनाती जाती हैं, आयुष्य भी हमेंशा घटता जाता है। जैसे छिद्र वाले घडे में डाला हुआ जल कायम नहीं रह सक्ता, परन्तु कमती ही होता जाता है। इसी तरह सब हानिकर होता जाता है। तोभी लोभमें लुब्ध बने हुए लोग कुछ भी आत्महित नहीं करते और इसके प्रतिकूल कुपथ पर लग आत्मा को भारी बनाते रहते है। पश्चात् उन्हें परलोक में असह्य दुःख के भार से दबना पडता है। अरे प्राणी! तू जरा विचार तो कर, जब तू पैदा हुआ तब क्या लेकर आया था और जब तू जायगा तो क्या लेजायगा। जिन्हें तू अपना मान रहा है वे तो सब यहीं पडे रहेंगे। ये सब क्षण मात्र सुख दिखा कर बहुत समय तक नरकगति में डालकर महा दुःख देंगे। इसलिये ये सुख नहीं परन्तु दुःख ही है। तू मेरा २ मान रहा है परन्तु याद रखना कि जितना अधिक ममत्व है उतना ही अधिक दुःख है जहा मेरा वहां ममत्व है और जहां ममत्व है वहां दुःख है। कारण कि अपनापन ही सबसे बडा बधन है। उदाहरणार्थ—किसी मनुष्य की दूर देशान्तर में सगाई हुई जिससे वह मन में अत्यत प्रसन्न हुआ। अपनी आत्मा को बडी भाग्यशाली समझने लगा। थोडे दिनों पश्चात् हतभाग्योंदय से वह कन्या मर गई, यह समाचार सुन कर रोने लगा तथा अपने को महा दुःखी समझने लगा। अब तक उन दोनों का कभी मिलाप भी नहीं हुआ था, एक दूसरे को दृष्टि से भी नहीं देखा था, सुख दुःख की बातें भी नहीं हुई थीं जिससे कि एक दूसरें का स्नेह बढे और दुःख हो। तो भी जब उसे अपनी स्त्री के मरने के समाचार मालुम हुए उस पर एक दुःख का बादल घिर गया ऐसा उसे मालूम हुआ। वह रात दिन चिंता करने लगा। इन सबका मूल कारण क्या है? तो इसके उत्तर में यही कहना पड़ता है कि उसने अपनत्व माना यही है, जो अपनत्व—ममता न हो तो कुछ नहीं। जितना अपनत्व—ममता उतनाही दुःख है। अब इस पर एक पिता पुत्र का हृदय भेदक दृष्टांत देते हैं —

आशातीत पिता पुत्र का मिलाप होने पर भी वियोग ही रहा.

कोई एक मध्यम स्थिति वाला पुरुष परदेश धन कमाने के लिए जाता था। उस समय उसकी स्त्री के पुत्र पैदा हुआ, जब वह लडका एक सालका हुआ वह परदेश चला गया और किसी शहर में आकर नौकर होगया। वहां चौदह वर्ष तक नोकरी किये बाद उसने स्वदेश आने का विचार किया। उसने एक पत्र लिखकर प्रथम ही स्त्री को खबर दी कि "मैं अमुक तिथि को यहां से रवाना हो वहां आता हूं"। स्त्री यह पत्र पढकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और पुत्र तो पत्र पढकर हर्ष से पिता के सन्मुख जाने तैयार हुआ, उसके तो हर्ष का पार ही न रहा, दस पन्द्रह कोस पर एक गॉव की धर्मशाला में रहने के निश्चय से वह दो दिन पहिले विदा हो वहा आ रहा। उधर से उसका पिता भी वहांसे रवाना हो उसी धर्मशाला में आया। जहा एक दिन पहिले से अपना पुत्र ठहराहै। धर्मशाला बडी होने से और अच्छा प्रबध होने से मुसाफिरों का आवागमन अधिक था। पिता पुत्र दोनों की पहिचान भी न थी, फक्त नामसे पहिचानतेथे। अपना पुत्र सामने आया है, इसकी पिता को खबर भी न थी, अपने ठहरने के स्थान के पास ही पुत्र का स्थान था तो भी एक दूसरे को कुछ खबर न हुई। रात को सब भोजन पानी से निवृत होकर सोगए थे, कर्मयोग से उस रात को किसी विषधर सर्प ने उस लडके को डक मारा और थोडी देर में विष रोम २ में फैल जाने से यह लडका वहीं मर गया। आहा! दैव की गति न्यारी है। मनुष्य जो कुछ सोचता है दैव उसके प्रतिकूल सोच रखता है। मोह मुग्ध मनुष्य बडी २ आशाओं की तरगों में लहरें खाते हैं परन्तु काल किस तरह पकड़ेगा। यह किसी को खबर नहीं रहती है "**न जाने जानकीनाथः प्रभाते किं भविष्यति**" अर्थात् जानकीनाथ राम ने भी न जाना कि सवेरे क्या होगा? सध्या समय राज्य की तैयारी थी परन्तु सुबह राज्य के बदले वनवास मिला। इसलिए कर्म की बलिहारी है, कर्म करता है वैसा कोई नहीं करता। अपने दृष्टान्त के नायक उस पुरुष का लडका भी कर्मयोग से सब आशाए त्याग कर अकस्मात् काल कवल बन गया।

पश्चात् प्रात काल में लडके के मरने से सब आसपास के लोग इकट्ठे हो

उसे देखने लगे परन्तु उसका पिता सामने के दुकान में ही बैठा रहा जहां नहीं आया और वह उठा भी नहीं, कारण कि सवेरे ही मुर्दे का मुँह कौन देखना है? फिर उसको आज स्त्री, पुत्र से मिलने की अत्यन्त लालसा थी। इसलिये उसने सोचा कि सबेरे ही ऐसे अमङ्गल दर्शन होने से क्या करना? ऐसा सोच वह वहाँ से उठा भी नहीं उसके दिल में तनिक भी पश्चात्ताप नहीं हुआ। फिर वहां वाले दयालु पुरुषों ने अत्यंत पश्चात्ताप के साथ उसका अग्निसंस्कार किया। फिर उसका बिछौना ढूढा तो उसके कोट में से एक पत्र निकला कि जिस पत्र में उसकेपिता ने रवाना होने के समाचार लिखे थे। यह पत्र पढ़कर लोग परस्पर बातें करने लगे कि बिचारा लड़का बाप की अगवानी में आया था, परन्तु यहाँ स्वयम् ही काल कवलित होगया। इस कागज की वार्ता सामने बैठे हुए उस पिता ने सुनी वह अचानक चमक कर उठा। वहाँ आकर कागज देखा तो अपने ही हाथ का लिखा हुआ था। अब पुत्र को पहिचानते ही जोर से रोने लगा। मूर्च्छा खाकर जमीन पर गिर पड़ा, लोग इस अकस्मात से आश्चर्यान्वित हुए। पिता होश में आने बाद करुण स्वर छाती पीट रुदन करता हुआ विलाप करने लगा कि हाय २! गजब होगया। यह तो मेरा ही पुत्र था! मुझ दुष्ट ने उसका मुँह तक नहीं देखा। अरे रे! अबतो मैं भी मर गया, जीते जी मेरी मृत्यु होगई। मुझे क्या खबर थी कि यह मेरा ही लड़का है, नहीं तो मैं दवाई दारू कर उपाय भी कराता। अब मैं क्या करूगा, मेरी जिदगी में धूल पडी। मेरे जैसा पापी, अधर्मी, चडाल, निर्दय, पिशुन कौन होगा कि पुत्र के मुर्दे को अग्निसंस्कार भी नहीं देने पाया!! वह बहुत रोया, बहुत छटपटाया, उसने दोप्रहर तक खाना भी न खाया, फिर लोगों ने आश्वासन दे शांत किया, फिर बिचारा, तडपता, भूखा, प्यासा अपने गाँव में आया। स्त्री को खबर दी, अपनी भूल का वह अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगा। स्त्री भी खूब रोई, झुरी, तडफी परन्तु अब उसका क्या उपाय था? जहा दैव ही विपरीत हो वहाँ मनुष्य का प्रयत्न क्या काम दे सक्ता है?

इस दृष्टांत से यह उपदेश मिलता है कि जहाँ अपनत्व है वहीं दुःख है। जब तक उसने अपने पुत्र को न पहिचाना वहा तक उसके हृदय में तनिक भी धक्का न पहुचा, और अपनत्व मालूम होते ही उसके दुःख का पार न रहा। इसलिए विवेकी पुरुषों को ममत्व भाव त्यागकर आत्महित में चित्त लगाना चाहिए। कारण कि ममत्व भाव से बडे २, चक्रवर्ती राजा महाराजा

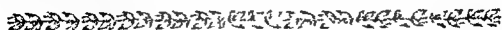
भी मर कर बुरी गति पाए हैं। तो दूसरों का कहना ही क्या है? उनको भी अन्त में दुःख से या मृत्यु से बचाने वाला कोई भी सामर्थ्यवान न हुआ था। कहा है कि—

❀ चतुर चैतन्य को चारुतर चितावनी ❀

(गजल कव्वाली)

प्यारा चैतन्य चेते तो, चेतावुं चित्तमां आजे;
नथी कांई अहि तारूं, मिथ्या तुं बोल मां मारूं.
नथी सुंदर घर तारूं, नथी सुंदर धन तारूं;
नथी सुंदर तन तारूं, मिथ्या तुं बोल मां मारूं.
जगतना कुट जालामां, न मोहि जा न मोहि जा;
विचारी खोल हित तारूं, मिथ्या तुं बोल मां मारूं.
पंचाननरूप तुं थईने, मल्यो अज युथमां जइने;
नथी अज युथ आ तारूं, मिथ्या तुं बोल मां मारूं.
नथी मातापिता तारां, नथी आत्म जो तारां;
जवुं अंते मूकी न्यारूं, मिथ्या तुं बोलमां मारूं.
कृपालु श्री गुरुवर ने, ग्रहो ते प्राप्त करवाने;
विनयथी सद्गुरु पामी, रहो शिव सद्मां जामी.

इसलिये विवेकी पुरुषों को मोह ममत्व त्याग उत्तम धर्म का ही आराधन करना चाहिये जिससे यह असार और अपार संसार सागर के अंत का पार आजाय और परम शांति पद प्राप्त होजाय।



नो धत्तं किल मानुषँ वर मिदं मित्राय पुत्राय वा।
नो धत्तं किल मानुषं पर मिदं चित्ताभिराम स्त्रियै॥
नो धत्तं किल मानुषं वर मिदं लाभाय लक्ष्म्यास्तथा।
किं त्वात्मोद्धरणाय जन्म जलधेर्धत्तं वरं मानुषम्॥१७॥



अर्थः-सचमुच यह उत्तम मनुष्यत्व कुछ प्रिय पुत्रों के लिये प्राप्त नहीं हुआ है। तथा यह उत्तम मनुष्यत्व लक्ष्मी के भंडार भरने के लिये नहीं धारण किया है, तथा यह मनुष्यत्व सुंदर चित्तहर सुंदरियों के विलास सुख के लिये नहीं मिला है परन्तु यह मनुष्यत्व इस भयंकर भव रूपी सागर में डूबे हुए इस आत्मा के उद्धारार्थ मिला है इसे बिल्कुल योग्य समझना चाहिये॥ १७॥

भावार्थ—हे सुज्ञ मुमुक्षु पुरुषो! यह उत्तम मनुष्य जन्म सचमुच प्यारे मित्रों के लिये तथा प्रिय पुत्रों के लिये नहीं मिला है, तथा मनोहर स्त्रियोंके लिये भी नहीं है, एवम् लक्ष्मी का संग्रह कर भंडार भरने के लिये भी यह मनुष्त्व नहीं पाया है। परन्तु जन्म रूपी महासागर में डूबी हुई इस आत्मा के उद्धार के लिये यह मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है। कारण कि श्री सिद्धांत सागर में अपने परम पवित्र पूज्य पुरुष **श्री महावीर स्वामी** ने खास कहा है कि इस जीव को भवोभव में प्यारे मित्र, पुत्र, कलत्र एवम् लक्ष्मी भी पुण्योदय से प्राप्त हुई है, परन्तु कर्म रूपी महामोह निधि में लीन हुई इस आत्मा के उद्धार करने के वास्ते यह पवित्र जैनधर्म इसे कभी किसी समय भी प्राप्त न हुआ और कदाचित् प्राप्त भी हुआ तो प्रेम से इसका पालन नहीं किया, इसलिये इस महा कठिनाई से मिले हुए मानव भव में एक स्वार्थ सिद्धकारक धर्म का ही संग्रह कर आत्मा का उद्धार करना चाहिये यही उत्तम है।

हे विवेकी सुजनो! इतना अवश्य याद रखिये कि पुत्र, स्त्री या लक्ष्मी इनमें से कोई भी स्वर्ग का साथी नहीं है, इनमें अत्यंत लुब्ध होकर तू मानता होगा कि ये सब मेरे हैं और मैं इनका हूं, परन्तु तेरी ऐसी भावना बिल्कुल

मिथ्या है, ठगारी है, और भ्रम में भुलाने वाली है, तनिक विवेक चक्षु खोल कर विचार करेगा तो सहज ही मालूम होजायगा कि यह सब दृश्य असार है। कहा है कि :—

इतो न किंचिद् परतो न किंचिद् । यतो यतो यामि ततो न किंचित् ।
विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित् । स्वात्मावबोधादधिकं न किंचित् ॥

अर्थात् —इस लोक में कुछ नहीं, परलोक में कुछ नहीं, जहां २ जाता हूं वहां २ कुछ नहीं है। विचार कर विवेक चक्षु से देखता हूं तो संसार विचित्र ही दृष्टिगत होता है और अंत में निश्चय करता हूं कि जगत में आत्मज्ञान के सिवाय किंचित् मात्र भी सत्य पदार्थ नहीं है। तो हे मनुष्य ! तू मनुष्य जन्म पाकर मनुष्य ही रह, परन्तु जानवर—ढोर मत बन। कारण कि आहार, निंद्रा, भय, मैथुन इत्यादि व्यवहारों में मनुष्य और जानवरों में कुछ भिन्नता नहीं है। भिन्न है तो सिर्फ मोक्ष रूपी दरवाजे की ताली मनुष्य के पास है, यह ताली विचारे पुण्य रहित पशुओं के पास नहीं है। तथा सत्यासत्य का विवेक, हेय, ज्ञेय और उपादेय का तत्वज्ञान विचारे पशुओं के पास नहीं है। यह तो प्राय मनुष्यपने में ही रहता है। इसलिये ही मनुष्य जन्म सब से श्रेष्ठ है ऐसा सर्वज्ञ महाजनों ने फरमाया है। देव भी दुर्लभ मनुष्यत्व चाहते हैं कारण कि मनुष्यों में अपूर्व दिव्यता प्राप्त करने की जो शक्ति है वह देवों में नहीं है। देवों की शक्ति और मिली हुई ऋद्धि एकदेशीय है वह स्थान समाप्त हुए बाद सब अदृश्य होजाती है। चाहे जितनी वैक्रिय अद्भुत शक्ति से आश्चर्य भरे दृश्य दिखावें परंतु मनुष्य जो करते हैं वह देवों से नहीं बन सक्ता। उदाहरण —

देवेंद्रके साथ स्पर्धा करनेसे दशार्णभद्र वैरागी हुए.

श्री महावीर भगवान को एक समय दशार्णभद्र नामक राजा बड़े अलौकिक समारोह के साथ उत्साहपूर्वक शहर को सजा कर रानी इत्यादि परिजन और राजकीय सब सामग्री सहित सानन्द वन्दन करने चले, उस समय यह बात सौधर्मेन्द्र नामक देव को मालूम हुई इसलिए वे राजा का अभिमान उतारने के लिए फक्त हाथी की ही साहिबी से स्वर्ग स्थल से उतर वीर प्रभु के दर्शनार्थ भाण भूलोक को आश्चर्य में मग्न करते आकाश मार्ग

से आते हुए इन्द्र को जब दशार्णभद्र राजा ने देखा तो देखते ही वे आश्चर्य चकित होगए। आहाहा! क्या उसकी साहिबी!! ज्यों दिनको सूर्यादय होने से चन्द्र छिप जाता है उसी तरह सौधर्मेन्द्र देव की लीला ऐश्वर्यता देखकर राजा सकुचा गये और अपने समारोह को बिलकुल फीका समझने लगे। ये कौन है? कहाके राजा है? कहां जाते है? अरे इनकी यह साहिबी तो अपूर्व ही है, इस साहिबी की सोलहवी कला भी मेरी साहिबी नहीं, अहा! इन्होंने तो गजब किया, मेरा तो सब मान ही उतर गया। अहाहा! कैसी अलौकिक रचना साहिबी तो फक्त हाथी ही की हे परन्तु इसकी अपूर्व रचना चन्द्रओं को चक्क चौंधी ला दी है। उन इन्द्र के हाथी की रचना का वर्णन भी सुनिये —

❀ राग होरी ❀

वीर ऐसे जिन वंदन को हरि, आवत वे कर जोडी;
चौसठ सहस्त्र हस्ती बनाये, पांचसौ बार मुखोरी. (१)
मुखमुख अष्ट दंतुषल सोहे, वावडी आठ लहोरी.
वाव्य २ वीच अष्ट कमल है, पांखडी लाख लहोरी (२)
पांखडी २ नाटक रचना, वांसली वेण झकोरी.
कमल २ वीच इंद्रभुवन है आठ भद्रासन जोरी (२)
वीचमें सिंहासन इंद्र विराजे, वीर नमे कर जोरी.
दशार्णभद्र देखी हरी रचना, निज अभिमान तज्योरी (२)
ऋद्धि छोड़के चारित्र लीनो, प्रभुके चरण रह्योरी.
प्रभुके बचन सुनि आनंद पावे, वंदन मुनिपे कर्योरी (२)
विनय धरत बहु भक्ति करत हे, हरि निज स्वर्ग गयोरी.
वीर ऐसे जिन वंदन को, हरि आवत वे कर जोरी.

अर्थात्—चौसठ हजार हाथी, प्रत्येक हाथी के पांचसो बारह मुख, प्रत्येक मुँह में आठ २ दन्त शूल, प्रत्येक दन्त शूल पर आठ २ बावडिया, प्रत्येक बावडी में आठ २ कमल, प्रत्येक कमल के लाख २ पखडिया, प्रत्येक पखिडी में एक २ इन्द्र भुवन, एक २ इन्द्र भुवन में आठ २ भद्रासन, बीच में इन्द्र और घूमती हुई इन्द्राणिया अपर्व नाटक करती हुई, इन्द्र महाराज को अपूर्व आनन्द दे रही है। यह सब अद्भुत दृश्य देख कर इन्द्र का मान उतारने के लिए अन्त में दशार्ण भद्र राजा ने **श्री वीर प्रभु** के पास दीक्षा ली और मुनि मडल में एकत्रित हो गए, इन्द्र इस दृश्य से अत्यन्त सानन्दाश्चर्यान्वित हुए और उनके चरण कमल पर मस्तक रख नम्रता से बोले कि 'हे मुनिराज! सचमुच इस स्पर्धा में मै आप से हार गया और आप जीत गए। मै सोचता था कि मैं इन्द्र हू इसलिये राजा का अभिमान उतारूगा परन्तु यहा तो आपने ही मेरा अभिमान उतार दिया। सचमुच आप जीते। जैसा आप ने किया वैसा मुझ से नहीं हो सक्ता। हमारी शक्ति तो पौद्गलिक दृश्य बना देने की है, परन्तु आत्मिकशक्ति खिलाने का सुलभ उपाय तो आप जैसे भाग्यवन्त मनुष्य ही कर सकते हैं। हम निर्सागियों में इस आत्म तत्व के खिलाने की शक्ति नहीं है। अहा धन्य है! आप के मनाधिकार को! कि आप ने सत्वर निश्चय से वैराग्य प्राप्त कर लिया, मैं आपको सो २ बार वन्दना करता हू। धन्य है मनुष्य जन्म को! ऐसा कह इन्द्र महाराज नमस्कार कर अपने स्थान पर गए। सचमुच मनुष्यत्व यह अमूल्य हीरा है, यह हीरा महा कठिनाई से हाथ आया है यह फिर से मिलना महा मुश्किल है। इसलिये हे आत्मबन्धुओ! जरूर याद रखिये कि यह मनुष्य देह रूपी रत्न चिन्तामणि प्राप्त कर अनेक महान लाभ प्राप्त करना है और कई शुभ कार्य करना है। परन्तु यह अमूल्य मानव जीवन **परस्स अट्ठा** अर्थात् दूसरों के लिये फुजूल व्यर्थ खो देना नहीं है। कारण कि जितने भी मनुष्य परदेश जाते हैं सब धन कमाने की आशा से जाते है। परन्तु माल शौक में चिताने नहीं जाते। इसी तरह यह मनुष्यत्व पाकर कर्म भार कम करना है और यह सद्गुरु रूपी अमूल्य लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये ही मिला है तो भी कितने ही मोह मुग्ध पामर मनुष्य स्त्री आदि मोह मायिक लक्ष्मी के भ्रमर में ही डूब जाते है। परलोक का डर त्यागकर क्रूर कर्म करते है और मनुष्य जन्म को फजूल निरर्थक कर अन्त में हार जाते हैं। कहा है कि—

❀ शार्दूल विक्रीडित वृत ❀

सारूँ उत्तम आ शरीर जर ते, हाथे मल्युं हारमां,
ओचिंतो अकलावशे धसमसी, माथे फरे काल आ;
आधी रोज उपाधि व्याधि वधशे, जाजे पत्नी दोड़वा,
जागी जो नर मोहजाल सघली, तैयार था तोड़वा;
भाली न्याल थयो भले भवन तुं, रात्रिशमां रोवमां,
आयु चंचल चेतजे पलपले छीजे, तने छोड़वा;
पुत्रादि परिवार सार समझी, शाने पड्यो मोजमां,
जागी जो नर मोहजाल सघली, तैयार था तोड़वा;

इसलिये हे भविजन ! इस असार संसार में लुब्ध न होते तुम अपना आप सोचो, पाप से डरो, परोपकार के कार्य कर जिंदगी सफल करो, आयुष्य का भरोसा रख प्रमाद में न पडो । अभी काम बहुत है, तनिक भी फुरसत नहीं, इसलिये वृद्धापनकाल में शांतता से प्रभु का स्मरण करेंगे । ऐसा जो भविष्य का भरोसा रखते हैं, ये अन्त में पूर्ण पश्चात्ताप करते है । कारण कि कल किसने देखा है ? काल का विश्वास नहीं है । कालरूपी कसाई अकस्मात् पकड लेता है तो सब मन के धारे हुए मन में ही रह जाते हैं और जैसे आए तैसे ही कायारूपी घर खाली कर खाली हाथ परलोक की मुसाफिरी के लिये चले जाते हैं । उस समय जीव के हाथ उसकी प्राप्त की हुई लक्ष्मी, पुत्र कलत्र या वैभव कुछ नहीं जाता तथा वे मददकर्ता भी नहीं हो सकते, सुख दुःख में तनिक भी हिस्सा नहीं बटाते । उन सब के लिए किए हुए कर्म तुझ अकेले को ही भोगना होंगे । **प्राणिनां भिन्न पथत्वात्** अर्थात् परलोक में प्राणियों की गति भिन्न २ होने से इस जिंदगी में मिला हुआ कुटुम्ब ही प्रत्येक भव में नहीं मिल सका ।

सिर्फ व्यर्थ के फन्दे में फस गया, अभिमान में लीन हो गया, धर्मेय भूल गया और अरण्य के गहन गड्ढे में गिर गया। उदाहरणार्थ —रंगमहल में सुन्दर छत्र-पलग पर सोए धारापति भोज राजा रात में जागृत हो अपनी ऐश्वर्यता के लिए विचार करते थे कि —

❀ वसन्त तिलका वृत ❀

चेतोहरा युवतय सुहृदानुकूला ।
सद्बान्धवा प्रणयगर्भ गिरश्च भृत्या ॥
गर्जंति दृति निवहास्तरला स्तुरगा ॥

अर्थात्—मेरे चित्त को आनन्दकारी अनेक सुन्दरियां प्रस्तुत हैं मेरे तथा अनुकूल मित्र भी प्रस्तुत हैं, तथा सुहृदय बन्धु और कोमल विनम्र नौकर भी मेरे बहुत हैं, सेकड़ा हाथी मेरी गज शाला में झूम रहे हैं, तथा चपल अश्व भी मेरे बहुत हैं। इस तरह राजा भोज ने आप स्वयं कवि होने से अपने ऐश्वर्य का इन तीन चरणों में वर्णन किया। उस समय चोरी करने आए हुए किसी द्विज पुत्र ने चोथा चरण रच कर राजा के हृदय चक्षु खोल दिए। उसने कहा कि —

संमीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति ।

अर्थात्—दो नैन-चक्षु बंद हुए कि तुम्हारा कुछ नहीं है। अर्थात् आयुष्य पूर्ण होने पर ये सब सुख यहीं त्यागकर अकेले जाना पड़ेगा। यह संसार तो उतरने वालों के लिये एक मुसाफिरी बगले जैसा है। बगले में जो आकर रहता है जिससे भले वह मान ले कि यह बंगला मेरा है, परन्तु ऐसा मानना भूल है क्योंकि एक दिन यहां से जाना पड़ेगा। यह मनुष्य जन्म सच्चे लाभार्थ प्राप्त हुआ है, मिथ्या कर्म बाधन को नहीं हुआ है। मनुष्य वाहन रखते हैं तो उन पर बैठने के लिये रखते हैं, परतु उन्हें उठाने के लिये नहीं रखते। इसी तरह यह मनुष्यत्व संसार सागर तिरने के लिये आत्मा के उद्धारार्थ है, परन्तु संसार सागर में डूब भारी कर्मी होने के लिये नहीं है। यह अवश्य याद रखना चाहिये। अब इस पर एक दृष्टांत कहते हैं —

खुदा से घोड़ा मांगने वाले एक अफीमची मियां की वार्ता.

कोई एक मिया परगाव गये, आप स्वय वृद्ध होने से बहुत दुबला, शिथिल होगया था, चलने की पूरी शक्ति न थी जिससे धीरे २ चलता था। आधार भूत लकडी भी साथ ही थी, लगभग दो एक कोस गया कि वह थक गया, पसीना आगया, चलने की शक्ति टूट गई। अफीम का अभ्यास होने से उसका भी उतार आगया था, पास अफीम भी नहीं थी। हाथ पाव टूटने लगे इसलिये वे अफीमची एक झाड के नीचे विश्राति लेने जा बैठे। अफीम की डिब्बी निकाली तो डिब्बी भी खाली देखी। इसलिये मिया भाई बडे मुरझाए, हाय! अब क्या करना चाहिये। अनाज बिना तो चल जावे परन्तु अफीम के बिना तो काम नहीं चल सक्ता। अब तो पाव घसीटने का समय आगया, अहा! लोगों ने इस अफीम में क्या लाभ समझा होगा! शरीर की शक्ति का अफीम हास करती है, कीर्ति घटाती है, पैसे की खुवारी करती है। कारण कि अफीम खाये बाद माल भी खाने को चाहिये, अफीम के नाम से रोज डबल खर्च करना पडता है। फिर अफीमचियों का शरीर भी अत्यत कृश—दुबला होजाता है, वे अशोभनिक दिखते हैं। उनकी वानी का कोई विश्वास भी नहीं करता, उत्तम विद्वान मडली में अफीमचियों का मान भी कम रहता है, अफीमचियों में आलस्य का तो भण्डार ही भरा हुआ है, उनसे कोई काम एकदम नहीं हो सकता। इस तरह अफीम में अनेक दुर्गुण हैं। महापाप का उदय होता है तब ही यह पाप लगता है। यह जीव लेकर ही छूटती है। अफीम हर तरह से मनुष्य को खुवारी करती है। उनको धर्मध्यान या आत्म साधन तो भाग्य से ही हो सक्ता है। अच्छी बुरी दिन भर ऐसी बडी २ बातें करते रहते हैं, गप्पें छोडते रहते हैं, नींद से झोंके खाया करते हैं और चर्चाओं के बम गोले फेंकते दिन व्यतीत करते हैं। कदाचित् अफीम समय पर न मिले तो मानों उन पर पहाड टूट पडता है, पाव घसीटने का समय आता है। ऐसे अनेक दोषों के भण्डार रूप अफीम को कौन ग्रहण करता है? जो भला मनुष्य हो वह तो इसे छुए भी नहीं और जो इसे छुए वह भला मनुष्य कहा सकता नहीं। इसलिए अभ्युदय के अभिलाषी विवेकी पुरुष को हमेशा उसे नौ गज लम्बा नमस्कार—तिलाजली दे देनी चाहिए। अफीम के विषय में कवीश्वर दलपतराम कहते हैं कि —

❋ इन्द्रविजय छंद ❋

प्रश्न पूछ्यो निज प्रितमने, एक जामनिमां एक कामनीए;
अकल हीण बने के बने नहीं! जे मुख मांही अफीण लिए.
कथ कहे घटती नथी अकल, कारण हुं कहुं धार तुं हैये;
कोई प्रवीण अफीण पियेनहीं, अकलहीण अफीणज पीये.

अपने दृष्टान्त के नायक वह मियां साहब भी ऐसी बुरी हालत में आगये और डिब्बी में से भी जब अफीम न निकली तब तो दुःख का पार ही न रहा। विचारे मन में बड़े घबराये और दीनता वश आकाश की ओर दृष्टि लगा खुदा की बन्दगी करने लगे कि हे खुदा अल्ला ताला परवरदिगार! अब मैं मर जाऊंगा। आप कृपालु हो, अब मेरे पर कृपा करो! एक घोड़ा भेज दो जिसपर मैं बैठकर गांव में पहुंच जाऊं। नहीं तो मैं मर जाउंगा, डिब्बी में अफीम भी खतम होगई और पांवों में शक्ति नहीं रही, शरीर सब अशक्त होगया, इसलिए एक घोड़ा भेज दीजिये। इस तरह खूब प्रार्थना की परन्तु खुदा ने घोड़ा न भेजा। फिर निराश हो जल्दी गांव पहुंचने की आशा से धीरे २ चलना शुरू किया। सूर्यास्त का समय हो चुका था जिससे कहीं न ठहरते एकदम चले। रास्ते में भी बोलते जाते थे कि हे अल्ला! एक घोड़ा भेज दे।

इतने में ऐसा हुआ कि उसी रास्ते से थोड़ी ही दूर पर एक सगर्भा घोड़ी पर बैठा हुआ एक क्षत्री चला आरहा था। आप स्वयं हथियार लिये था, शरीर का चेहरा तेजस्वी और इज्जतदार दिखाई देता था। वह ऐसा मालूम होता था मानो किसी गांव का जागीरदार हो इसलिए वह निडर, वे धड़क गांव की ओर हाथ में माला लिये चला आ रहा था। शरीर पर वस्त्राभूषण भी अच्छे शोभनिक थे। वह बड़े वेग से चला जारहा था कि, इतने में रास्ते में ही घोड़ी प्रसूति हो गई जिससे वह झट नीचे उतरा और घोड़ी को एक झाड़ के नीचे लेगया, वहां उसे प्रसव हुआ—बछेरा जन्मा उसने सोचा कि यह बछेरा चल नहीं सकेगा इसलिये कोई मनुष्य जाता हो तो उसके सिर पर उठवाकर गांव में चला जाऊं, नहीं तो रात्रि होजायगी और देरी होगी। ऐसा सोच कर वह घोड़ी को वहीं बांधकर किसी राहगीर को ढूंढने चला, इतने में उसे मियां साहब नजर आये,

वह जल्द ही उन मियां के पास गये और बोले कि मियां! किधर जाते हो? चलो हमारे साथ कुछ काम है, मिया साहब को ऐसा कह वह घोडी के पास लेगया और कहा कि इस बछेरे को उठाओ। मिया तो यह सुनकर रोने लग गए और दीनता से बोले कि साहब! मैं वृद्ध हूं मेरे शरीर में ताकत नहीं है और मुझे अफीम का व्यसन है वह भी आज नहीं मिली है, तब मैं किस तरह उठा सकूंगा? आप कृपा कर मुझ को छोड दो। उसने मिया साहब की दीनता पर कुछ गौर न किया और एकदम तीक्ष्ण धार वाला भाला दिखाया और लाल नेत्र कर बोला कि उठाता है या नहीं? नहीं तो मैं मारता हूं। यह भाला देखा है? उठाओ जल्दी! नहीं तो यहीं मर जायगा। इस तरह उसने मियां साहब को खूब डाट डपट दिखाई; मिया साहब भय के कारण जल्दी ही बछेरे को उठा कर चलने लगे। रास्ते चलते हुए खुदा को गाली देने लगे कि —साले अल्ला, तेरे घर में भी अन्याय भरा है! तुझ से हमने बैठने के लिये घोडा मागा था, तूने हमें उठाने को दिया। हे खुदा! अब तुझे क्या कहूं? तोबाः तुझे! यों खुदा को बहुत गाली देते हुए वे मिया साहब उसके घर पर बछेरा रख अपने गांव आये।

इस बात का सार यह है कि, मनुष्य जन्म कुछ लाभ लेने के लिये आत्मा के उद्धार करने के लिये कर्म के भार से हलके होने के लिये मिला है, तो भी कितने ही विषयी मनुष्य कुड कपट कर लक्ष्मी, पुत्र, कलत्र, मित्र, आदि में आसक्त हो, इस दुर्लभ मानव जीवन को हार जाते हैं और अनेक क्रूर कर्म भार से लद कर अनंत जन्म मरण करते हुए भवसागर में भटकते फिरते हैं। कहा है कि —

दोहा—करवा कूड़ प्रपंचने, फोकट फट-फट पाप;
जन जोवन ने धन धर, जाशे थशे विलाप.
विषम कंटक विश्व छे, सगां स्वार्थी सर्व;
चंचल चपला चपल छे, शाने करवो गर्व.
उत्तम नरभव पामीयो, वली आ आरज खेत;
मानव भव छे दोहिलो, चेति शके तो चेत.

इसलिये हे विवेकी सज्जनो! ऐसे अमूल्य सुंदर अवसर को पाकर कुछ भी आत्महित करोगे तभी यह मनुष्यजन्म सार्थक हो सकेगा और जो न चेतोगे तो परभव में भी पूर्ण दुःखी और हैरान होना पड़ेगा।



रमा रामा ऽऽ रामा हृदयमभिरामा प्रतिदिवं।
दृढीभूता यावन्मनसिकिल तावत् क्षितिपते! ॥
कुतस्तस्याऽवश्यं सकलसुखकांक्षा सुरतरु।
स्त्रिधा तापं पाप दहन इति धर्मोऽमित गुणः॥ १७॥



अर्थ—हे महाराजा! जब तक स्त्री, लक्ष्मी और आराम अर्थात् मौज शौक आनन्द से चलना फिरना इन तीन पदार्थों में हृदय अत्यन्त प्रीति से घुसा हुआ है तब तक उससे त्रिभुवन में समस्त सुख की अभिलाषायें पूर्ण करने में कल्प वृक्ष समान तथा तीनों प्रकार के संतापों और समस्त पापों का नाश करने वाला तथा अनेक गुण वाला पवित्र धर्म किस तरह हो सक्ता है? वह कभी धर्म लाभ नहीं लेसका। उसका आत्म जीवन कभी उच्च नहीं बन सक्ता॥ १७॥

भावार्थ.—हे क्षितिपति महाराज! जबतक इस लोक में हृदय को अत्यंत वल्लभ रमा-लक्ष्मी, रामा-स्त्रियां और आराम-बाग बगीचे इत्यादि में फिरने फिरने का शौक, इन तीन विषयों में ही जिसका चित्त अत्यन्त लीन होगया है। जो इन पर अत्यन्त आसक्त होरहा है, वह तब तक धर्म का लाभ नहीं ले सक्ता। धर्म कैसा है? संसार में समस्त सुखों को सम्प्राप्त करने की जो इच्छायें हैं उन्हें पूर्ण करने में, वह कल्प वृक्ष के समान, जन्म, जरा और मृत्यु। आधि, व्याधि और उपाधि रूपी तीन संताप रूप महा पापों का दहन करने वाला—जला बला कर भस्म करने वाला तथा अमित गुण वाला है। ऐसा पवित्र धर्म मनुष्य को कभी मिलना ही दुश्वार है और इसके बिना प्राप्त हुए कभी आत्म कल्याण नहीं होसक्ता।

यह जरूरी बात है कि एक समय में दो क्रियाएँ नहीं होसकतीं, जहां रात हो वहां दिन नहीं और जहां कर्म हो वहां धर्म नहीं । इस जीव का अनादि स्वभाव है कि इसे कर्म करने में विशेष प्रीति मालूम होती है, सूर्योदय से सूर्यास्त तक यह जीव कर्म करने का ही हमेशा विचार किया करता है।

शिखरिणी-घणी पामु लक्ष्मी पछी हुं परणु सुंदर वधु,
रचावु प्रासादो विविध वरणे शोभीत वधु;
करूं तेमां शोभा जनचकितकारी सुकृतिमां,
विचारोमां आव्युं मरणज जुओ मोहमहिमा!

हर रोज शेखचिल्ली ज्यों विचार किया ही करता है, विचारा स्त्री के व्याहने के लिये तथा व्याहे पश्चात् उसकी आशाएं पूर्ण करने के लिये हजारों दुःख सहता है, परदेश जाता है, पूरा खाना पीना भी नहीं खाता, रोजगार से तनिक भी अवकाश नहीं पाता, अनेक परिश्रम उठा कर सदा संताप में पड़ा रहता है और महापाप उपार्जन करता है। सचमुच मोह मदिरा पी बेभान ही बन जाता है, परन्तु तनिक भी आंख उठाकर नहीं देखता। कहा है कि —

आदित्यस्यगतागतैर हरहः सक्षीयते जीवितं ।
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ॥
दृष्ट्वाजन्म जरा विपत्ति मरणं त्रासश्च नोत्पद्यते ।
पीत्वा मोहमयी प्रमाद मदिरा मुन्मुत्त भूत जगत् ॥१॥

अर्थात्—सूर्य के गमनागमन से दिन २ आयु क्षीण हो जाती है, बडेर व्यापारोंके कारण समय जाते नहीं मालूम होता, जन्म, जरा और मृत्युकी विपत्ति से अभी तक दुःख उत्पन्न नहीं होता । सचमुच मोहमयी प्रमाद रूपी मदिरा पीकर सारा संसार उन्मत्त हो रहा है! कितनी कठिनता से यह मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है ? गर्भ में कैसे २ असह्य दुःख सहे हैं ? उसका भी भान भूल गए और लक्ष्मी की लालच से देव गुरु और धर्म को त्याग दिया है और कर्म करते हुए रात दिन चक्कर काटते हैं। कभी साधु सन्त पुरुष का समागम नहीं करते और, कदाचित् साधु सन्त रास्ते में मिल जाते हैं और धर्मध्यान करने की कहते हैं तो निडर, निर्लज्ज हो, बेधड़क बोलते हैं कि महाराज ! अभी तो बहुत

काम है, पानी पीने को भी फुरसत नहीं है, अरे महाराज ! अभी तो मुझे मरने जितना भी अवकाश नहीं मिलता, मौसम बराबर चल रहा है। आप भी महाराज ठीक मौसम में जरूरी काम के समय आये, परन्तु पीछे आते होत तो आपका मन प्रसन्न रखता, अभी तो कुछ नहीं हो सकता। एक पल की भी फुरसत नहीं है।

काम घणां हमणां छे, प्रभुने भजशुं काल निरांते;
एवुं विचारे धारे नहिं पण, शुं थाय कालनी राते?

यों समस्त जिंदगी महा पाप करने में व्यतीत करता है। दुर्गति का डर भूल जाता है, अपने सिर पर काल घूम रहा है, यह अचानक आकर पकड़ ले जायगा, तब कोई न छुड़ा सकेगा, फुरसत पाकर जाना पड़ेगा, ऐसा सब जानते हैं, तो भी लालच ऐसी चिकनी वस्तु है कि, उसमें पांव देते ही चट चिपक जाते हैं। आहाहा ! लक्ष्मी के लालच में फसकर मनुष्य क्या काम नहीं करते हैं ! अपने निकट सम्बन्धियों तक को मरवा डालते हैं, धर्म और कर्तव्य के भान भूल जाते हैं और अनेक छल प्रपंच करते हैं।

मोहाधीन जीव को ज्ञानबोध फटका-राग गरबी को.

तारा मनमां जाणे छे मरवुं नथीरे, एवो निश्चय कर्यो निरधार; तेमां भूली गयो भगवानने रे ॥ टेक ॥
धन नारी अने घणा दीकरारे, खेतीवाड़ी घोडीने घरबार.
मेडी मंदिर जरुखाने मालियारे, सुखदायक सोनेरी सेज.
गादी तकिया ने गालमसुरीयारे, अति आड़ करे छे एज.
नीचुं कांधकरीने नमतो नथीरे, एवुं साधु संघाते अभिमान.
पापअनेक जन्मना आवी मल्यारे, तारी मतिमलीन थईमंद
देवानंदना वहालाने विसरीगयोरे, तारेगले पडयो जन्मफंद

काल को अचूक चोट-राग भैरवी.

नहिं छोडे काल कसाई, क्यां जाशे तुं संताई; ॥टेक॥
राजा रंक और देव दानवने, खूब गयो छे खाई.
ए निर्दयनी आगल अंते, चाले शुं चतुराई ॥ नहि०
उधुं जोई रह्यो शुं अन्धा, घरमां मूढ घलाई;
में में करतां मानव मेंढा, पीड जशे पकडाई ॥ नहि०
बचवुं होय हवे जो बोधा, भारे राख भलाई;
केशव प्रभुनुं शरण ग्रहीने, तो नीर भर्या पद भाई ॥ नहि०

एक समय भोज राजाके चचे मुंज राजा राज्य लोभ में आकर बाल राजा भोज कुमार को मरवा देने को तैयार हुए। ज्योतिषी से एक समय उन्हों ने सुना था कि —

पञ्चाशत् पंच वर्षाणि । सप्त मास दिन त्रयम् ।
भोक्तव्य भोज राजेन । सगौड दक्षिणा पथम् ॥

अर्थात् —पचपन वर्ष सात मास और तीन दिन तक भोज राजा गौड देश का राज्य भोगेंगे। इस वचन से मुंज भोज राजा को मारने को तैयार हुए। कारण कि भोज के विना मरे मेरा वश निष्कंटक राज्य नहीं कर सकता, ऐसा सोच कर चांडाला को सौंप उन्हें मार डालने का हुक्म दिया, आज्ञानुसार चांडाल एकान्त निर्जन वन में ले जाकर खड्ग निकाल मारने लगे और अपने राजा का हुक्म भोज कुमार को बताया और अन्तिम समय में इष्टदेव को स्मरण कर लेने की याद दिलाई। भोज कुमार सब कारण जान गए। परन्तु भावी को प्रबल समझ हिम्मत धर चांडालों से बोले कि "तुम अपना कर्तव्य बेशक पूर्ण करो। परन्तु मैं एक श्लोक लिख देता हूं, वह मेरा सन्देश मेरे चचे मुंज राजा को पहुंचा देना। ऐसा कह एक श्लोक लिखा।

मांधाता समहीपति कृतयुगालकार भुतोगत ।
सेतुर्येन महोदधौ विरचित क्वासौंदशायान्तक ॥
अन्येचापि युधिष्ठिर प्रमृतयो भुवि प्रभुतानृप ।
नैकेनापि समगता वसुमती मुंज ! त्वयायास्यति ॥ २ ॥

अर्थात् —मांधाता महीपति बड़ा श्रेष्ठ राजा हो गया, जो कृतयुग में पृथ्वी पर एक उत्तम अलंकार के समान था, वह भी पृथ्वी को इसी लोक में छोड़ चला गया। जिन्होंने महासागर के पानी पर पुल बांधा और त्रिखंडाधिपति रावण को मारा, वे रामचन्द्र जी भी अभी कहा है? वे भी इस लोक में नहीं हैं। और भी युधिष्ठिर आदि कई राजा इस पृथ्वी पर हो गए परन्तु किस के भी साथ यह वसुंधरा-पृथ्वी नहीं गई, परन्तु हे चाचा मुंज ! तुम्हारे साथ तो यह पृथ्वी जरूर ही जावेगी ! आहाहा !! कितना सरस उपदेश ! कैसा अमोघ ज्ञान फटका? लक्ष्मी के मद में अंध बने हुए पुरुषों के लिए कैसा चाबुक? इस श्लोक के सुनते ही चांडाल के मन में दया आ गई और उस समय मारना बन्द रख राजा को श्लोक सुनाये बाद जैसा योग्य जचेगा वैसा करुंगा ऐसा उसने निश्चय किया, वह भोज कुमार को कहीं छुपा कर कचहरी में आया और मुंज राजा को वह श्लोक दिया। वह पढ़कर मुंज बहुत शरमाया, उसने झट भोज का जीवित-दान दिलाने हुक्म फरमाया, अपनी भूल के लिये पूर्ण पश्चात्ताप करने लगा, भोज का लिखा हुआ श्लोक रोम २ में व्याप्त हो गया, वह भोज के बालवय में ही इस किये हुए साहस और कसोटी के समय धारी हुई निडरता की खूब प्रशंसा करने लगा। तुरन्त ही वन में से भोज कुमार को बुला कर उसने अपने अपराध की क्षमा मांगी और भोज को राजपाट सौंपकर आप चलता बना।

तात्पर्य यह है कि —यह जीव लोभ के वश हो क्या २ काले कर्म नहीं करता है? लोभ जो न करा सके वही थोड़ा है, लोभ राक्षस नीति को भुलाता है, दया को देश से निकाल देता है, सत्य को भगाता है, माया कपट को रचता है और निकट से निकट सम्बन्धियों के साथ क्लेश भी करा देता है। जिसने लोभ जीत लिया है उसने सब कुछ जीत लिया है जिसकी आशा-माया नष्ट हो गई है। वह सब संसार से जीत गया परन्तु इसे जीतना महा दुष्कर है। अच्छे २ पंडितों ज्ञानियों को भी यह भ्रमा देती है और चतुर की चतुराई, नष्ट कर देती है, उत्तम मनुष्य जन्म तो पाया। परन्तु स्त्री, धन इत्यादि में जीव ललचाकर फेरा नर्क

गामी कर्मों का सचय किया करता है और परमाधामी के मेहमान बनने की इच्छाए किया करता है। कोई जिज्ञासु मनुष्य ज्ञानी को पूछते हैं कि —यमराज के ग्राहक कौन २ होते हैं? अर्थात नर्क में कौन २ जाते हैं?

नर्क गामी कौन है? राग गीति.

कूड कपट करनारा, परदारामां सदाय रमनारा;
परधनना हरनारा, ते निश्चे नर नरके पड़नारा. १
हिंसाना करनारा, झूंठ वचनथी जरा न डरनारा;
पापे पिंड भरनारा, ते निश्चे नर नरके पडनारा. २
अधर्मना धरनारा, कन्या विक्रयथी धन रलनारा;
अघट घाट घड़नारा, ते निश्चे नर नरके पड़नारा. ३
हरामनुं खानारा, दुर्जन मंडलमां जइ मलनारा;
परसुखमां वलनारा, ते निश्चे नर नरके पडनारा. ४
धरमीने हसनारा, पुण्यपंथने रे परिहरनारा,
विषयमां वसनारा, ते निश्चे नर नरके पडनारा. ५
पाप थकी डरनारा, सत संगत करी दुर्गुण हरनारा,
परोपकार करनारा, विनय मुनि ते सद्गति वरनारा. ६

मतलब यह कि ऐसे २ क्रूर कार्य करने से मनुष्य नर्कमें जाते हैं। तो इस जीवात्मा ने भी मनुष्य जन्म पाकर ऐसे ही दुष्कर्म किये हैं। इस अमूल्य नरदेह रूपी रत्न को कंकर के समान समझ कर फेंक दिया है। इसलिये तब तक स्त्री और लक्ष्मी आदि सांसारिक पदार्थों में मन आसक्त है जब तक उसकी सब

अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले धर्म पर कभी रुचि उत्पन्न नहीं हो सकती। वह तो बिचारा तेली के बैल ज्यों दिन रात उसी में पच २ कर मरता रहता है, परन्तु आत्महित के लिये तनिक भी चिन्ता नहीं करता, स्त्री और लक्ष्मी में अत्यंत आसक्त होने से जीव विषयों में फस जाता है। वह जिनरक्षित और जिनपालित नामक दो वणिक पुत्रों की तरह महा विडम्बना पाता है। इस पर जिनरक्षित और जिनपालित का दृष्टान्त देते हैं।

साहसिक जिनरक्षित और जिनपालित का दृष्टांत.

चंपापुरी नामक नगरी में माकंदि सेठ के जिनरक्षित और जिनपालित दो पुत्र अत्यंत साहसी थे। वे जैनधर्म के दृढ़ श्रद्धालु और व्यवहार में शुद्ध थे। तो भी व्यौपारी वर्ग को पीढियों से हक में जो लोभ नाम का कुबेर के भण्डार से भी बड़ा खजाना मिलता है, वह खजाना इनको भी वारसे में मिला था। लड़ना जैसे क्षत्रिय का जातिधर्म है, वैसे ही पैसे प्राप्त करना वणियों का जातिधर्म है। क्षत्रियों के समान शूरता दिखाकर किसी ने लड़ाई जीती हो यह आज तक नहीं सुना। उसी तरह वनियों के समान, धैर्यता, सहन शीलता, दीर्घ दृष्टि, अगम्य बुद्धि और समय सूचकता व्यापार में कभी किसी ने दिखाई हो ऐसा नहीं सुना। वर्तमान समय के अनुसार प्राचीन समय में बिजली के समान वेग से चलने वाली और सब सुविधा वाली महल के समान अग्निबोट न थी, परन्तु पवन के आधार पर चलने वाले जहाज थे, जिनका भरोसा भी न रहता था कि ये कब किस स्थान पर जा पहुँचेंगे? ऐसे जहाजों में ग्यारह वक्त मुसाफिरी कर साहसिक और निडर, धन जिनरक्षित और जिनपालित ने अपार द्रव्य प्राप्त किया था परन्तु तब भी संतोष न माना। "जगत में धन से पूरा और अक्कल का अधूरा कौन है? चतुर शिरोमणि होने पर भी और चतुराई की डींगे भरने पर भी जो धन से संतोष नहीं लाते उन्हें लोभ लूट लेता है।" इस न्याय और कहावत से वे अनजान होंगे तभी दोनों भाई विपत्ति सागर में फस दुखी हुए होंगे।

धन के लालची वे दोनों भाई धन कमाने की उत्सुकता से अपने २ जहाज ले, सागर में चले। कितने ही दिनों बाद समुद्र में बड़ा भारी तुफान हुआ।

विकराल लहरें अपनी राक्षसी बाहें फैलाकर सारे जहाज को गटकाने की इच्छा कर रही थी। जहाज क्षण भर में पाताल की गुफा से टकराते और क्षण भर में आकाश की तरफ जाते थे। अन्त में एक चट्टान द्वारा टकराने से दोनों भाइयों का जहाज टूट गया और उसमें पानी आने लगा। उस समय जिनरक्षित के सिवाय जहाज के सब मनुष्य आधा पागल बन गये, इस साहस के कारण वे अपने को गाली देने लगे, कुपित दुर्दैव को शाप देने लगे और चिल्लाने लगे। जिनपालित ने कठिन सौगन्ध लिये कि जो मैं इस संकट से बच जाऊं तो अब फिर कभी मुसाफिरी करने का नाम भी न लू। परन्तु जिनरक्षित शांत भाव से सब यह तूफान देखता रहा। वह नहीं डरा, नहीं रोया और सौगंधादि भी नहीं लिये, किसी देव की मानता भी न की। पुद्गल का स्वभाव और पूर्व कर्म का अनिवार्य फल उसके ध्यान में था। "**करना तो फिर क्यों डरना।**" यह सूत्र उसे बराबर याद था और वह गम्भीर साहसी तथा दृढ़ मनवाला था।

अन्त में जहाज टूट ही गया, सिर्फ दोनों भाइयोंके सिवाय सब डूब गए, भाग्योदय से दोनों भाई एक पटिये के सहारे रत्नद्वीप में जा पहुचे। जिनका आयुष्य बलवान हो तो चाहे जिस प्रयत्न से बच सकते हैं।

उस द्वीप में रयनादेवी नामक एक विषयरागिनी और महाघातकी देवी रहती थी। वह देवी अपनी इच्छानुसार इन दोनों भाइयों के पास आई और पहिले डराकर और पश्चात् भोग विलास में ललचा कर उन्हें रहने के लिये एक भव्य महल, सुन्दर उपवन दिया और सुख की सब सामग्री सौंप दी और उनके साथ अपने मन इच्छित भोग विलास भोगने लगी। कितने ही दिन बीतने पश्चात् देवी को एक समय इन्द्र महाराज का बुलावा आया इसलिये वहा जाना पड़ा। जाते समय वह अपने दोनों दिलजान दोस्तों से कहने लगी कि —इस महल के तीनों दिशा के तीनों बगीचों में घूम घूमकर नये२ फल खाकर आनन्द में रहना। परन्तु चौथी दक्षिण दिशा के बाग में एक महा भयंकर सर्प रहता है वह उसके पास जाने वालों को चट डंक देता है। इसलिए भूल कर भी उस दिशा में मत जाना, जाओगे तो तुमको पूर्ण दुःख होगा" ऐसा कह कर वह चली गई।

जिस पदार्थ या वार्ता पर पडदा डाला जाता है, वह पदार्थ या वार्ता अधिक जिज्ञासा उत्पन्न करती है। देवी के जाने पर उन दोनों भाइयों ने विचार

किया कि —दक्षिण दिशा में जाने की मनाई करने का कोई न कोई अवश्य खास कारण होगा। वे अपनी जिज्ञासा पूर्ण करने के लिए दक्षिण दिशा में ही चले। रास्ते में उन्हें हाड पिंजर भिन्न २ रूप में दृष्टिगत हुए, शूली पर लटके हुए नाजुक युवा के आक्रन्द मय शब्द उन्हों ने अपने कान से सुने और नाक को बेभान बना दे ऐसी भयंकर दुर्गन्ध उन्हें आती हुई मालूम दी। एक शूली पर लटका हुआ युवा इन दोनों भाइयों को देखकर बोला कि —"हे काम नर्साव युवाओ ! तुम क्या सुख समझ कर इधर उधर देखते फिरते हो ! रयनादेवी मोहनी के साथ स्वादिष्ट खानपान, मनहर गानतान तथा अमन चमन मिलने से तुम इसे सुख का घर समझ रहे हो। परन्तु इसी भूल के कारण मेरी जो स्थिति हुई है उस मुझ रंक के वचन सत्य समझिए कि जल्दी या देर से तुम्हारी भी यही गति होगी। क्या तुम को इस देवी ने प्रथम अपनी इच्छा के आधीन करने के लिए विकाल रूप से न छला था। वह विकाल रूप ही उसका असली रूप है जो सुन्दरता, कोमलता, नूतनता और नखरे तुमने पीछे से देखे वे तो बनावटी है। तुम्हारी युवावस्था बीती या तुम्हारी जवानी होते भी तुमसे सतोष न हुआ था वीर्य और जवानी दोनों होते भी किसी मनुष्य के इस दुष्टा के फंद में फस जाने से अन्त में तुम्हारी भी मेरे जैसी और तुम्हारे पास जो असख्य हाड पिंजर दृष्टिगत होते है वैसी दशा होगी।"

ये शब्द सुनते ही जिनपालित तो भयभीत हुआ, जिनरक्षित भी डरा तो सही, परन्तु उसकी बुद्धि सकट में गुम न होती थी इसलिए उसे स्मरण हुआ कि यहा अपना कोई रक्षक न था। यहा बिना देवी के हुक्म माने, उसका सहवास लिए अपना छुटकारा भी न था तो भी "विषय के फल बुरे हैं" ये शास्त्र के वचन सुने हुए होने पर भी अपन उसके मोह फास में अंधे हो बन गए और उससे छूटने का विचार भी अपने दिल में नहीं आया यह मूर्खता है।

जब वह अपनी आत्मनिंदा कर रहा था, इधर जिनपालित "अरेरे २" ऐसा उद्गार निकाल डर से पागल और अधिक पागल बनता जाता था और वही समय शूली वाले युवा के अंतिम श्वास का था। मरते-२ दो मनुष्यो की हिंसा बचाने के लिये "तुम, पूर्व बाग के शैलक नामक यक्ष की प्रार्थना करोगे तो अपने घर पहुच जाओगे।" ऐसा कह कर अपने प्राण छोड गया। यह बात सुन वे दोनों भाई अपने मन में अत्यन्त पश्चाताप करने लगे।

अपने हितेच्छु के शव को देखें और कदाचित् अपनी भी ऐसी ही स्थिति होगी ऐसा विचार करते दोनों भाई दिग्मूढ से खड़े रहे। कितनी देर बाद प्राकृतिक दृढ मन वाला और दुःख से दृढ बना हुआ जिनरक्षित अपने भाई को साथ ले पूर्व बाग में चला। वहां आकर आंखों से अश्रुधारा बहाते, यक्ष के पांव को अश्रुओं से स्नान कराते बिखरे हुए बालों को यक्ष के आगे की रज को उड़ाते, दोनों हाथ जोड़कर उनके सामने नम्रता से कहने लगे कि "हे त्राता! हमें बचाइये! दयालु देव! इस ठगारी भूमि से हम ठगे ही हुए हैं, इतना ही नहीं परन्तु आप की सहायता के बिना हमारे प्राण भी नहीं बचेंगे, इसलिये हम आप के शरण आये हैं, महा दुःखी हैं, भगने की राह से बिलकुल अजान हैं, चारों तरफ फैले हुए महासागर को तिरने में अशक्त हैं, हमारे शत्रु से लड़ने में कायर हैं, महादुःखी हैं, हमको फसाने वाली अभी दूर है, इतने में हमें बचाइये! बचाइये!! हम आप से विनम्र हो इतनी ही प्रार्थना करते हैं कि बचाइये!

जो निराधार को आधार देने का ही धन्धा ले इस द्वीपमें बैठे हैं। दुःखी को शांत्वना देना और डूबते हुए की रक्षा करना ही जिनका स्वाभाविक स्वभाव है। उन शैलक नामक यक्ष ने उन्हें आश्वासन दिया और कहा कि मैं तुमको अपनी पीठ पर चढ़ाकर समुद्र पार उतार तुम्हें तुम्हारे घर पहुंचा दूंगा, परन्तु याद रखना कि तुम्हारे मन को तनिक भी विचलित नहीं होने देना, नहीं तो मेरी पीठ पर से तुम अवश्य गिर पड़ोगे। अर्थात् मैं तुम्हें नीचे गिरा दूंगा।

शैलक नामक यक्ष उन्हें लेकर समुद्र के अगाध जलसे अधर उड़ने लगा, उस समय विशाल कागज के पन्ना समान पानी को समतोल देखकर विश्व की विशालता देखकर, एवम् सूर्य का अप्रतिबन्ध प्रकाश देखकर उन्हें नया २ ज्ञान होने लगा, वे अलौकिक आनंद और आश्चर्य में मग्न होने लगे। शैलक नामक यक्ष इतने सपाटे के साथ उड़ता चला जाता था कि, इन दोनों भाइयों को उससे चिपक रहना मुश्किल हो जाता था, परन्तु वे दृढ़ता से चिपके हुए चले जाते थे, यक्ष भी उन्हें गिरने न देने की बराबर फिकर रखता था। जब वे भूमध्य समुद्र में आये, तब वह दुष्ट यक्षिणी को समाचार मिलते ही चट उनके पीछे उड़ी और आद. उनके समीप आकर विकराल रूप बना डरा कर धमकाने लगी कि, तुम मुझे इस तरह ठग कर जा रहे हो, परन्तु अभी मैं तुमको मार

डालती हूँ। तुम्हारे टुकडे २ कर डालती हूँ अगर तुम्हें अपने प्राण प्यारे हों तो मेरे साथ पीछे चलो। परन्तु यक्षकी रक्षा से बचे हुए और उनके वचनों से दृढ हुए दोनों भाइयों में से एक भी न डिगा, किसी ने उसके सामने देखा तक नहीं।

परन्तु अपन बार २ देखते हैं कि जो दुधारी तलवार के वश नहीं होते, वे सिर्फ एक ही मद मुसकान एक ही मीठी नजर, नेत्र कटाक्ष या एक ही ललित वचन के वश हो जाते हैं और इसी कारण से कामदेव का बाण कुसुम कल्पित किया है, इसीलिये काम को पुष्पधन्वा कहते हैं।

ये दोनों भाई उस दुष्टा की धमकी से तनिक भी न डरे, तब वह सुन्दर सोलह शृंगारों से सुसज्जित हो और नखरेके साथ हावभाव करती हुई सुन्दरी का रूप धना सजल नेत्र से दीन आर्तनाद करने लगी और बोली कि, मुझ अबला को इस जंगल में अकेली त्यागकर क्या प्राणाधार तुम चले ही जाओगे! यहा मुझ रक का कौन रक्षक है? इतने दिन की कुछ तो प्रीति याद करो? फिर फूलों के हार और सुगन्धादि छिडककर बोली कि "हे प्राणेश! पीछे पधारिये मैं आपके पाव पूजूगी, आप के वियोग से मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगेगा।"

इस अंतिम विनय से जिनपालित का मन तनिक विचलित हुआ उसने पीछे देखना चाहा और एक दृष्टि मिलते ही उसका मन डिगमगाया, इतने ही में तो उस यक्ष ने उसे अपनी पीठ से नीचे डाल दिया। उसे निराधार देख रयनादेवी ने राक्षसी रूप धारण किया और उस गरीब पर घात करने लगी, उस पर शूली भोंकने लगी और अधर उठाकर फैंक उसे शूली पर सम्हालने लगी राक्षसी ने उसके टुकडे २ कर दशों दिशाओं में फैंक दिया। जिनपालित का अन्त हो गया।

इतने में तो जिनरक्षित चम्पापुरी नामक नगरी पहुच गया। वह वहाँ जाकर जैन धर्म की आज्ञाएं दृढ़ता से विधिवत् पालने लगा और अन्त में श्री वीर भगवान का पवित्र उपदेश सुनकर वैरागी बन दीक्षित हो शुद्ध चरित्र पाल, मर कर प्रथम देवलोक में देवपने उत्पन्न हुआ। तथा महा विदेह नामक क्षेत्र में मनुष्य भव पाकर उत्कृष्ट किया कर मोक्ष पावेगा।

इस बात में महासागर का मतलब भवों की परम्परा से है। रत्नद्वीप यह मनुष्य जन्म है, रयनादेवी यह विषय वाच्छना है, कि जो प्रथम ललचाने

के लिये सुन्दर रूप धारण करती हैं और पीछे से शूली पर चढाते समय (महादु खी करने के लिये) विकाल रूप धारण करती हे। उन दोनों भाइयों ने असख्य हाड पिंजर देखे ये विषय वान्छना से अत्यन्त ख्वार हुए मनुष्यों की वडी सख्या सुचाते हे। शूली पर से मरते समय उस युवा ने उपदेश दिया, ऐसे दृश्य भाग्यशाली पुरुषों के सम्बन्ध में भी कभी २ इस ससार में दृष्टिगत हो जाते हे। कोई २ मनुष्य विषयाध हो ख्वार होते हैं परन्तु स्वय विद्वान या चतुर होने से फिर पछताते हैं, पश्चात्ताप करते भी वे उन विषयों में इतने अधे हो जाते हैं कि स्वय नहीं छोड सकते। वे अपने किये हुए कर्मों के अनुभव से दूसरों को शिक्षा दे गहन खड्डे में गिरने से उन्हें बचा लेते हे और उनका जो लोग उपदेश प्राप्त करते हैं वे सचमुच वडे भाग्यशाली हैं उनका उपदेश अत्यन्त अनुभव प्राप्त किया हुआ होता है।

जिनपालित डरपोक और कच्चे मन वाला था, और जिनरक्षित सुदृढ स्थिर मन वाला तथा विचारशील था। ससार में आ पडने से वे उस जमीन की अधिष्ठात्री देवी, स्त्री से विलकुल स्वतन्त्र बनने की सामर्थ्य न रखते थे, तो भी मनुष्य को उसके मोहफास में मग्न न बनकर समय आने पर मौका लगने पर उस सीमान्तर्गत प्रेम से—उस कच्ची कैद में से छूट निकल भागने का अवसर ढूढना उचित हे। जैसा कि उन्हें पीछे से विचार हुआ था।

शैलक नामक यक्ष को साधु जी की उपमा घटित होती है। उन्हें नम्रता से याचने से वे ससार समुद्र तैराने का भार चट अपने सिर ले लेते हे। जैसे जहाज के मध्य भाग के भव्य भवन में बैठे हुए सुकुमार नर को जहाज का कप्तान कहता है कि तुम जहाज के जगला से आगे मत जाना, कारण वहा जाने से तुम्हें चक्कर आवेंगे और उनके सामने तुम ठहर न सकोगे, इतना वडा जहाज होने पर भी तुम मर जाओगे। इसी तरह साधु जी भी उस याचना करने वाले को चिताते हैं कि—"मैं जो उपदेश करता हू, जो आज्ञा देता हू, उसमें स्थिर मन रखना, तनिक भी मन मत डुलाना, नहीं तो चक्कर आजायेंगे (विषयों की उत्तेजना से चित्त चचल हो जायगा) और उन चक्कर के सामने ठहरने की तुममें शक्ति सामर्थ्य न होने से मुझ सा त्राता—तैराने वाला होने पर भी तुम अगाध भव जल में डूबकर मर जाओगे रयनादेवी (विषय फास) द्वारा हने जाओगे, काटे जाओगे, छेदे जाओगे और महा दु खी बनोगे। इसलिये रयना-देवी के आधीन मत होना।"

मनुष्य विषयों से विरक्त होना चाहते हैं, परन्तु विषय अधिक २ युक्तियों से, अधिक २ मोध से, उसे अपनी ओर खींच लेते हैं, ललचा लेते हैं और फसा लेते हैं। रयनादेवी ने अपने आशिकों को पहिले से भी अधिक हावभाव दिखाकर लालच में फंसाने की कोशिश की, इसी तरह विषयों से छुटकारा चाहने वाले मनुष्य को भी ऐसे कई मौके आते हैं। रयनादेवी के समान ही शब्द और हावभाव ललचाते हैं और अन्त में एक रजमात्र—किंचित् मात्र भी चलाय मान होते ही वह मनुष्य आसन भ्रष्ट हो पर्वत के शृंग पर से गिरकर गुफा के गर्भ में—संसार के गहन पानि में गिर पड़ता है और उसके टुकड़े२ होजाते हैं।

व्यौपार और धर्म में बिना हिम्मत वाला मनुष्य काम नहीं दे सक्ता। बिना हिम्मत वाला निर्माल्य मनुष्य एक घास के तिनके की तरह क्षण २ में पवन के दिशा बदलने के साथ ही क्षण भर में इधर और क्षण भर में उधर उड़ा करता है, टकरें खाता है और पैसा तथा धर्म कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। मनुष्यों को चाहिये कि वे मगज को सीसा के समान भारी और अंगों को रुई ज्यों हलके बनाने की कोशिश करें जिससे मगज अस्थिर बन, इधर उधर न उड़ सके और चपल अंग दृढ़ मस्तिष्क की आज्ञा पाते ही तत्काल सरलता से गति करें और इच्छित साध्य सिद्ध कर सकें।

दोहा-विषय वांछना विश्वमां, अतिशय दुःख देनार;
अडगपणे अलगो रहे, ते पामे भव पार.

कहने का आशय यह है कि-मनुष्यों के लिये विषय वासना यह भूल भुलैया जैसी काली घोर अंधेरी रात है, जिसमें अच्छे २ भलो ने चक्कर में पड़ कर गोते खाये हैं और चतुर मनुष्यों के चित्त भी अतिक्रूरा राह लग गए हैं। सांसारिक पदार्थों पर अत्यंत आसक्तता होगी वहां तक एकाग्र भाव से धर्म-ध्यान या प्रभु का आराधन न हो सकेगा। इसलिये विवेकी पुरुषों को तो अत्यंत आसक्तता त्याग धर्म आराधन करना ही श्रेयस्कर है।

क्वचिच्चितं तोषं क्वचिदपि च रोषं गमयति।
क्वचिद् दोषं कोपं क्वचिदपि च मोषं कलयति॥

क्वचित् कृछ्रायत्तं क्वचिदपि च सौख्यंह्यनुभवन् ।
कदाऽवश्यं वश्यं व्रजति च मुनि नामपि मनः ॥१८॥



अर्थ —कभी मनुष्य का मन संतोष धारण करता है तो कभी रोषाकुल बनता है, कभी महा दोष मय बन जाता है, तो कभी लक्ष्मी के भंडार भरने का विचार करता है, तो कभी महा चौर्य कर्म के वश होता है, तो कभी महा चिंता ग्रस्त हो दुःखका अनुभव करता है, तो कभी सुख का अनुभव करता है। जो मन सच्चे मुनीश्वरों के भी वश में महादुःख से होता है वह मन सचमुच इस संसार में मेरे वश कब हो सकता है ? ॥ १८ ॥

भावार्थ —मनकी अस्थिरता दिखाते हुए कहते हैं कि यह मन कभी तो तोषं—संतोष मान कर चलता है, सद्गुरु के समीप सद्बोध आदि के श्रवण से मन में संतोष आजाता है, तो कभी रोषं—क्रोधाधीन होजाता है। कभी दोषं—नाना प्रकार के दोष मन में उत्पन्न होजाते हैं, तो कभी कोषं-भंडार भरने की इच्छा करने लग जाता है। लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये अनेक तरंग मालाएँ गूथने लगता है। कभी मोषं-चौर्यादिक कर्म में, किसी से विश्वासघात करने पर उतारू होजाता है। कभी नाना प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक दुःखों से महा अफसोस और दुःख सागर में निमज्जन करने लग जाता है। तो कभी सुख का अनुभव करता हुआ आनंद के मीठे झरने में गोते लगाने लगता है। बड़े २ मुनिराज भी महा कष्ट से जिसे अपने वश में लाते हैं, वह चंचल मन मेरे कब वश होगा ? कारण कि अच्छे या बुरे, उच्च या नीच कर्म करना मन के ही आधीन है। कहा है कि "मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः" अर्थात्—सुख, दुःख, बंध और मोक्ष का मूल कारण मन ही है। मन से अच्छे और बुरे कर्म बंधते हैं, जब मन शुभ विचारों में प्रवर्तता है, जब अच्छे पुण्य उपार्जन करने योग्य शुभ कार्यों में मन प्रवर्तता है तब भवसागर का अंत समीप आता है। केशवदास जी अपनी रुनिका में फरमाते हैं कि .—

मनहर छंदः-शरीर सुंदर रथ, इंद्रियों छे अश्वरूप,
मन सारथीथी खूब २ दोडयो जाय छे;
मन जेम लई जाय तेम तेना घोड़ा जाय,
महाराज जीव मांही बैठा मलकाय छे;
काम काज करवाना मनने आधीन बधा,
मन तारनार ने बूडाडनार थाय छे;
केशव कहुं शुं एक मन वश राखवाथी,
भावे भवसागरनो पार उतराय छे.;

अपने शास्त्र में, **श्री महावीर प्रभु के** समय में प्रख्यात हुए मुनि प्रसन्नचन्द्र जी नामक महात्मा जिन्होंने कि कायोत्सर्ग-ध्यान दशा में स्थित रह कर मन के शुभाशुभ विचारों से प्रथम नरक से लगातार सातवीं नरक तक के अशुभ कर्म उपार्जन किये थे तथा बाद में पहिले देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक के शुभ कर्मों को भी सञ्चय किया था और अन्त में उन्हें उसी मन द्वारा दुष्प्राप्य कैवल्य कमला का भी अमूल्य लाभ प्राप्त होगया था और वे थोड़े ही समय में अजरामरत्व को प्राप्त होगए थे। इत्यादि अनेक दृष्टान्त सिद्धान्त सागर में प्रस्तुत हैं। जो, अपने जैसे महा मूर्ख मोहमुग्ध मनुष्यों को समझाने की अपूर्व सामर्थ्य रखते हैं। इसलिये मोक्षार्थी महापुरुषों का हमेशा अपना मन शुभ विचारों में ही प्रवर्तना चाहिए कि जिस से यह मनुष्य जन्म सार्थक होसके।

जब मन अशुभ विचारों में पैठता है, तब उसे तनिक भी डर नहीं रहता, मन की गति विचित्र है। बड़े २ शक्ति शाली महात्मा भी इस से हार गये हैं। जैसे जहाज का सर्व आधार हवा पानी पर निर्भर है, उसी तरह मनुष्य भव के हारजीत का सर्व आधार मन के परिणामों पर निर्भर है। मन के परिणामों को लेश्या के नाम से भी पहिचानते हैं, वे लेश्या छ प्रकार की हैं। उनके नाम, कृष्ण, नील, कापूत, तेज, पद्म और शुक्ल इन छहों लेश्या के लक्षण भिन्न २ हैं।

इनमें से प्रथम कही हुई तीन लेश्या अप्रसस्य अर्थात् बुरी और बाकी कही हुई तीन लेश्या प्रशस्य अर्थात् अच्छी हं। जब आत्मा पहिली त्रिवेणी में प्रवेश करता है, तब अपना और पराया सब का बुरा चाहता है और जब दूसरी त्रिवेणी में प्रवेश करता है तब मन में शुभ विचार उत्पन्न होते हं। ऐसे लेश्या के असंख्य परिणाम हैं। जिनके लिये **श्री वीर प्रभु ने** श्री उत्तराध्ययन जी सूत्र के ३४ वें अध्याय में फरमाया है कि —

तिविहो नव विहोवा। सत्ताविस विहो एकासीओवा।
दुसओ तेया लोवा। लेशाए होई परिणामम्॥ १॥

अर्थात् — जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट इन तीनों को तीन गुने करने से जो अंक आता है उसे भी तीन गुना करना फिर उस आंक को प्रत्येक समय तीन २ गुने करनेसे इन लेश्याके अनंत परिणाम होजाते हैं। इनके परिणामों का पार ही नहीं आता। जितने २ शुभाशुभ कर्मों के कण इकट्ठे होते हैं, वे मन के परिणामों को बिलकुल दृढ़ बना देते हैं, फिर वे भोगे बिना नहीं छूट सकते। ज्यों मैदान में किया हुआ धूल का ढेर तो पवन के झपाटे से उड जाता है, परन्तु उस में पानी डाल कर कूडा मिट्टी इकट्ठा कर ढेर लगा दें तो वह पवन से नहीं उड सकता। मन यह सरकारी स्टाम्प की मोहर के समान है। सरकारी स्टाम्प पर लिखा हुआ खतपत्र कभी रद्द नहीं होसकता, [redacted] अगर उस पर मालिक के हस्ताक्षर नहीं हों तो वह रद्द होजाता है परन्तु हस्ताक्षर वाला पत्र कभी निष्फल नहीं जाता। इसी तरह एक कर्म जो महा मलीनता के साथ अत्यन्त दुष्टता के साथ करने में आया हो तो उस कर्म को बिना भोगे छुटकारा नहीं हो सकता, मन में अनेक लहरें बार २ उत्पन्न होती है और नष्ट भी होजाती हैं।

दोहा: मनमां तरंगो मस बनी, मन मधे समी जाय;
सागर लहेरो लक्ष थई, सागर मांही समाय.

कुछ सब ही लहरें फलीभूत नहीं होसकतीं। तो भी कभी २ मन के दुष्ट परिणामों से ऐसे निकाचित कर्म बंध जाते हैं कि, वे थोडी देर में अनंत संसार बढ़ा देते हैं। राजा रंक इत्यादि सब को मन खूब नाच नचाता है। सुंदरदास जी कहते हैं कि —

मनहर छंद-रंक को नचावे अभिलाष धन पावने की,
निशदिन सोच करे ऐसेही नचत है;
राजा को नचावे सव भूमि हु को राज लऊं,
और को नचावे जोई देहसु रचत है;
देवता असुर सिद्ध पन्नग सकल लोग,
कीट पशुपक्षी कहो कैसेको वचत है,
सुंदर कहत काहु संत की कही न जाय;
मन के नचाये सव जगत नचत है.

इसलिए जिस तरह मन नचाता है उसी तरह ससार के समस्त प्राणी नाच रहे हैं। कोई काम के आधीन हो विषयभोग सम्बन्धी अनेक सकल्प विकल्प करते हैं। दूसरों का बुरा चाहते हैं, तो कभी लोभ के आधीन धन प्राप्त करने के लिए बुरे विचार करते हैं, अनेक तर्क लगाते हैं, मन को इधर उधर दौड़ाते हैं, यों भिन्न २ कर विषयाधीन हो मन शुभाशुभ परिणाम उपार्जन करता है, कभी मन हँसता है, कभी रोता है, कभी उत्तर दिशा में भगता है, तो कभी पश्चिम में जाता है इस तरह चारों ओर मन भटका करता है परन्तु वह कहीं तनिक भी नहीं ठहरता। कहा है कि —

कवितः—कवहुक हँसी उठे, कवहुक रोई देत,
कवहुक वकत कहुं, अंत हुं न लईये.
कवहुक खाइ औ, अघात नहि काहु फरी,
कवहुक कहे मेरे, कछु नहिं चाहिये.
कवहुक आकाश जाय, कवहुक पाताल जाय,
सुंदर कहत ताहीं कैसे करी गहिये.

इनमें से प्रथम कही हुई तीन लेश्या अप्रसस्य अर्थात् बुरी और बाकी कही हुई तीन लेश्या प्रशस्य अर्थात् अच्छी है। जब आत्मा पहिली त्रिवेणी में प्रवेश करता है, तब अपना और पराया सब का बुरा चाहता है और जब दूसरी त्रिवेणी में प्रवेश करता है सब मन में शुभ विचार उत्पन्न होते हैं। ऐसे लेश्या के असंख्य परिणाम हैं। जिनके लिये **श्री वीर प्रभु ने** श्री उत्तराध्ययन जी सूत्र के ३४ वें अध्याय में फरमाया है कि—

तिविहो नव विहोवा। सत्ताविस विहो एकासीओवा।
दुसओ तेया लोवा। लेशाण होई परिणामम्॥ १॥

अर्थात्— जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट इन तीनों को तीन गुने करने से जो अंक आता है उसे भी तीन गुना करना फिर उस आंक को प्रत्येक समय तीन २ गुने करनेसे इन लेश्याके अनंत परिणाम होजाते हैं। इनके परिणामोंका पार ही नहीं आता। जितने २ शुभाशुभ कर्मों के कण इकट्ठे होते हैं, वे मन के परिणामों को बिलकुल दृढ़ बना देते हैं, फिर वे भोगे बिना नहीं छूट सकते। ज्यों मैदान में किया हुआ धूल का ढेर तो पवन के झपाटे से उड जाता है, परन्तु उस में पानी डाल कर कूडा मिट्टी इकट्ठा कर ढेर लगा दें तो वह पवन से नहीं उड सकता। मन यह सरकारी स्टाम्प की मोहर के समान है। सरकारी स्टाम्प पर लिखा हुआ खतपत्र कभी रद्द नहीं होसकता, अगर उस पर मालिक के हस्ताक्षर नहीं हों तो वह रद्द होजाता है परन्तु हस्ताक्षर वाला पत्र कभी निष्फल नहीं जाता। इसी तरह एक कर्म जो महा मलीनता के साथ अत्यन्त दुष्टता के साथ करने में आया हो तो उस कर्म को बिना भोगे छुटकारा नहीं हो सकता, मन में अनेक लहरें बार २ उत्पन्न होती हैं और नष्ट भी होजाती हैं।

दोहा: मनमां तरंगो मस बनी, मन मधे समी जाय;
सागर लहेरो लक्ष थई, सागर मांही समाय.

कुछ सब ही लहरें फलीभूत नहीं होसकतीं। तो भी कभी २ मन के दुष्ट परिणामों से ऐसे निकाचित कर्म बंध जाते हैं कि, वे थोडी देर में अनंत संसार बढ़ा देते हैं। राजा रंक इत्यादि सब को मन खूब नाच नचाता है। सुंदरदास जी कहते हैं कि:—

मनहर छंद-रंक को नचावे अभिलाष धन पावनें की,
निशदिन सोच करे ऐसेही नचत है ;
राजा को नचावे सब भूमि हुको राज लऊं,
और को नचावे जोई देहसु रचत है ;
देवता असुर सिद्ध पन्नग सकल लोग,
कीट पशुपत्ती कहो कैसेको बचत है,
सुंदर कहत काहु संत की कही न जाय ;
मन के नचाये सब जगत नचत है.

इसलिए जिस तरह मन नचाता है उसी तरह संसार के समस्त प्राणी नाच रहे हैं ॥ कोई काम के आधीन हो विषयभोग सम्बन्धी अनेक संकल्प विकल्प करते हैं ।दूसरों का बुरा चाहते हैं, तो कभी लोभ के आधीन धन प्राप्त करने के लिए बुरे विचार करते हैं, अनेक तर्क लगाते हैं, मन को इधर उधर दौड़ाते हैं, यों भिन्न २ कर विषयाधीन हो मन शुभाशुभ परिणाम उपार्जन करता है, कभी मन हँसता है, कभी रोता है, कभी उत्तर दिशा में भगता है, तो कभी पश्चिम में जाता है इस तरह चारों ओर मन भटका करता है परन्तु यह कहीं क्षणिक भी नहीं ठहरता ॥ कहा है कि —

कवित.—कबहुक हँसी उठे, कबहुक रोई देत,
कबहुक बकत कहुं, अंत हुं न लईये.
कबहुक खाइ औ, अघात नहि काहु फरी,
कबहुक कहे मेरें, कछु नहिं चाहिये.
कबहुक आकाश जाय, कबहुक पाताल जाय,
सुंदर कहत ताहीं कैसे करी गहिये.

कबहुक आइ लगे, कबहुक उठ भगे,
भूत जैसे चिन्ह करे ऐसो मन कहिये ॥१॥
कबहुक साधु होत, कबहुक चोर होत,
कबहुक राजा होत, कबहु क रंकसो.
कबहुक दीन होत, कबहुक गुमानी होत,
कबहुक सुधो होत कबहुक वंक सो.
कबहुक कामी होत, कबहुक यति होत,
कबहुक निर्मल लोह, कबहुक पंकसो.
मन को स्वरूप ऐसो सुंदर फटीक जैसो,
कबहुक शूर होत कबहुक मयंक सो ॥ २ ॥

यों मन क्षण २ भर में अनेक रंग बदला करता है, मन को जीतना महा कठिन है, मन जिसने मार लिया—जीत लिया, उसने सब कुछ जीत लिया ऐसा समझना चाहिये। परन्तु वह केवल बातें करने में नहीं जीता जा सकता। कितने ही जीव तो बुरी २ कल्पनाएं किया ही करते हैं, तिंदुल नामक मच्छ की तरह कर्म बांधा ही करते हैं। उदाहरणार्थ—तिंदुल नामक मच्छ बड़े मत्स्य की आंख की भौं में पैदा होता है। वह अंतर्मुहूर्त तक ही जीवित रहता है। उसकी स्थिति इतनी ही होती है। जब वह बड़ा मत्स्य मुंह में से पानी लेकर बाहर निकालता है, तब उसके साथ अनेक छोटी २ मछलियां बाहर निकल जाती हैं। जब वह क्षुधातुर होता है तो मुंह बंद रख पानी बाहर निकालता है और सब मच्छ, मछलियों को खा जाता है; परन्तु जब क्षुधा नहीं होती है तो सबको पानी के साथ ही निकाल डालता है। वह खेल के समान रात दिन यह व्यवहार किया करता है। यह तमाशा देख वह भौं में उत्पन्न हुआ तिंदुल नामक मच्छ मन में सोचता है कि "अहा! यह कितना मूर्ख है? इस तरह सब मछलियों को क्यों बाहर निकाल डालता है? सब को पेट में रख कर क्यों नहीं खा जाता? इसके स्थान पर यदि मैं होता तो इन में से एक को भी पीछे नहीं निकलने देता।

यह मन में महा घातकी परिणाम लाता है, जिनके प्रताप से वह दो घड़ी का आयुष्य भोग कर सातवीं नरक में तत्तीस सागर का आयुष्य बांध कर जन्म लेता है और वहां महा दुःखी होता है।

इसीतरह कितने ही मनुष्य व्यर्थ निठल्ले बैठे २ अनेक पापिष्ट घाट घडा करते हैं। बन्धुओ ! अवश्य याद रखना कि, अपन भी तिंदुल मत्स्य के भाई ही हैं। अरे ! उससे भी बुरे हैं। क्योंकि वह तो दो घडीमें एक समय ही ऐसा कर्म करता है और सातवीं नरक में जाता है। परन्तु अपनी तो आयुष्य बडी होती है अपने स्वार्थ अन्ध होकर प्रत्येक मुहूर्त में ऐसे और इनसे भी बुरे अत्यंत घातकी कर्म किया ही करते हैं। तो अपने को कितने समय सातवीं नरक के दुःख भोगने पडेंगे, जरा ध्यानस्थ बन सोचो।

फिर मन तो नपुंसक है परन्तु उसका पराक्रम कितना बलशाली है। बडे २ भूपति, यति इत्यादि महा समर्थ पुरुषों को भी अपनी इच्छा के अनुसार चलाता है। स्वयं अन्ध होने पर भी पांच इन्द्रियों का स्वामी है, ये सब मिल कर आत्मा को अधोगति में ले जाती है। आहाहा! मन का कितना पराक्रम ! क्षण में मर जाता है और क्षण में जीवित हो जाता है। क्षण में आकाश में चला जाता है और क्षण में पाताल में जाता है। राजा, साधु या महात्मा इत्यादि का भी जिसे तनिक भी भय नहीं है, राजसभा में से भी भग जाता है, धर्मगुरु की सभा से भी नहीं डरता है; धर्म बोध सुनने बैठा हो तो वहां से भी खिसक कर इच्छानुकूल मार्ग पर लग जाता है। सुन्दरदास कवि कहते हैं —

मनहर छंद:—हटकी हटकी मन, राखत ज्युं छीन छीन,
सटकी सटकी चहुं, ओर भग जात है;
लटकी लटकी ललचाय, लाल वार वार,
गटकी गटकी करी, विषफल खात है ;
भटकी भटकी तार, तारन कर महीन,
भटकी भटकी कहुं, नेक न अघातु है;
पटकी पटकी सिर, सुंदर ज्यों मानी हारी,
फिटकी फिटकी जाई, सुधो कौन बात है.

चाहे जितना उसे ताबे किया जाय तो भी वह काबू में रहता ही नहीं है। वह कुमति के आधीन हो इच्छानुकुल पँच इन्द्रियों के विषय सुख भोगता है। कुमति यह मन की कुलटा स्त्री है, परन्तु उसके प्रपंच में फस हावभाव से मोहित हो मन उसका दास बन जाता है और उसके आधीन रहता है। उस पर अत्यन्त रागांधता होने से उसके हजारों अवगुणों को भी वह गुण ही समझता है, दु:खदाई होने पर भी उसे सुखदाई समझता है। परन्तु पिंगला के दोषों का भान राजर्षि भर्तृहरी को हुआ तथा जिनरक्षित और जिनपालित का रयनादेवी के अवगुणों का भाव हुआ तब ही उन पर अभाव हुआ और तब ही उन्हें अन्त:करणपूर्वक वैराग्य उत्पन्न हुआ और उनका त्याग किया। परन्तु जबतक उनके दोषों अवगुणों का भान न हुआ था तबतक उनका उन पर अत्यन्त ही प्रेम था! श्रीमन् राजर्षि भर्तृहरी के साढे तीन क्रोड रोममें पिंगला रानी रम रही थी, अपने जीवन को स्वर्ग सुखमय जान रहे थे, महात्माके वैरागी वचनों को बेहसीमें उड़ा रहे थे। स्त्रीके अवगुण और दोष कहने वालोंको वे कट्टर शत्रु ही समझते थे।

परन्तु जब उनके दोषों का अनुभव होगया, तब **"संसार में रहो संसार में रहो"** ऐसे हजारों वचनों से भी वे न रुके और न फँसे। पिंगला रानी और रयना देवी ने अत्यन्त दीनता से सामने देखा, तो भी वे उनके हाव-भाव में फिर मोहित न हुए, इसी तरह कुमतिरूपी कुलटा को इस मन ने सती पद्मिनी तथा महान सुखकारी समझ रखी है, तबतक उसे चाहे जितना कहा जाय, कुमति के हजारों अवगुण गाये जाए, तो भी कुमति पर तनिक अभाव या घृणा उत्पन्न नहीं हो सकती और कुमति के अवगुण गानेवाले साधु महात्माओं को तथा सज्जन पुरुषों को यह अपना दुश्मन ही समझता है। परन्तु जब उसके दोषों का साक्षात्कार होजाता है, तब यह कुमति पर चट अभाव लाकर वैराग्य से प्रेमपूर्वक उसे तृण की तरह त्याग देता है।

सब आधार मन पर ही है, मनसे हार और मनसे ही जीत होती है। एक मन वश होजानेसे उसके आधीन समस्त ब्रह्माड होता है। ज्यों एक राजाके वश हो जाने से उसका तमाम सैन्य वश होजाता है। इसलिए हे विवेकी आत्म बधुओ! ऐसे परवश निकल मन के आधीन न होते उसे नियममें रक्खो, उस पर विश्वास लाकर उसके कथनानुसार चलोगे तो जरूर वह बिना लगाम के घोडे की तरह महा विकट जगल में ले जाकर गहन खाई में फेंक देगा, पश्चात् पूर्ण पश्चाताप होगा। श्री अष्टावक्र गीता में कहा है कि—

मा संकल्पविकल्पाभ्या । चित्त क्षामय चिन्मय ।
उपशान्त सुख तिष्ट । स्वात्मन्यानद विग्रहे ॥
वासना एव संसारे । इति सर्वा विमुचता ।
ते त्यागो वासना त्यागात् । स्थितिरेषा यथातथा ॥

अर्थात्—हे शुद्ध आत्मा ! नाना प्रकार के अशुभ संकल्प विकल्पों से चित्त को सक्षोभित मत कर, परतु आत्मिक आनद में मग्न हो सुखपूर्वक रह, कारण कि वासना यही ससार है, इसलिये सब वासनाओं का परित्याग कर। वासना के त्याग से ही सब ससार का त्याग होगा। जो अपने मनको वश रखते हैं वे परम सुख को प्राप्त करते हैं। इस पर अभय कुमार का दृष्टांत कहते है —

बुद्धिसागर श्री अभयकुमार की धर्म भावना की कथा.

राजग्रही नामक नगरी में श्रेणिक राजा के पाटवीं कवर **श्री अभयकुमार** थे, उनकी बुद्धि अगाध थी, वे राजा के प्रधान थे, यह प्रधान पदवी ने अपनी चतुराई एवम् तीक्षण बुद्धि की बहादुरी से प्राप्त की थी, वे चार बुद्धि के निधान थे, चौंसठ कला के ज्ञाता थे, दो देशों का राज्य भार उनके सिर पर था। सचमुच प्रधानपद महा विकट पद है, कारण कि उन्हें तो राजा और प्रजा दोनों को प्रसन्न रख कर काम करना पडता है। जो एक पक्ष में पड जाता है वह जल्दी ही मारा जाता है। कहा है कि —

नरपति हितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके। जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रै ॥
इति महति विरोधे वर्तमानेऽसमाने। नृपतिजनपदाना दुर्लभ कार्यकर्ता ॥

अर्थात्:—प्रधान सिर्फ राजा का हितैषी बन जाता है, तो प्रजा बागी होजाती है और बडा भारी बलवा हो जाता है। और प्रधान को हानि उठानी पडती है। अगर सिर्फ प्रजा का ही हितकर्ता होता है तो राजा की ओर से पद भ्रष्ट होने का समय आता है। इसलिये जो दोनों के विरोध में रह कर भी हितकारी काम करता है वही उत्तम है और प्रधानपद के योग्य है। परन्तु ऐसे प्रधान मिलना महा कठिन है। कारण कि राजा का पक्षपात करने से जो प्रजा में क्लेशाग्नि-बेदिली का दावानल प्रज्वलित होता है, वह अत्यन्त हानि किये विना नहीं शान्त होता। कहा कि—

प्रजा पीडन संतापात्। समुद्भूतो हुताशनः ॥
राज्ञः कुलश्रियंप्राणान्। नादग्ध्वा विनिवर्तते ॥ १ ॥

अर्थात्:—प्रजा के दुःख से उत्पन्न हुई अग्नि, राजा के राज्य को, कुल को, प्राणों को एवम् लक्ष्मी तक को जलाकर भस्म कर डालती है, इसलिये प्रधान का कार्य महा चतुराई का काम है। नहीं तो थोडे ही समय में प्रधान स्थानभ्रष्ट हो मारा जाता है।

अभयकुमार महा चतुर और अत्यन्त विचक्षण पुरुष थे, जिसका प्रत्यक्ष सबूत यह है कि उन्होंने अपनी प्रधानतामें बहुत २ कठिनाइयां पार की हैं और बुद्धि बलसे अनेक कार्य सहजमें निकाले हैं, जिससे ही नवीन वर्ष को व्यौपारीवर्ग अपनी २ बहियोंमें शारदापूजन के समय **"श्री अभयकुमार की बुद्धि मिलो"** लिखते हैं। अभयकुमार राज्य के भार को उठाते हुए धर्म पर भी पूरा लक्ष्य देते थे, सदा प्रातःकाल जल्दी उठ कर एकाग्र शुद्धवृत्ति से सामायिक किये पश्चात् व्यवहारिक कार्यों में लगते थे, सामायिक के समय अपना मन विशुद्ध रखते थे, सांसारिक राज्य खटपट से उस समय मन को अलग रखते सिर्फ आत्म चिंतनमें ही काल व्यतीत करते थे। सुवर्ण की परीक्षा भी होती है, विद्वान् की परीक्षा लेने वाला भी मिल जाता है। इसीपर धर्मी पुरुषों के हृदय को डिगाने वाले (टेक छुडाने वाले) अवसर भी अचानक प्राप्त होजाते हैं। उस समय सत्यासत्य की, विवेक की परीक्षा भी हो जाती है। **श्री अभयकुमार** की भी एक समय ऐसी ही कसौटी द्वारा परीक्षा हुई।

जब वे सामायिक करने बैठे थे और अपने शुभध्यान में मग्न थे तब एक समय उनका एक खिलाडी मित्र आकर उन्हें धार्मिक क्रिया में लीन देख कर बोला, कि—वाह! वाह!! ठग, भक्त होकर बैठे हैं अभी तो बक की तरह शांत भक्त बन कर बैठे हो, परन्तु जब न्याय मन्दिर में न्यायासन पर विराजते हो तब विचारे गरीब गुरबों का सत्यानाश कर डालते हो, इसलिए आप तो सचमुच प्रपंच के ही पुतले हो। मन में तो कइयों के घर नाश करने एवम् युद्धादि करने के विचार लाते होंगे। आज तो उसको देश से निकालना है। ऐसे अनेक बुरे घाट घड रहे होंगे और ऊपर से तो सामायिक कर मुँहपति बांधकर मुँह छिपा रक्खा है। इसलिये राजेश्री! आप तो सच्चे दगाबाज हो। अभी सिर्फ सामायिक में ही बडे चतुर और विनम्र हो बैठे हो। कहा है कि—

दोहा-नमण २ सहु को नमे, अति नमे विनाण;
दगलबाज दोढ़ा नमे, चित्ता चोर कमान.

मतलब यह कि, नमस्कार तो सब ही करते हैं परन्तु दगाबाज ड्योढ़े नमते हैं, चीता, चोर, चोर और कमान ये चारों अत्यंत वांके चलते हैं, वे दूसरों को नमस्कार करने के लिये नहीं। परन्तु प्राण लेने के लिये ही नमते हैं तथा छिपे रहते हैं।

उसी तरह प्रपंची लोग अत्यन्त धर्मध्यान करते हैं, नम्रता रखते हैं, मीठे २ बोलते हैं, सबका विनय करते हैं परन्तु आत्माके लिये नहीं, सिर्फ अपनी उत्तमता का बाह्याडम्बर दिखा स्वार्थ साधने के लिये ही वे ऐसा करते हैं।

दोहा-धूता होय सुलक्षणा, वैश्या होय सलज्ज;
खारां पानी निर्मलां, ये तीनों काज अकज.

इसलिये 'ऊपर से तो अच्छी बनी परंतु भीतर की जाने राम' ऐसे ही तुम हो। माफ करना साहब! आज तो आप मुझ पर अत्यन्त क्रोधित हुए होंगे, इसलिए क्षमा चाहता हूं। वह ऐसे बोल मार कर चल चला गया। परन्तु इन कटाक्षों से, कलुषित वाक्यों से अभयकुमार का मन सामायिक में तनिक भी न डिगा और न क्रोध ही आया। उन्होंने शांत भाव से अपने मन में सोचा कि —

दोहा-जाकी जितनी बुद्ध है, तितनो देत बताय;
वांको बुरो न मानिये, लेने को कहां जाय?
वखाणो या निन्दा करे, वधे घटे नहि वाल;
उपजे कीमत एटली, जेमां जेटलो माल.

उत्तम पुरुष दूसरों के कठोर वचनों पर ध्यान न देते अपने मन में ऐसा ही समझते हैं कि —

❀ मालिनी वृत्त ❀

ददतु ददतु गाली गालीमतो भवतो।
वयमपि तदभावाद् गालीदानेऽसमर्था ॥
जगति विदित मेतद् दीयते विद्यमान।
नहि-शशक विषाण कोऽपि कस्मै ददाति ॥ १ ॥

अर्थात्—गाली देनेवाले हे दुर्जन मनुष्य ! चाहे तुम जितनी गाली दो, या गालियां दिया ही करो, परन्तु हम तुमको एक भी गाली नहीं दे सकते हैं ? कारण कि हमारे पास ऐसी गालियां हैं ही नहीं तो हम तुम्हें कहां से दे सकते है ? संसार में भी आप जानते हैं कि जिसके पास जो चीज होती है वही वह दूसरों को दे सकता है, परन्तु शशक का सींग कोई किसी को नहीं देते।

इस तरह **श्री अभयकुमार ने** अपनी आत्मा समभाव में रक्खी और मन में ऐसा भी न सोचा कि अभी तो मैं सामायिक में हूं पीछे देखी जायगी। पश्चात् दिन भर में कई वक्त भेंट होने पर भी उसे उपालभ नहीं दिया। परन्तु उस खिलाडी मित्र ने तो हररोज यही धधा पकडा। सामायिक के समयही हररोज हँसी करता और हसता २ चला जाता था। इसलिए एक दिन **अभयकुमार ने** सोचा कि, इसके वचनों से मुझे तनिक भी द्वेष या कटाला नहीं आता है, तो भी इसकी इस कुटेव को मिटाने के लिये इसे कुछ उपदेश देना आवश्यक है, ऐसा सोचकर उसे एक सिपाही द्वारा अपराधी की तरह पकड मंगवाया और कहा कि इसे अभी ही फांसी दे दो। इस हुक्मसे वह खिलाडी मित्र अत्यन्त घबराया और रोने लगा, अब कभी ऐसा नहीं करूगा। मुझे मालूम नहीं थी कि मैं अचानक मरणांतिक कष्ट के भार से दब आऊगा। अब तो किसी तरह मुझे बचाने का यत्न कीजिये। हाय ! अब मैं भूल नहीं करूगा। ऐसी विनम्रता के साथ प्रार्थना करने लगा। तब **अभयकुमार** ने दया लाकर बचाने का उपाय बतला कर कहा कि, किनारे तक तेल की थाली भरकर राजग्रही नगरी में चौरासी बाजार फिर उसमें से एक भी तेल की बूंद जो नीचे गिर पड़ेगी तो उसी समय मेरी खुली तलवार से तेरे साथ रहे हुए सोलह सिपाही तुझे ठौर मार डालेंगे। यही तेरी रक्षा का उपाय है, अगर

तुझे पसन्द हो तो तैयार हो, नहीं तो तुझ कामी का हुक्म दे ही दिया है, चाहे यह हुक्म मान, चाहे यह दोनों में से जो तुझे पसन्द हो स्वीकार कर।

मृत्यु तैरना सिखाती है, यह अत्यन्त कठिन कार्य होने पर भी जीते रहने की आशा से तेल की थाली हाथ में लेकर चला, उसके चारों तरफ खुले खड्ग-धारी चार २ सिपाही चलते थे। एक बूंद भी गिर जाय तो उसे ठौर मार डालना ऐसा उसके सामने सिपाहियों से कह दिया, परन्तु गुप्त रीति से मारने की मनाई कर दी थी, परन्तु प्रकट कर खूब डर दिखा दिया था कि जो इसके हाथसे एक बूंद गिर जायगी और तुम इसे न मार डालोगे तो मेरे पक्के गुन्हेगार समझे जाओगे। फिर वह थाली लेकर चला, सिर पर चारों ओर सोलह खुली तलवारें लटक रही थी, इसलिये मृत्यु के डर से तेल की थाली पर से वह मन तथा दृष्टि तनिक भी न हटाते चला जाता था।

अपने मित्रको डर दिखाकर जब नगरमें घूमने भेजा तब **अभयकुमार** ने नगर में स्थान २ पर देखने योग्य अद्भुत शोभा करवाई थी। समस्त शहर सजाया था। परन्तु उस घूमने वाले मनुष्य का कहीं भी ध्यान न था, वह तो सिर्फ अपनी रक्षा के लिये थाली में से एक भी बूंद न गिरने देने का पूरा ध्यान रखता था और उसकी दृष्टि तथा मन थाली के किनारे पर ही लग रहे थे। जब वह समस्त शहरमें घूम कर आया और एक भी बूंद न गिरने दी तब आने बाद **अभयकुमार ने** पूछा कि–तूने आज नगर में क्या २ देखा? तब उसने कहा कि–अरे! मायाप। मैं अपना कार्य करूं या नगर की रचना देखूं? नगर उजाड़ है या बस्ती बसी हुई है यह भी मुझे तनिक भी खबर नहीं है। सिर पर सोलह नंगी तलवारें घूम रही थी मेरी मृत्यु और मेरे दिल में चार अंगुल भी अंतर न था, इसलिये मैंने तो अपनी दृष्टि और मन किनारे पर ही लगा दिये थे, पश्चात् **अभयकुमार** ने उसे नगर रचना देखने भेजा, नगर की अद्भुत रचना देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और **अभयकुमार** के पास आकर शहर के अत्यन्त सजावट की खूब प्रशंसा करने लगा। तब **अभयकुमार** ने कहा कि " हे भाई! सुन, इस दृश्य से मुझे बहुत उपदेश लेना है, यह बनाव मैंने तुझ पर द्वेष बुद्धि लाकर नहीं किया, परन्तु मित्रभाव से ही किया है। मैं जब सामायिक व्रत में बैठता हूं तब व्यवहार की प्रत्येक खटपट से हृदय का

दूर रखता हूं, कदाचित् मन उन्मार्ग में जाता है तो ज्ञान से उसे राह पर ले आता हूं और उस समय उपशम रस से मन को इस तरह समझाता हूं कि-तू सब से भिन्न है, तुझ से संसार का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। इस तरह मन को अनित्य-भावना इत्यादि बारह भावनाओं में रखता हूं तथा मैत्री भावना, प्रमोद भावना, कारुण्य भावना और चौथी माध्यस्थ भावना ये चार भावनाओं द्वारा आत्मा को शांति भुवन में लाता हूं। इस तरह-मन को नियम में रखता हूं।" मन तो अत्यन्त चपल वेग से चलने वाला घोडा है, यह बडे २ ज्ञानियों से भी नहीं पकडा जाता परन्तु ज्ञान रूपी चाबुक से पीछे फिर जाता है और अज्ञानी मनुष्य मनरूप घोडे को जैसा वह दौडता है, दौडने देते हैं। इतना ही ज्ञानी अज्ञानी में भेद है यथा उत्तराध्ययन जी सूत्र के तेईसवें अध्याय में **श्री गौतम स्वामी ने श्री केशी स्वामी से** नम्रता सहित पूछा है कि—

गाथाएं—अयं साहसिओ भीमो। दुट्ठ सो परिधावइ॥
जंसी गोयम आरुढो। कह तेण न हीरसी॥ १॥
पहा वतं निगिन्हामि। सुयरस्सी समागहिम्॥
नमे गच्छइ उमग्गं। मग्गं च पडीवज्जइ॥ २॥
आसेय इइके वुत्ते, केसी गोयम मब्बवी॥
केसी मेव बयनतु। गोयमो इण मब्बवी॥ ३॥
मणो साहसीओ भीमो। दुट्ठ सो परिधावइ॥
तं सम्मं तु निगिन्हामि। धम्म सिक्खाइ कथ गम॥ ४॥
साहु गोयम पन्नाते। छिन्नो मेसंसयो इमो॥
अन्नोवि संसयो मज्झ। तं मे कहसु गोयमा॥ ५॥

श्री केशी स्वामी ने गौतम स्वामी से पूछा कि-आपका घोडा उन्मार्ग पर जाता है? उत्तर में कहा, हां! जाता है, परन्तु चाबुक लगाकर पीछे स्थान पर ले आता हूं, तब फिर पूछा कि-वह उन्मार्ग कौनसा? और चाबुक कौनसा? तब उत्तर में गौतम स्वामी ने कहा कि मन रूपी अश्व और अज्ञान यह उन्मार्ग है, ज्ञान रूपी चाबुक से मन रूपी अश्व को रोकता हूं सारांश यह कि जिस तरह मैं राज्य कार्य में प्रवेश करता हूं तब न्यायानुसार सब कार्य करता हूं कारण कि न्यायानुसार अपराधी को शिक्षा न दी जाय तो उसे अनेक दूसरे अपराध

करने का अवसर मिलता है। इस सम्बन्ध में एक ज्ञानी पुरुष ने साफ कर कहा है कि:—

क्षमा शत्रु मित्रेच । यतीना मेव भूषणम् ।
अपराधीषु सत्वेषु । नृपाणामेव दूषणम् ॥ १ ॥

अर्थात्—शत्रु और मित्र पर साधु पुरुषों द्वारा की हुई क्षमा एक अमूल्य अलंकार के समान समझी जाती है और अपराधी—गुन्हेगार मनुष्यों पर राजा द्वारा की हुई क्षमा दूषण रूप में परिणित हो जाती है, इस लिये मन को सन्मार्ग में लगा विवेक से न्यायपूर्वक वर्तना, धर्मध्यान में मन को एकाग्र न्याय है। इस तरह अभयकुमार ने अपने मित्र को उपदेश दे समझाया जिससे वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपनी मूर्खता से की हुई भूल के लिये अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगा। कहने का मतलब यह है कि—चचल चित्त को पाप पथ में जाते हुए रोक कर ज्ञान मार्गारूढ़ करना कि जिससे यह अमूल्य मानव जीवन सार्थक हो और श्री अक्षय मोक्षलक्ष्मी प्राप्त कर अजरामरत्व पा सकें।

नेत्रानंदकरा सुपुत्र निकरा सन्तीह लोके मम ।
यद्वाचारु कलत्र मित्र निवहाः कार्याकुलाः किंकराः ॥
सस्यं वित्तमतुल्य वैभवकरं चेतोहरं मंदिर ।
त्यक्त्वाऽत्राखिलमेव गच्छतिजनो नोवेत्ति मूढःपरम् ॥१९

अर्थ—इस लोक में मेरे नेत्र को आनन्द देने वाले सुपुत्र बहुत हैं और सुन्दर सुन्दरिया तथा मित्र और कार्य में अनुकूल आज्ञाकारी नौकर भी बहुत से हैं, धान्य और अतुल वैभव देने वाली लक्ष्मी तथा रहने के लिये मनोहर सुन्दर मन्दिर भी मेरे बहुत हैं और लोग भी मेरा अत्यन्त मान करते हैं परन्तु ये सब बाहरी सुखकर वस्तुए यहीं त्याग एक समय जाना पड़ेगा ऐसा मूर्ख मनुष्य नहीं समझते ॥ १९ ॥

भावार्थ—कोई एक सांसारी प्राणी सुख में आसक्त और मोहमुग्ध बनकर कहता है कि—नेत्र को प्रफुल्लित करने वाले उत्तम पुत्र भी मेरे हैं तथा सुन्दर सुन्दरियों के वैभव भी मेरे हैं तथा निरन्तर सेवा में अनुरक्त ऐसे सैंकड़ों परिचारक (नौकर) भी मेरे हैं तथा चौबीस जात के धान्य की राशियां भी मेरे हैं, अनेक प्रकार से मनोवाञ्छित वैभव को देने वाला तथा सब के चित को हरने वाला अगणित धन भी मेरा है, मेरे घर में लक्ष्मी भी बहुत है तथा रहने के लिये विविध जाति के सुन्दर महल भी मेरे हैं। इस तरह मोह मुग्ध जीव हमेशा मौज मान रहे हैं। परन्तु कामभोग में अत्यन्त आसक्त तथा मोह रूपी अज्ञान तिमिर से अन्ध बने हुए और मोह में मुग्ध बने हुए मूर्ख मनुष्यों को इतना भी मन में विचार नहीं आता कि यह सब सम्पदा वैभव आदि यहीं त्याग कर मनुष्य परलोक में जाते हैं उसी तरह मुझे भी एक दिन अवश्य जाना होगा। मतलब यह है कि मनुष्य जिंदगी प्राप्त कर जो पाप पुण्य सचय करते हैं येही उनके साथ चलते हैं, बाकी तो सब यहीं पड़ा रहता है। इसलिये मुमुक्षु जनों को अत्यन्त कामभोग से आसक्तता त्याग धर्म का ही सचय करना योग्य है। कारण कि यह जीवात्मा चार गति चौबीस दडक और चौरासी लाख जीवयोनि में एक धर्म के बिना ही अनतकाल से परिभ्रमण कर रहा है, इसलिये यह मनुष्य जन्म पाकर मोह मुग्ध न बनते कुछ भी जीवन साफल्य के लिये आत्मसार्थक करना आवश्यक है।

यह ससार इतना तो विचित्र है कि एक क्षण में हर्ष और आनन्द तो दूसरे क्षण में तुरन्त ही दु खदाई समय दृष्टिगत करता है कहा है कि—

> क्वचिद्वीणावाद्‌, क्वचिदपि च हाहेति रुदित।
> क्वचिन्नारी रम्या क्वचिदपि च जरा जर्जर वपु ॥
> क्वचिद्विद्‌द्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहो।
> न जाने ससार किममृतमय किं विषमय ? ॥ १ ॥

अर्थात्—इस ससार में कई जगह तो अनेक प्रकारके वाजित्र बज रहे हैं, तो कई जगह हाय! हाय! अरेरे! मर गये! गजब हो गया! इत्यादि अत्यत भयकर और अत्यत त्रसित दयाजनक शब्द हो रहे हैं। कई जगह रम्य सुन्दरियों के मडल, तो कई जगह जरा (वृद्धावस्था) से जीर्ण देह दृष्टिगत होती है। कई जगह विद्वान पण्डितों की ज्ञान चर्चा, तो कई जगह

मोह मदिरा से मस्त बने हुए मूर्ख मनुष्यों में क्लेश होता हुआ नजर आता है, तो यह संसार अमृतमय है? या विषमय है? यह कुछ नहीं समझा जाता। सारांश यह है कि कुछ गौर करके बारीक दृष्टि से देखते यह संसार केवल दुःखमय नजर आता है तो भी इसे सुखरूप समझकर मोह मुग्ध मनुष्य इसमें लीन हैं यह बड़ा ही आश्चर्य है।

तथा ऐसे क्षणिक पदार्थों को सत्य समझ कर उन्हें प्राप्त करने के लिये सतत प्रयास कर रहे हैं परन्तु इतना भी नहीं सोचते कि —

को देश कानि मित्राणि। कः कालः को व्ययागमौ।
कश्चाहं का च मे कांता। इीति चिंत्य मुहुर्मुहु ॥ १॥

अर्थात् —आत्मा का देश कौनसा है? मित्र कौन हैं? काल कौनसा है तथा आय व्यय कितना है? आत्मा की स्त्री कौन है? इस तरह प्रत्येक उत्तम पुरुष को रात दिन इसका विचार करना चाहिये। अर्थात् इस आत्मा का संसार में कुछ नहीं है, जो नजर आता है वह पुद्गल है उसके साथ इस आत्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है तो भी अज्ञानता से शरीर, पुत्र, कलत्र, धन, माल आदि सब मेरे है और मैं उनका हूं। ऐसी मिथ्या भ्रांति हो रही है। यह मेरी स्त्री, यह मेरा पुत्र, यह मेरा धन, यह मेरा महल—घर अर्थात् जिनके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, उनको मेरे व सर्व समझ कर यह आत्मा उनसे लिपट रही है, परन्तु हे पामर आत्मा!

❀ शार्दूल विक्रीडित वृत्त ❀

शी तारी गति मंद आ शिथिलता मारी गई छे मति,
धार्युं धूल थशे सही पलकमां शक्ति करो ने छति ;
पाराधी कदी आवीने पकडशे, संताय क्यां सोडमां,
जागी जो नर मोहजाल सघली तैयार था तोडवा.
गाढा बंधन पाशमां फसी पड्यो, उपाय शोधी करो,

छुटो छुटी शकाय तो कलवले छुटे थकी छुटको ;
बाजी छे हजी हाथ उठ मूरखा खामी पड़ी खोलवा ;
जागी जो नर मोहजाल सघली तैयार था तोड़वा.

इसलिये हे जीवात्मा ! तेरी बुद्धि क्या भ्रष्ट हो गई है ? जिसे तू काल्ला समझता है वह तो कई समय—अनंत वक्त तेरी माता भी हो गई है, तू उसका पुत्र भी रहा है तथा अनंत वक्त तू पिता का अवतार भी पाया है और स्त्री भी बना है ऐसे अनंत २ सम्बन्ध एक दूसरे के साथ इस जीवात्मा के हुए हैं। इस जन्म में इकट्ठा हुआ कुटुम्ब कुछ आदि में ही मिला है ऐसा नहीं, जैसे एक वृक्ष पर रात को भिन्न जाति के पक्षी आकर इकट्ठे होते हैं और समस्त रात्रि सब परस्पर आनन्द मनाते हैं, परन्तु प्रातःकाल होते ही सब अपनी २ इच्छानुकूल भिन्न २ दिशाओं में प्रयाण कर जाते हैं। इसी तरह यह जीव पक्षी मनुष्य देह रूपी वृक्ष पर घोंसला बांध कर रहता है अचानक उड जायगा। कारण कि सिर पर काल रूपी सिंचाना पकड़ने की जल्दी कर रहा है वह अचानक आकर पकड लेगा, तब घोंसला, पुत्र, मित्र, कलत्र, (स्त्री) धनधाम इत्यादि सब यहीं त्याग कर अकेला ही आया वैसा अकेला ही जाना पडेगा और आया तब तो मुट्ठी बंधा हुआ कुछ पुण्य भी साथ लाया था परन्तु जाते समय तो खुले हाथ रख दुनियां को उत्तम उपदेश दर्शाता खाली हाथ चला जाता है। खुले हाथ रख दुनिया को ऐसा उपदेश देता है कि जैसे मैं सब सम्पत्ति यहीं त्याग कर जा रहा हूं वैसे ही सब को जाना पड़ेगा। चाहे जो गृहस्थ हो तो भी अंत समय तो उसके भाग्य में चार नरियल, सफेद सादा कपडा और फूटी हंडी ही लिखी है। यही अन्त में उसकी साहिबी का दृश्य है। बाकी तो सब सन्दूक तिजोरी आदि को तारो दे दिये जायगे। प्यारी से प्यारी तू ने प्राणप्रिया स्त्री मान रखी थी, जिसके लिये अनेक कुकर्म भी किये थे, और अनेकों के साथ भयंकर वैर के वृक्ष भी बोये थे तथा जिसके लिए महान उपकारी तीर्थ समान माता पिता भी अलग कर दिये थे। वह प्यारी स्त्री तो हे चेतन! तेरे घर की सीम तक ही पहुंचाने आयगी, फिर तो जंगलकी लडकियों के साथ ही जलना होगा। सच्चे प्यारे तो जंगल की लकडियां ही हैं कि वे अन्त तक साथ २ जलने तैयार होंगे। बाकी का सब समाज तो दो घडी हा हो इत्यादि

शरीरोचार कर स्नान मजन कर, ओढ़े करते २ अपने २ स्थान चले जायेंगे। दसवें दिन तो तेरा नाम रखकर सब लड्डू जीम लेंगे, विविध मिष्टान्न उड़ायेंगे। बारहवाँ, तेरहवाँ, मास, छ मास और वर्ष व्यतीत हुआ कि बस हो गया। फिर तुझे कोई याद भी न करेंगे। फिर तेरी स्त्री भी जो कुलीन—लज्जा इज्जतदार होगी तो ठीक है नहीं तो दूसरे पतिके साथ व्याह कर लेगी। मानो ऐसा दृश्य हो जायगा कि तू जन्मा भी न था। इसलिये हे चेतन पक्षी! हे प्यारा प्राणरूपी तोता! तनिक निम्नोक्त उपदेशी गजल पढ़ और हृदयमें ज्ञान दीपक प्रकट कर।

प्राणरूपी प्यारे तोता को उपदेशः—गजल.



गगनगामी अरे तोता! पड्यो तुं पिंजरा मांही;
नथी आ पींजरूं तारूं, मिथ्या तुं मानमां मारूं.
उडी जावुं गगन पंथे, तजी आ पींजरूं तारूं;
रमा रामा विषे रातो, रह्यो मद मोहमां मातो.
न शोधी तत्वनी कुंची, गयो आ कीचमां खुंची;
तजी नीर शुभ गंगानुं, पीये जल केम रे खारूं?
मूकी केशर कस्तुरी, रह्यो कीचडमां वलगी;
विचारो चित्तमां व्हाला, ठगामां न ठाठमां ठाला.
विनयमुनि विवेकेथी, विचारो दृष्टि खोलीने;
तजीने तंतने तारा, भजी ले संतने सारा.

इसलिये हे चेतन! सचमुच तेरा घोसला भी इसी तरह एक समय बिखर जायगा। खबर भी नहीं लगेगी कि तू कहां जन्मा था! इसलिये तनिक विचार कर कि परभव में क्या हाल होगा? कुछ पुण्य बांधेगा तभी काम आयगा। रास्ते में वनिये की दुकान नहीं है इसलिये परभव में कुछ खाने के लिये लेने की इच्छा हो तो यहीं से ले लेना, नहीं तो पूर्ण पश्चात्ताप होगा। इस जीव

पक्षी ने अनेक घोंसला बांधे और अनेक तुड़ा डाले। एक भी घोंसला ऐसा अचल न बनाया कि, फिरसे उसे बांधने या तोड़ने का समय न आया हो। परन्तु यह जीव सगे सम्बधियों में रच पच गया और कई सम्बन्ध होने पर भी समझने लगा कि यह सम्बन्ध नया नहीं ऐसा समझकर उनसे मोहित होगया परन्तु परलोक में क्या हाल होगा यह तो जानता ही नहीं है ? इस विषय में एक विद्वान ने साफ कहा है कि —

चेतन पक्षी को चितावनीः—हीर छन्द की चाल.

हा ! थवा शा हाल तारा, जीव ! जो जरी;
रे अनाड़ी ! अंध तारी, क्यां मति फरी.
सूझे नहीं ओ ! भाई ! तूने पंथ पांसरो;
अनेक उंधा पंथना तु, फंदमां फंस्यो.
व्हाला सगा सोबतियो, रहेशे वेगला;
पत्नी पुत्र मूकी जावुं, जीव एकला.
रे रे पंखी ! रातदहाड़ो मालामां मच्यो;
वारू शुं आजेज मालो, आवो तें रच्यो ?
अनेक माला बांधी भाग्या, बांधी भांगशो;
आ ते भांगफोड़मांथी, क्यारे छूटशो ?
चेतन पक्षीराज ! ऐवी युक्ति आदरो;
भांगफोड़मांथी छूटी, ठाम जई ठरो.
मागो विश्वनाथ पासे, हाथ जोड़ीने;
नवीन पंथ शान्तिनो, स्वामी सुझाड़ी दे.

मतलब यह है कि, यह चेतन सगे सम्बन्धी और कुटुम्ब में मोहित हो आत्म कर्तव्य भूल जाता है। सगे अनंत बार मिले हैं और मिलेंगे। अरे! कर्म की गति कितनी विचित्र है कि, एक ही भव में जिसके अठारह नाते (सम्बन्ध) लगे तो भवोभव की चर्चा ही क्या है? कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता के एक ही भव में अठारह नाते हुए। अहो! कर्म की गति अगम्य है! इसलिये तेरा मेरा यह मिथ्या ममत्व भाव त्याग कर धर्म साधन करना ही इस जीतव्य का सार है। अब इस विषय पर अठारह नाते-सगाइयों का दृष्टान्त कहते हैं।

कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता के अठारह नातों की विचित्र वार्ता.

मथुरा नगरी में कुबेरसेना नाम की एक सुन्दर युवान गणिका रहती थी। उसके एक समय युगल बालक जन्मे, उनमें एक पुत्र और एक पुत्री थी। गणिका विशेष कर कभी बालकों की प्रतिपालना नहीं करती, परन्तु गुप्त रीति से उन्हें मार डालती हैं। कदाचित् कभी लडकी को अपने व्यवसाय में मदद देने के लिये पालती पोषती है, परन्तु लडके के तो प्रायः जल्दी ही भूमि पर सुला देती है। यह गणिका युवावस्थामें थी और उसके प्रथम ही ये सन्तान हुए थे, इसलिये उसे पुत्री पालने की भी इच्छा न हुई। दोनों बालक अत्यंत सुकुमार थे इसलिये उन्हें दया लाकर मार डालना उचित न समझा और उन्हें लकडी की सन्दूकों में रुई बिछाकर प्रत्येक में एक २ बालक रख वे सन्दूकें जमानाजी में प्रवाहित कर दीं।

इन दोनों सन्दूकों के अन्दर नीचे के भाग पर मथुरा नाम अंकित था तथा पुत्रवाली सन्दूक में कुबेरदत्त और पुत्रीवाली सन्दूक में कुबेरदत्ता नाम अङ्कित किया था। ये दोनों सन्दूकें बहती २ किसी गाम के दो सेठों को जो नदी पर नहाते धोते थे उन्होंने नजर आने से उन्होंने बाहर निकाल और खोल कर देखी तो अन्दर जीते हुए बालक देखे, एक ने पुत्र और दूसरे ने पुत्री ले ली। ये दोनों बालक रूपवन्त और तेजस्वी होने पर उन पर उनके नवीन धर्म के मातापिताओं का अत्यन्त प्रेमभाव था, इसलिये उन्होंने उनको अच्छी तरह प्रतिपालना की और योग्य विद्याभ्यास भी

पत्ती ने अनेक घौंसला बांधे और अनेक तुडा डाले। एक भी घौंसला ऐसा अचल न बनाया कि, फिरसे उसे बांधने या तोडने का समय न आया हो। परन्तु यह जीव सगे सम्बधियों में रच पच गया और कई सम्बन्ध होने पर भी समझने लगा कि यह सम्बन्ध नया नहीं ऐसा समझकर उनसे मोहित होगया परन्तु परलोक में क्या हाल होगा यह तो जानतो ही नहीं है ? इस विषय में एक विद्वान ने साफ कहा है कि —

चेतन पत्ती को चितावनीः—हीर छन्द की चाल.

हा ! थवा शा हाल तारा, जीव ! जो जरी;
रे अनाड़ी ! अंध तारी, क्यां मति फरी.
सूझे नहीं ओ ! भाई ! तूने पंथ पांसरो;
अनेक उंधा पंथना तु, फंदमां फंस्यो.
व्हाला सगा सोबतियो, रहेशे वेगला;
पत्नी पुत्र मूकी जावुं, जीव एकला.
रे रे पंखी ! शतदहाडो मालामां मच्यो;
वारू शुं आजेज मालो, आवो तें रच्यो ?
अनेक माला वांधी भांग्या, वांधी भांगशो;
आ ते भांगफोड़मांथी, क्यारे छूटशो ?
चेतन पत्तीराज ! ऐवी युक्ति आदरो;
भांगफोड़मांथी छूटी, ठाम जई ठरो.
मागो विश्वनाथ पासे, हाथ जोडीने;
नवीन पंथ शान्तिनो, स्वामी सुजाड़ी दे.

मतलब यह है कि, यह चेतन सगे सम्बन्धी और कुटुम्ब में मोहित हो आत्म कर्तव्य भूल जाता है। सगे अनंत यक मिले हैं और मिलेंगे। अरे! कर्म की गति कितनी विचित्र है कि, एक ही भव में जिसके अठारह नाते (सम्बन्ध) लगे तो भवोभव की चर्चा ही क्या है? कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता के एक ही भव में अठारह नाते हुए। अहो! कर्म की गति अगम्य है! इसलिये तेरा मेरा यह मिथ्या ममत्व भाव त्याग कर धर्म साधन करना ही इस जीतव्य का सार है। अब इस विषय पर अठारह नाते-सगाइयोंका दृष्टान्त कहते हैं।

कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता के अठारह नातों की विचित्र वार्ता.

मथुरा नगरी में कुबेरसेना नाम की एक सुंदर युवान गणिका रहती थी। उसके एक समय युगल बालक जन्मे, उनमें एक पुत्र और एक पुत्री थी। गणिका विशेष कर कभी बालकों की प्रतिपालना नहीं करती, परन्तु गुप्त रीति से उन्हें मार डालती हैं। कदाचित् कभी लड़की को अपने व्यवसाय में मदद देने के लिये पालती पोषती है, परन्तु लड़के के तो प्राय जल्दी ही भूमि पर सुला देती है। यह गणिका युवावस्थामें थी और उसके प्रथम ही ये संतान हुए थे, इसलिये उसे पुत्री पालने की भी इच्छा न हुई। दोनों बालक अत्यंत सुकुमार थे इसलिये उन्हें दया लाकर मार डालना उचित न समझा और उन्हें लकड़ी की सन्दूकों में रुई बिछाकर प्रत्येक में एक २ बालक रख वे सन्दूकें जमनाजी में प्रवाहित कर दीं।

इन दोनों सन्दूकों के अन्दर नीचे के भाग पर मथुरा नाम अंकित था तथा पुत्रवाली सन्दूक में कुबेरदत्त और पुत्रीवाली सन्दूक में-कुबेरदत्ता नाम अङ्कित किया था। ये दोनों सन्दूकें बहती २ किसी गांव के दो सेठों को जो नदी पर नहाते धोते थे उन्होंने नजर आने से उन्होंने बाहर निकाल और खोल कर देखी तो अन्दर जीते हुए बालक देखे, एक ने पुत्र और दूसरे ने पुत्री ले ली। ये दोनों बालक रूपवन्त और तेजस्वी होने पर उन पर उनके नवीन धर्म के मातापिताओं का अत्यन्त प्रेमभाव था, इसलिये उन्होंने उनकी अच्छी तरह प्रतिपालना की और योग्य विद्याभ्यास भी

दिया था, एक गांव के दो सेठों ने हमें बाहर निकाल हमारी प्रतिपालना की, वहां हम दोनों भाई बहिनों के आपस में व्याह होगये। संदूक में बालकों को बंद कर बहा देने वाली माता तुम्हीं हो या और कोई ?" यह सुन कुबेरदत्त और कुबेरसेना अत्यत विस्मित हो लाचार से होगए। साध्वीजी को उपरोक्त आश्चर्यकारक हालरिया गाते देख कई मनुष्य कुबेरसेना के घर में एकत्रित होगए थे, वे भी यह सुन कर अत्यत आश्चर्य पाये और कहने लगे कि "महासती जी! हालरिये में गाई हुई सगाइयों का खुलासा वर्णन कीजिये।" जिससे साध्वी जी ने निम्नांकित ब्यौरेवार वर्णन किया।

बालक के साथ छः नाते हुए वह कहते हैं।

(१) मेरे स्वामी कुबेरदत्त से उत्पन्न हुआ इसी लिये मेरा भी पुत्र। २ (बाप का भाई वह चाचा) कुबेरसेना माता का स्वामी कुबेरदत्त इसलिये यह मेरा बाप और यह उसका बालक (माता का पुत्र) भाई हुआ इस लिये मेरा चाचा। ३ (स्वामी का छोटा भाई मेरा देवर) कुबेरदत्त मेरा स्वामी उसका भाई (कुबेरसेना माता का पुत्र) इसलिये मेरा देवर। ४ (भाई का पुत्र मेरा भतीजा) कुबेरदत्त भाई का पुत्र मेरा भतीजा। ५ मेरे स्वामी कुबेरदत्त की स्त्री कुबेरसेना का पुत्र इसलिये मेरा शौक्य का पुत्र। ६ कुबेरसेना माता का पुत्र इसलिये मेरा भाई। पश्चात् कुबेरसेना से छ नाते गिनाते हुए कहते हैं — १ (स्वामी की माता मेरी सास) कुबेरदत्त मेरा स्वामी, इसलिये आप मेरी सास हुई (२) जन्म देने वाली इसलिये मेरी माता। (३) कुबेरदत्त स्वामी की स्त्री इसलिये शौक्य। (४) कुबेरदत्त भाई की ... इसलिये भाभी। (५) कुबेरसेना शौक्य का पुत्र कुबेरदत्त इसलिये बहू ... बहू इसलिये मेरी बहू। (६) कुबेरसेना माता का ... वह बाप हुआ और उस बापके जन्म की माता ... साथ छ नाते कहते हैं —(१) मुझे ब्याहा इसलिये ... शौक्य का पुत्र इसलिये मेरा पुत्र। (३) कुबेरसेना ... मेरा पिता। (४) जननी माता का पुत्र इसलिये मेरा ... की माता कुबेरसेना इसलिये मेरी सासु हुई ... कुबेरदत्त इसलिये मेरे श्वसुर हुए। (६) कुबेरसेना

इसलिये शौक्य का पुत्र हुए और उसकी बहु कुबेरसेना का पुत्र इसलिये बहु का पुत्र। इस तरह लगभग अठारह नाते मिलाये। आहाहा! कर्म की विचित्रता ससार में कितनी अपार है।

इसके पश्चात् सब समाज को नीचे बैठाकर साध्वी जी ने उपदेश दिया कि "अरे श्रोता जनो! यह ससार असार है और इसकी माया बिल्कुल मिथ्या है, परन्तु इस माया की अधता ने तुम्हारी आखें बाध रक्खी हैं, इसलिए तुम्हें सब प्रतिकूल दृष्टिगत होता है। किसका पुत्र? किसका बाप? किसकी माता? किसकी स्त्री? कोई किसी का नहीं। हजारों वक्त बाप अपना पुत्र हुआ और हजारों वक्त आप उनके पुत्र हुए, यह सम्बन्ध सिर्फ इसी भव में है मरे बाद कुछ नहीं। हमारे इसी भव में प्रत्येक को छः छः सम्बन्ध होगए तो दूसरे भव की कथा ही क्या है? "ये तो करेगा सो भरेगा और बोवेगा सो पावेगा" आप पुण्य पाप करोगे तो आप को ही भोगने होंगे और आपके बाप करेंगे तो वे ही भोगेंगे। धनदौलत में सब का हिस्सा है। परन्तु पाप पुण्यरूपी मिल्कत में कोई भाग न लेंगे। आप कूड कपट कर कुछ पैदा करोगे तो वे सब खाने को तैयार हो जायगे परन्तु उस अपकृत्य के फल भोगने में कोई प्रस्तुत न होगा। तुम स्वय ने पाप किया है तो तुम्हें ही भोगना होगा तब छुटकारा मिलेगा। इसलिए ऐसो ससार की मिथ्या माया में क्या देखकर फँस रहे हो? कहा है कि —

आपातत प्रणयीना। सयोगानां प्रियेःसह।
अपथ्यानामिवान्नाना। परिणामोऽति दारुण ॥ १ ॥

अर्थात्—कुटुम्बियों का सयोग ऊपर से तो ठीक मालूम होता है परतु उसका परिणाम अत्यत हानिकर है। जिस तरह अपथ्य मिष्ठान्न भी खाते बहुत अच्छा लगता है परतु पचते समय अत्यन्त दुःखदाई हो जाता है। इसी तरह ससार की सगाइयां ऊपर से ठीक लगती हैं परतु सचमुच वे दुःख रूप ही हैं। फिर कहा है कि —

अनित्य यौवन रूप। जीवित द्रव्य सचय।
ऐश्वर्य प्रिय सवासो। मुह्येत्तत्र न पडित ॥ १ ॥

अर्थात्—युवानी, रूप, जीतव्य, द्रव्य भंडार, ऐश्वर्य, हुकुमत सगे सम्बन्धियों का सहवास और स्त्री ये हमेशा रहने वाले नहीं है। इसलिये तुम चतुर हो तो इनमें मोहित न होकर सुख दुःख में सामान्य रहो, धर्म के उत्तम कार्य में लीन बनो और श्रद्धा रक्खो। फिर कहा है कि:—

चला लक्ष्मीश्चला प्राणाश्चलि जीवित योवने।
चला चले च संसारे। धर्म एकोहि निश्चल ॥

अर्थात्—लक्ष्मी, प्राण, जीतव्य तथा युवावस्था चल है और संसारकी समस्त वस्तुएं भी चंचल हैं। परन्तु एक धर्म ही केवल निश्चल है, इसलिये यमपुरी की मुसाफिरी के लिये लेजाने योग्य सामग्री तैयार करलो कि, जिससे पीछे पश्चात्ताप न हो। संसार के सब काम किसी से पूर्ण हुए नहीं और होंगे नहीं और आयुष्य भी हवा में दीपक के समान, रेत की भींत के समान, डाभ पर पडे हुए जल बिंदु के समान, पीपल के पत्ते के समान, हाथी के कान के समान अस्थिर है। काल की किसी को खबर नहीं, कारण कि कालरूपी बाज सिर पर घूमा ही करता है, वह अचानक एक क्षण में गर्दन पकड ले जायगा तब तुम्हारे सगे-सम्बन्धी उसे न रोक सकेंगे और न अटका ही सकेंगे। कहा है कि—

छप्पयः-राखे लख रखवाल, लोहपींजरमां पेसे,
अर्णव वच्चे आसन वालीने जो कोई वैसे,
वज्र गुफा गंभीर मांहि कोरावी माणे.
इंद्रजाल विद्याय जुगतथी जो वली जाणे,
संभाल साचवी सांचरे कोटी जतन कोड करे.
जालवतां पण जीवे नहिं मोत आवे निश्चे मरे.

बार २ यह सुन्दर मनुष्य भव प्राप्त नहीं हो सकता। लाख चौरासी जीव योनि में भटकने पर यह महा कठिनाई से मनुष्य भवरूपी महा महंगा मणीरत्न हाथ आया है। मनुष्य भव यह संसार सागर तैरने का अमूल्य नाव है, जिसे

अच्छी तरह चलाई तो तैर कर पार उतर जाओगे, नहीं तो भवसागर में गोते ही खाया करोगे। इत्यादि अनेक उत्तम शब्दों से अत्यन्त अच्छा उपदेश दिया। साध्वी जी के मुँह से ऐसा उपदेश सुनकर कितने ही मनुष्योंने धर्म अँगीकार किया और **कुबेरदत्त** तथा कितने ही मनुष्या ने उसी समय दीक्षा ले ली। **कुबेरसेना** ने भी गणिका का धंधा छोड़ कर बालक बालवय का होने से दीक्षा तो न ली परन्तु उसके बड़े होने पर दीक्षा लेने का ठहराव किया। पश्चात् साध्वी जी अपने स्थान पर गए और सब मनुष्य भी अंत करण से खुश होते २ अपने घर गये।

इस बात का साराश यह है कि, इस संसार में मोहमाया में मुग्ध बन-कर सांसारी प्राणी हमेशा हाय तोबा किया करते हैं, पुत्रकलत्रादिक के लिए अनेक प्रतिकूल कार्य किया करते है। लक्ष्मी के लिये ललचा कर न करने योग्य कार्य कर इस अमूल्य मनुष्य भव को व्यर्थ गुमा देते हैं। परन्तु ये सब मायिक पदार्थ एक समय अवश्य त्यागने होंगे ऐसा बिलकुल सच समझ विवेकी पुरुषों को हमेशा धर्म में लीन रहना चाहिए यही उत्तम और आत्म कल्याण-कारी मार्ग है।

भो भो भव्यजना! भवाब्धितरणे बोहित्थ मानुष्यकं।
दु प्राप्यं हत धीमतां कथमपि प्रायास संपादितम्॥
तस्मान्नूनमपेत वैभव सुखासक्तिं भवान् वर्धिनीं।
संतापत्रयवारणेऽमित गुणे धर्मे विधध्वंधियम्॥२०॥

अर्थ—हे भव्य मनुष्यो! इस भवसागर को तैरने के लिए यह मनुष्य जन्म एक उत्तम नाव है, यह मन्द भागियों को तो मिलना ही अत्यन्त दुर्लभ है परन्तु यह मनुष्य जन्म अपने को महा मिहनत से मिला है इसलिए भव को बढ़ाने वाली वैभव सुख की अत्यन्त आसक्ति हटाओ और अनेक गुणों से

पूर्ण तथा तीन प्रकार के दुःख मिटाने वाले पवित्र धर्म की ओर ही तुम्हारी बुद्धि लगाओ जिससे इस संसार का अन्त कर सुखी बन सको ॥ २० ॥

भावार्थ—हे मुमुक्षु मनुष्यो! इस भवरूपी महा भयंकर सागर को तैरने के लिए नाव के समान यह मनुष्य भव कितनी ही कठिनता से प्राप्त हुआ है, यह मनुष्य भव कैसा है? इसके उत्तर में कहते हैं कि, जिनकी बुद्धि भ्रष्ट है ऐसे दुर्भागी प्राणियों के लिए तो अत्यन्त दुर्लभ है, वही मनुष्य-जन्म अपने को महा मिहनत से प्राप्त हुई है, जिससे सांसारिक वैभव सुखों की लुब्धता आसक्ता त्यागो, यह आसक्तता कैसी है? तो कहते हैं कि, संसार बढ़ाने वाली, बुद्धि बिगाड़ने वाली, नीति भ्रष्ट करने वाली और भवोभव में शत भ्रमण में भटकाने वाली है। इसलिए संसार के जन्म, जरा, मृत्यु और आधि व्याधि तथा उपाधि इन तीन प्रकार के दुःख को नाश करने वाले तथा अमाप-अतुल जिसमें अगणित सद्गुण भरे हैं। उस दया रूपी पवित्र धर्म में हे विवेकी पुरुषो! तुम्हारी बुद्धि लगाओ कि, जिससे भव अन्त कर सको।

इतना तो अवश्य है कि, चाहे जैसा तिरैया हो, हुशियार हो, तो भी महासागर के जल को तैरने के लिए नाव की आवश्यकता होती है, इसी तरह इस भयंकर भव सागर को तैरने के लिए मनुष्यत्व यह एक अमूल्य नाव है। यह मनुष्य जन्म महा सद्भाग्योदय से ही प्राप्त हो सकता है। जैसे कोई एक जन्मांध मनुष्य जंगलमें रास्ता भूल गया उसे **भावनगर** नामक शहरमें जाना था परन्तु **नरतनपुरी** में पहुँचे बिना **भावनगर** नामक शहर में जाना अशक्य था, इसलिए **जीवनराम** नामक मनुष्य-अंध पुरुष प्रथम **नरतनपुरी** को ढूंढने के लिए जहा तहा भटकने लगा। बहुत भटका घूमा और थकित हो कायर हो गया। भूख दुःख से दुःखी हो गया, तो भी दुःखित अवस्था में इधर उधर भटकने लगा। इतने में उसके भाग्योदय से एक परोपकारी पुरुष वहा आ गए। उनके सामने वह अंधा खूब रोया, तड़फड़ा तब उन दयालु पुरुष ने दया लाकर उसको उस नगर का मार्ग दिखा दिया और कहा कि, इस रास्ते से चले जाना! जब नगर का गढ़ आवेगा, उस पर हाथ रख उसके सहारे आगे जाना, तब एक दरवाजा आवेगा, फिर दरवाजे में घुसकर जहा जाना हो, वहा चले जाना, परन्तु यह याद रखना कि, उस नगरमें जाते समय एक **नार**

नामक गांव आता है, जो है तो छोटा परन्तु उसका दृश्य मोहक और सुन्दर होने से बहुत मनुष्य उस गांव में ही फँस जाते हैं और **भावनगर** नामक शहर की अपूर्व शोभा देखने तथा उसका आनन्द प्राप्त करने के भाग्यशाली नहीं हो सकते तथा आगे नहीं जा सकते वहीं फँस जाते हैं और मिथ्यामोह में भूल जाते हैं। कहा है कि.—

कवित्तः—ब्रह्मपुर छोरें ते, छोरायो वरतेज गाम,
जाय के मुकाम कियो, नार गाम पौरमें;
जसपरे लूंट पड़ी, धाय गयो हेवतपुर,
विरपुर पायो ना अघ के अघौर में;
धर्मपुर हारे तें निहारे हे अपार देश;
पायो न सुरत शहेर क्यों जाइ कठौर मैं;
कहत उमेदचंद ब्रह्मभान भूले अंध,
भ्रमसे कुछंद परे पातिक करोर मैं॥१॥

इसलिए अवश्य चेतकर चलना, नहीं तो पूर्ण पश्चात्ताप होगा। ऐसा कह कर उसे रास्ता दिखाकर वह परोपकारी पुरुष चलता बना। वह जन्मांध पुरुष उसके पीछे बताए हुए रास्ते पर चल पड़ा, चलते ही गढ़ आया, जिससे बहुत प्रसन्न हुआ और मार्ग दिखाने वाले परोकारी पुरुष का अत्यन्त ही उपकार मानने लगा उनके गुण गान करता हुआ वह दरवाजे में घुसने के लिए गढ़ पर हाथ रख धीरे २ चलने लगा। कितनी ही देर बाद दरवाजे के समीप आया। दरवाजा करीब दो तीन हाथ दूर था कि, उसके सिर पर खुजली आने से व्यर्थ न ठहर कर खुजाते २ चलता गया, तब गढ़ का दरवाजा पीछे रह गया। फिर गढ़ को हाथ रख कर चलने लगा, बहुत चला परन्तु दरवाजा नहीं आया, जिससे विचार करने लगा कि अभी तक दरवाजा क्यों नहीं आया? नगर बड़ा तो नहीं है? जब चलते २ बहुत समय बाद उसी दरवाजे के समीप आया और

दो तीन हाथ दरवाजा दूर रहा कि, पहिले की तरह फिर सिर में खुजली आई, जिससे गढ से खुजाता २ चला गया, दरवाजा पीछे रह गया। उस नगर के दरवाजा एक ही था जिससे पूर्ण चक्कर लगावे तब दरवाजा आवे। ऐसे बहुत चक्कर काटे परन्तु **"कर्म दो पग आगे ही रहे"** दरवाजे के समीप आते ही कुछ न कुछ विघ्न आ उपस्थित होता, जिससे वह विचारा थक गया और निरुत्साही होगया। इतने में किसी एक दयालु पुरुष ने दया लाकर दरवाजा दिखा उसमें दाखिल किया, परन्तु दाखिल हुए पश्चात् वह अर्ध **नार** गाँव में लुभा गया और **भावनगर** नामक शहर प्राप्त नहीं कर सका। जो सद्भागी लघुकर्मी और अपरित संसारी होते हैं वे ही **भावनगर** नामक शहर में जाने योग्य भाग्यशाली हैं, भावनगर नामक शहर की शोभा अपूर्व और अवर्णनीय है।

यह मनुष्य भव इसी तरह बहुत २ भटकने पर अत्यन्त समय में और अत्यन्त श्रम से प्राप्त होता है। इस मनुष्य जन्म प्राप्त करने के मूल चार कारण **श्री जिनेश्वर भगवान** ने फरमाये हैं- **पगई भदयाये, पगई विणयाये, साणु कोशयाये, अमच्छरीयाये** अर्थात् जो प्रकृति के भद्रिक हों, प्रकृति से ही विनम्र हो, सब पर आक्रोस क्रोध रहित भाव रखते हों, और मत्सर भाव बहुत अभिमान न करते हों, ऐसे ही पुरुष मनुष्य जन्म प्राप्त कर सकते हैं। अपने भी इन चारों में से किसी एक का अवश्य सेवन किया होगा, तभी मनुष्य जन्म पाया है। इस जीव ने जन्म के पहिले गर्भ में भी कैसे २ दुःख उठाये हैं! नौ माह तक उलटे सिर झूलता रहा, गर्भ में नर्क के समान दुःख भोगे! सचमुच नरकवास के समान ही गर्भवास का दुःख वर्णित है गर्भवास की कितनी वेदना है? उसे **श्री जिनेश्वर भगवान** ने एक दृष्टान्त देकर साफ २ समझाया है कि, कोई मनुष्य जो कोढ़ रोग से अत्यन्त पीडित हो उसके शरीर के साड़े तीन क्रोड रोम में अग्नि से तपाकर उष्ण धग-धगती सूइयां घुसा दे और उस पर खार का पानी छिटके, जब उसे अत्यन्त दुःख हो तब उसे चैत्र, वैशाख माह की धूप में खड़ा रखे, कहो बन्धुओ! उस पुरुष को कैसी असह्य वेदना हो? उस दुःख को या तो वही जानता है या

सर्वज्ञ श्री वीतराग प्रभु ही जानते है। इससे भी अनंत गुनी वेदना
र्भ के जीव को गर्भवास में प्रथम मास मे भुगतनी पडती हे। दूसरे मास में
उससे दुगुनी इस तरह नौमें मास में नौगुनी वेदना भुगतनी पडती है। फिर
भाग्योदय हो तो जन्म के समय सीधी राह मिल जाती है, कदाचित् पापोदय
से टेडा रहा तो छुरी से फाटकर उसके शरीर को निकाल डालते हैं और माता
के शरीर के यत्न करते हैं। सुन्दरदास कवि ने कहा है कि—

❀ इन्द्र विजय छन्द ❀

जा दिन गर्भ संयोग भयो तव, ता दिन वुंद छीया हुती तांही,
रे! नवमास अधोमुख भूलत, वुडी रह्यो अशुचिरस मांही;
तारज विरज कोय हदे हसु, तू अव चालत देखत छांही,
सुंदर गर्व गुमान करे शठ, आपनी आदि विचारत नांही।

मतलव यह कि इस देह की उत्पत्ति केवल मलीन पदार्थों से हुई है। अशुचि का ही भंडार, मलमूत्र का भाजन यह देह है, गर्भ के अत्यंत क्रूर दुःख भोग कर यह जीव आया है अरे! भाग्योदय हो तो सवा नौ मास बीतने पर अच्छी तरह जन्म होता हे। कितने ही पापी कम आयु वाले जीव तो विचारे गर्भ के गर्भ में ही चय कर मर जाते हैं, वे विचारे मनुष्य नामक नगरी में ही महा पुण्योदय से बडी कठिनता से आये, परंतु आये न आये बराबर होगए। नगर की रचना देखने का भी उन्हें सोभाग्य प्राप्त न हुआ तथा कुछ सुकृत्य कमाई भी न कर सके। यही पूर्व पापोदय का निशान समझना चाहिये जिस तरह किसी भोजन करते हुए गरीब मनुष्य को भोजन पर से उठा दिया जाय तो उसने किसी वस्तु का स्वाद न लिया होने से यह विचारा मन में कितना पश्चात्ताप करें? इसी तरह कितने ही जीव गर्भ में ही मर जाते हैं, उनके लिये भी ऐसा ही समझना चाहिये। फिर गर्भवास का जीव माता के सुख से सुखी और माता के दुःख से दुःखी होता है, माता चूल्हे के पास बैठ कर रसोई करती है उस समय मानो वह आवा में पक रहा हो ऐसा भान होता है। माता जब खडी होती है तब यह गर्भ वाला जीव समझता है कि मुझे

आकाश में फैंक दिया, माता नीचे बैठती है तब वह समझता है कि मुझे पाताल में फैंक दिया। जब माता चक्की पीसने बैठती है तब वह समझता है कि मुझे कुम्हार के चाक पर चढा दिया हो, इस तरह नौ माह तक असह्य वेदनायें भोग रोता है तब महा मिहनत से जन्म होता है, परन्तु मनुष्य जन्म का कुछ भी लाभ न लेते उनका मनुष्य जन्म व्यर्थ चला जाता है इसलिये वे शोचनीय हैं। कितने ही जन्म लेने के पश्चात् तुरत ही मर जाते हैं, कई समय तो उन से माता की भी मृत्यु हो जाती है। ऐसे अनेक कष्ट सह कर इतनी अवस्था में यह शरीर पहुँचा है तो तेरा सद्भाग्य का उदय हुआ समझना चाहिये। इतनी अवस्था में यह शरीर पहुचने में कुछ कम विघ्न नही आये। कितनी ही महान व्याधियें इसने पार की, कितनी ही घातें टलीं और शरीर बचा यही तेरे पुण्य की निशानी है, तो हे प्राणी तू विचार कर कि इस शरीर में क्या २ भरा है? तू इसका अभिमान मत कर, मोहित मत हो, इस शरीर में कुछ इत्र, केशर, कस्तूरी या दूसरी कोई सुगंधित वस्तु नहीं भरी है। कहा है कि—

कवित्तः—जे शरीर मांही तू अनेक सुख मानी रह्यो,
ताही तू विचार यामें कौन बात भली है;
मेद मज्जा मांस रग रग में रगत भर्यो,
पेट हु पिटारी सीमे ठौर ठौर मली है;
हाड़नसु भर्यो मुख हाड़नके नेन नाक,
हाथ पांव सोउ सब हाड़नकी नली है;
सुंदर कहत याही देखी जन्म भूले कोई,
भींतर भंगार भरी ऊपर तो कली है ॥१॥

सारांश यह कि सात धातु से यह शरीर बधा है, ऊपर तो चमडा मढ़ा है जिससे सुदर नजर आता है परतु अदर तो दुर्गंध ही दुर्गंध है। तू दूसरों को देख कर क्या छि छि करता है? तू गुमान त्याग और दूसरों का भला तथा कुछ आत्म हित कर। फिर विचार कर कि गर्भ में तेरी कैसी अवस्था थी? माता जब पाखाने जाती थी तब सब अशुची तेरे नाक पर से होकर बहती थी

इसलिये तू मिथ्याभिमान त्याग कर कुछ भलमनसाई कर। अशुचिमय देह में कुछ सार निकाल ले। तत्वज्ञानी महापुरुषों ने मनुष्य जन्म को रत्न चिंतामणि के समान कहा है वह किस हेतु से? उसका विचार कर। समस्त शरीर गंदगी से पूर्ण भरा है, पाखाने का भंडार ही है। आंख में, कान में, नाक में, पेट में, मुख में इत्यादि नौंही द्वार में सिर्फ मलीनता ही भरी है तो उसमें चिंतामणि रत्न कहां छिपा होगा? अरे! जो खीर, मलाई, हलवापूरी, लड्डू, पेड़े, कलाकंद, जलेबी इत्यादि २ उत्तम पदार्थ खाने में आते हैं तो वे सब भी इस शरीर के संयोग से पेट में गए बाद अंतमुहूर्त में ही मलीनता में परिणित होजाते हैं अर्थात् उनकी अशुचि-विष्टा बन जाती है। चाहे जितना श्रेष्ठ और मूल्यवान भोजन किया जाय तो भी वह थोड़ी देर में अशुचि बन जाता है। वस्त्राभरण को भी मैले बना देता है। इसलिये तत्व से विचारले कहीं चिंतामणि रत्न नहीं मिलता। परन्तु सिर्फ सारभूत और अक्षय पद पाने का मुख्य कारण यह होने से इसे चिंतामणि रत्न के समान कहा है और धर्म भी इस शरीर से हो सकता है तथा यह महान् पुण्य से प्राप्त होता है और आत्मोन्नति करने योग्य अपूर्व शक्ति भी इस शरीर द्वारा ही प्रकट होती है, देवों के भले ही रत्नमय शरीर हो परन्तु वे उस शरीर से अक्षय केवल श्री प्राप्त करने के लिये बिल्कुल अशक्त हैं इसलिये मनुष्य जन्म को रत्न चिंतामणि के समान ही कहा है। यह बिल्कुल सत्य ही है। इसलिये आत्मोदय के अभिलाषी हे विवेकी बधुओ! इस गंदगी के भंडार रूपी शरीर में से धर्मरूपी रत्न ढूंढ कर निकालो और इस गंदगीमय शरीर का घमंड छोड़कर सार भूत वस्तु ग्रहण करो। सार भूत क्या २ है? जिसके लिये **श्री वीर भगवान ने** फरमाया है कि —

सारं दसण नाण। सारं तव नियम संजम शीलम्।
सारं जिणवर धम्म। सारं संलेहणा मरणम्॥१॥

अर्थात्:—इस संसारमें सारमें सारभूत एक सम्यग, दर्शन, ज्ञान, तप, नियम, सयम, शियल तथा **श्री जिनेश्वर भगवान** का दयामय पवित्र धर्म और समाधिपूर्वक संलेहणा सहित पंडित पन्ने मरना। येही इस संसार के सार पदार्थ हैं। इसलिये इस शरीर का गंदगी देह का गर्व त्याग कर धर्म साधन कर, भान भूलकर मनुष्य भव रत्न को विषय कीचड़ में फेंक निरुपयोगी मत बनो। कहा है कि —

आकाश में फेंक दिया, माता नीचे बैठती है तब वह समझता है कि मुझे पाताल में फेंक दिया। जब माता चक्की पीसने बैठती है तब वह समझता है कि मुझे कुम्हार के चाक पर चढा दिया हो, इस तरह नौ माह तक असह्य वेदनाए भोग लेता है तब महा मिहनत से जन्म होता है, परंतु मनुष्य जन्म का कुछ भी लाभ न लेते उनका मनुष्य जन्म व्यर्थ चला जाता है इसलिये वे शोचनीय हैं। कितने ही जन्म लेने के पश्चात् तुरत ही मर जाते हैं, कई समय तो उन से माता की भी मृत्यु हो जाती है। ऐसे अनेक कष्ट सह कर इतनी अवस्था में यह शरीर पहुँचा है तो तेरा सद्भाग्य का उदय हुआ समझना चाहियें। इतनी अवस्था में यह शरीर पहुचने में कुछ कम विघ्न नही आयें। कितनी ही महान व्याधियें इसने पार की, कितनी ही घातें टलीं और शरीर बचा यही तेरे पुण्य की निशानी है, तो हे प्राणी तू विचार कर कि इस शरीर में क्या २ भरा है? तू इसका अभिमान मत कर, मोहित मत हो, इस शरीर में कुछ इत्र, केशर, कस्तूरी या दूसरी कोई सुगंधित वस्तु नहीं भरी हे। कहा है कि—

कवित्तः—जे शरीर मांही तू अनेक सुख मानी रह्यो,
ताही तू विचार यामें कौन बात भली है;
मेद मज्जा मांस रग रग में रगत भर्यो,
पेट हुं पिटारी सीमे ठौर ठौर मली है;
हाड़नसु भर्यो मुख हाड़नके नेन नाक,
हाथ पांव सोउ सब हाड़नकी नली है;
सुंदर कहत याही देखी जन्म भूले कोई,
भींतर भंगार भरी ऊपर तो कली है ॥१॥

सारांश यह कि सात धातु से यह शरीर बंधा है, ऊपर तो चमडा मढ़ा है जिससे सुदर नजर आता हे परतु अदर तो दुर्गंध ही दुर्गंध है। तू दूसरों को देख कर क्या छि छि करता है? तू गुमान त्याग और दूसरों का भला तथा शुद्ध आतम हित कर। फिर विचार कर कि गर्भ में तेरी कैसी अवस्था थी? माता जब पाखाने जाती थी तब सब अशुची तेरे नाक पर से होकर बहती थी

करती है और वह भी पूर्ण पैसे हों तभी मिल सकती है, नहीं तो चाहिये जैसी उत्तम दवा भी मिलनी भी कठिन है, फिर भी रोग जाना न जाना प्रारब्ध पर निर्भर है। परन्तु गरीबों की आशीष तो आत्मा को सुखी करती है, महापुण्य उपार्जन करती है और उभयलोक में अभ्यंतर और बाह्य दोनों तरह से महा सुखशांति उत्पन्न कराती है, इसलिये अवश्य दुखी, अनाथ और गरीबों पर दया करना, ये लक्षण सब सत्पुरुषों के हैं, उन सत्पुरुषों के लक्षणों का तू उपासक बन और उत्तम मार्ग स्वीकार कर, तभी मनुष्य जन्म सफल हुआ समझ।

फिर यह मनुष्य जन्म बार २ नहीं मिलता, यह तो घुणाक्षर न्याय जैसा है कभी २ महा पुण्योदय से प्राप्त होजाता है। इसलिये सर्वज्ञ महापुरुषों ने इस मनुष्य जन्म को दश दृष्टांत देकर भी अत्यंत दुर्लभ कहा है। फिर भी जो वैभव में आसक्त बन इस अमूल्य प्राप्त अवसर को खो देते हैं, वे परलोक में पूर्ण पश्चात्ताप करते हैं। पश्चात् पछताने से आपदा नहीं मिट सकती और उसका बुरा फल उसे भुगतना ही पडता है। अब इस पर बन्दर बन्दरी का दृष्टान्त कहते हैं —

शुभ योग से बन्दर से मनुष्य होकर फिर बन्दर होने का पश्चात्ताप.

एक महा जंगल में बड़ के वृक्ष पर बन्दर बन्दरी का एक जोडा बैठा था, वे स्वभाव में अनेक विनोदयुक्त वार्तालाप कर आनन्द कर रहे थे। उस वृक्ष के पास ही एक बड़ा पानी का कुण्ड था, उसमें बहुत समय से पानी भरा हुआ था। एक समय वे दोनों स्वाभाविक रीति से उसमें नहाने लगे, नहाते ही किसी शुभ योग के उदय से वे दोनों पशुरूप से बदलकर स्त्रीपुरुष हो गए, वे मन में अत्यन्त आनंदित हुए और आश्चर्य करते हुए सोचने लगे कि, अहा! कैसा हुआ? आज अवश्य अपना भाग्योदय हुआ। इस कुण्ड में अपन कई समय नहाये परन्तु ऐसा समय तो कभी न आया, अच्छा जो हुआ सो अच्छा ही हुआ कि, अपन पशुरूप से बदलकर स्त्रीपुरुष हो गए यह कुछ कम आनन्द की बात नहीं है। यह सुनकर पुरुष बोला कि हे स्त्री! यह तो बड़ा ही अच्छा हुआ, आज का समय और चोघडियां अत्यन्त श्रेष्ठ है। परन्तु मेरा विचार है कि, जैसे अपन इस कुण्ड में गिरकर पशु से मनुष्य हुए तो अब दूसरी बक गिरें अपन अवश्य मनुष्य से देवरूप हो जायगे और सुन्दर शरीराकृति

शिखरिणीवृत्त—अहो हाडे चर्मेरस चरबी नाडी नस थकी,
सदा दुर्गंधी ते अपुनितपणानुं घर नकी;
रुडो ने रुपालो नजर करतां मात्र नरवो,
नथी एवो मारे नरहरी हवे देह धरवो;
अरे पापी आवुं हृदय भरवा भूतल विषे,
फरे चारे कोरे छलकपट राखी दश दिशे;
अरे ए पीड़ामां कठण प्रभुमां भाव करवो,
नथी एवो मारे नरहरी हवे देह धरवो;

इसलिये लक्ष्मी के मद में मस्त बन अभिमान के शिखर पर मत चढ़ और इस मानव जीवन को कुकर्म से काला मत कर। इस मनुष्य जन्म को सार्थक करने के लिये श्री भर्तृहरी के वैराग्य शतक में कहे अनुसार उत्तम लाभ प्राप्त कर तभी इस उत्तम मानव जीवन पाने का सार है। कहा है कि—

तृष्णा छिन्धि भज क्षमा जहि मद पापे रतिमा कृथा।
सत्य ब्रूह्यनुयाहि साधु पदवी सेवस्व विद्वज्जनान्॥
मान्यान् मानय विद्विषोप्यनुनय प्रच्छादय स्वान्गुणान्।
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरुदया मे तत् सता लक्षणम्॥१॥

अर्थात्—तृष्णा त्याग क्षमा को भज, अभिमान मत कर, पापमें प्रीति मत कर, सत्य वचन बोल इसी अनुसार चल, उत्तम पुरुषों का अनुकरण कर, विद्वान् और ज्ञानी पुरुषों का समागम कर उनकी सेवा कर, मान्य पुरुषों को उत्तम मान दे, परन्तु लक्ष्मी के मद में मस्त हो उनका अपमान मत कर। शत्रुओं को भी दुःखी देख उन पर दया लाकर और परोपकार कर, अपने गुणों को गुप्त रख। परन्तु आत्मश्लाघा के वशीभूत हो जहां तहां अपने गुण मत गा। उत्तम कीर्ति प्राप्त कर उसे उज्ज्वल रख, परन्तु अपकीर्तिकारक कुकृत्यों कर जिंदगी काली मत करो। दुःखी, अनाथ, गरीब, निराधार जीवों पर दया लाकर उनके गहन हृदय की आशीष ले; कारण कि उनकी आशीष वैद्य की दवा से भी अत्यन्त लाभकारी है। वैद्य की दवा तो सिर्फ शरीर को ही सुखी

करती है और वह भी पूण्य पसे हो तभी मिल सकती है, नहीं तो चाहिये जैसी उत्तम दवा भी मिलनी भी कठिन है, फिर भी रोग जाना न जाना प्रारब्ध पर निर्भर है। परन्तु गरीबों की आशीष तो आत्मा को सुखी करती है, महापुण्य उपार्जन करती है और उभयलोक में अभ्यंतर और बाह्य दोनों तरह से महा सुखशांति उत्पन्न कराती है, इसलिये अशरण दुःखी, अनाथ और गरीबों पर दया करना, ये लक्षण सब सत्पुरुषों के हैं, उन सत्पुरुषों के लक्षणों का तू उपासक बन और उत्तम मार्ग स्वीकार कर, तभी मनुष्य जन्म सफल हुआ समझ।

फिर यह मनुष्य जन्म बार २ नहीं मिलता, यह तो घुणाक्षर न्याय जैसा है कभी २ महा पुण्योदय से प्राप्त होजाता है। इसलिये सर्वज्ञ महापुरुषों ने इस मनुष्य जन्म को दश दृष्टान्त देकर भी अत्यंत दुर्लभ कहा है। फिर भी जो वैभव में आसक्त बन इस अमूल्य प्राप्त अवसर को खो देते हैं, वे परलोक में पूर्ण पश्चात्ताप करते हैं। पश्चात् पछताने से औषधी नहीं मिल सकी और उसका बुरा फल उसे भुगतना ही पड़ता है। अब इस पर बन्दर बंदरी का दृष्टांत कहते हैं —

शुभ योग से बन्दर से मनुष्य होकर फिर बन्दर होने का पश्चात्ताप.

एक महा जंगल में बट के वृक्ष पर बन्दर बंदरी का एक जोड़ा बैठा था, वे स्वभाव में अनेक विनोदवर्द्धक वार्तालाप कर आनन्द कर रहे थे। उस वृक्ष के पास ही एक बड़ा पानी का कुण्ड था, उसमें बहुत समय से पानी भरा हुआ था। एक समय वे दोनों स्वाभाविक रीति से उसमें नहाने लगे, घुसते ही किसी शुभ योग के उदय से वे दोनों पशुरूप से बदलकर स्त्रीपुरुष हो गए, वे मन में अत्यन्त आनंदित हुए और आश्चर्य करते हुए सोचने लगे कि, अहा! कैसा हुआ? आज अवश्य अपना भाग्योदय हुआ। इस कुण्ड में अपन कई समय नहाये परन्तु ऐसा समय तो कभी न आया, अच्छा जो हुआ सो अच्छा ही हुआ कि, अपन पशुरूप से बदलकर स्त्रीपुरुष हो गए यह कुछ कम आनन्द की बात नहीं है। यह सुनकर पुरुष बोला कि -हे स्त्री! यह तो बड़ा ही अच्छा हुआ, आज का समय और चोघड़ियां अत्यंत श्रेष्ठ है। परन्तु मेरा विचार है कि, जैसे अपन इस कुण्ड में गिरकर पशु से मनुष्य हुए तो अब दूसरी वक्त गिरें अपन अवश्य मनुष्य से देवरूप हो जायगे और सुन्दर शरीराकृति

पायगे, तब स्त्री ने कहा कि —हे स्वामीनाथ ! यह क्या कह रहे हो ? फिर से कुछ ऐसा सुन्दर अवसर आने वाला नहीं है यह तो मृगतृष्णा त्याग है, इसलिये अत्यन्त लोभ मत करो, अत्यन्त लोभ करने से "अतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट" होने का अवसर प्राप्त होगा और फिर अपने पश्चात्ताप का पार ही न रहेगा। इसलिये उत्तम पुरुषों ने कहा है कि –

अति लोभो न कर्तव्यो । अति लोभे विनाशनम् ।
अति लोभ प्रभावेन । सागर सागर गत ॥ १ ॥

अर्थात्—कभी विशेष लोभ मत करो, अत्यन्त लोभ करने से अवश्य निराश होना पड़ेगा, अत्यन्त लोभ के प्रभाव से **सागर** नामक सेठ सागर में गिरकर डूब कर मर गया, यहां भी ऐसा ही समझो।

इसलिये अत्यन्त लोभ न करो पुण्योदय से प्राप्त हुई मानव जाति में विशेष सन्तोष समझ आनन्द से रहो ! इस तरह उसने बहुत समझाया परन्तु वह बन्दर न माना और कहने लगा कि, हे स्त्री ! मैं तो अवश्य इसमें गिरूंगा और देवरूप बनूंगा। आज का समय अवश्य इसमें अनुपम और लाभदायक है। इसलिये अवश्य लाभ प्राप्त होगा। जब स्वाभाविक ही अपने को ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ है तो क्यों भूलना चाहिये ? ऐसा कह कर स्त्री के अत्यन्त मना करने पर भी वह विशेष सुख की आशा से उस पानी में कूद पड़ा, घुसते ही वह तो पुरुष रूप से बदल कर बन्दर हो गया। अहा ! कर्म की गति कैसी अचल और गहन है ? थोड़ी देर पश्चात् जब वह बाहर निकल रोने लगा और सिर कूट २ कर पश्चात्ताप करने लगा तब स्त्री ने कहा कि, हे स्वामीनाथ ! मेरा कहा आपने न माना और विशेष सुख की अभिलाषा से आप लालच में फँस भूल स्थिति में आ पहुँचे, अहा ! आशा कैसी मोह में फँसाती है ? आशा नदी में सब लोग डूब जाते हैं। मूल को त्याग विशेष लेने दौड़ना है वह अवश्य पश्चात्ताप करता है। आशा नदी का स्वरूप राजर्षि प्रवर श्री भर्तृहरी ने वैराग्य शतक में अच्छा समझाया है वे कहते हैं कि —

❀ शार्दूल विक्रीडित वृत्त. ❀

आशानामनदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला ।
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ॥

मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुंग चिंतातटी ।
तस्याः पारगता विशुद्धमनसः नन्दन्ति योगीश्वरा ॥

अर्थात् —इस संसारमें आशा नाम की एक बडी नदी बहती है, जिसमें नाना प्रकार के मनोरथरूपी पानी भरा है, जिसमें तृष्णारूपी बड़े २ तरंग उठते रहते हैं, जिसमें रागरूपी बड़े २ ग्राह (मगरमच्छ) प्रस्तुत हैं और जिस पर संकल्प विकल्प रूपी पक्षी उड रहे हैं, उस नदी के चिन्तारूपी दो बड़े किनारे हैं, जिसमें मोहरूपी बड़ी २ भंवरें हैं, जिससे यह नदी अत्यन्त दुस्तर और अत्यन्त गहन है। धैर्यरूपी बड़े २ वृक्ष को उखाड देती है, ऐसी आशा नाम की बडी नदी को तैर कर जो योगीश्वर महात्मा पार पाये हैं, वे सचमुच प्रशंसा पात्र हैं। इसलिये आशा नाम की नदी तैरना महा कठिन है। इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि, जो मनुष्य उत्तम नर रत्न पाकर भी लोभ लालच में फंस जहां तहां व्यर्थ दौडादौड किया करते हैं, करने का कार्य त्याग अकार्य करते हैं वे मनुष्य जन्म हार जाते हैं और उस बन्दर की तरह पीछे पूर्ण पश्चात्ताप करते हैं। कहा है कि —

❋ मालिनी वृत्त ❋

सुजन मन विचारो, आपणुं हित धारो,
रजनी दिवस प्यारो, धर्म ते श्रेष्ठकारो;
मनुष्य जनम आते, शुभ कृत्योथी लाध्यो,
अघ अधिक न थावा, पुण्यनी पाल बांधो,

इसलिये हे सद्विवेकी सुजनो! मोहममता में अत्यन्त न फंस प्रेम से पवित्र धर्म का आराधन करो कि, जिससे अनादिकाल से अपनी यह जीवात्मा भवाटवी में भटकती हुई रुक जाय और इसके जन्म, जरा, मृत्यु आदि त्रिविध ताप टल जाय तथा अक्षय मोक्षलक्ष्मी प्राप्त होजाय। यही मनुष्य जन्म का सार है ऐसा उत्तम लाभ महद्भाग्य से ही मिलता है ऐसा **श्री सर्वज्ञ भगवान** ने फरमाया है।



पायगे, तब स्त्री ने कहा कि —हे स्वामीनाथ ! यह क्या कह रहे हो ? फिर से कुछ ऐसा सुन्दर अवसर आने वाला नहीं है यह तो घुणाक्षरी न्याय है, इसलिये अत्यन्त लोभ मत करो, अत्यन्त लोभ करने से "अतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट" होने का अवसर प्राप्त होगा और फिर अपने पश्चात्ताप का पार ही न रहेगा। इसलिये उत्तम पुरुषों ने कहा है कि –

अति लोभो न कर्तव्यो । अति लोभे विनाशनम् ।
अति लोभ प्रभावेन । सागर सागर गत ॥ १ ॥

अर्थात् —कभी विशेष लोभ मत करो, अत्यन्त लोभ करने से अवश्य निराश होना पड़ेगा, अत्यन्त लोभ के प्रभाव से **सागर** नामक सेठ सागर में गिरकर डूब कर मर गया, यहां भी ऐसा ही समझो ।

इसलिये अत्यन्त लोभ न करो पुण्योदय से प्राप्त हुई मानव जाति में विशेष सन्तोष समझ आनन्द से रहो ! इस तरह उसने बहुत समझाया परन्तु वह बन्दर न माना और कहने लगा कि, हे स्त्री ! मैं तो अवश्य इसमें गिरूंगा और देवरूप बनूंगा। आज का समय अवश्य इसमें अनुपम और लाभदायक है। इसलिये अवश्य लाभ प्राप्त होगा। जब स्वाभाविक ही अपने को ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ है तो क्यों भूलना चाहिये ? ऐसा कह कर स्त्री के अत्यन्त मना करने पर भी वह विशेष सुख की आशा से उस पानी में कूद पड़ा, घुसते ही वह तो पुरुष रूप से बदल कर बन्दर हो गया । अहा ! कर्म की गति कैसी अचल और गहन है ? थोडी देर पश्चात् जब वह बाहर निकला रोने लगा और सिर कूट २ कर पश्चात्ताप करने लगा तब स्त्री ने कहा कि, हे स्वामीनाथ ! मेरा कहा आपने न माना और विशेष सुख की अभिलाषा से आप लालच में फँस मूल स्थिति में आ पहुँचे, अहा ! आशा कैसी मोह में फँसाती है ? आशा नदी में सब लोग डूब जाते हैं । मूल को त्याग विशेष लेने दौड़ता है वह अवश्य पश्चात्ताप करता है। आशा नदी का स्वरूप राजर्षि प्रवर श्री भर्तृहरी ने वैराग्य शतक में अच्छा समझाया है वे कहते हैं कि —

❀ शार्दूल विक्रीडित वृत्त. ❀

आशानामनदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला ।
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ॥

फाल अरे ! निजगरा धरे कर कौशल त्या उलरेघ येघानु,
कोटि उपाय करो कदि केशव भाई भविष्य नहीं मरघानु,
आथडवु पडवु रडवु मरवु उगवु सहुने सिर आवे,
सद्गुण दुर्गुण भाव अभाव विवेक विचार न काई बतावे,
डापण घापण आपण लायक होय न औषध कोई करवानु,
कोटि उपाय करो कदि केशव भाई भविष्य नहीं मरवानु ॥ २ ॥

जिसका भाग्य विपरीत है वह चाहे जितने फाँफे मारे परन्तु कुछ नहीं मिलता। अहा ! प्रारब्ध की गति कैसी विचित्र है ! कि जो बड़े राजा होते हैं वे एक क्षणभर में रंक बन जाते हैं और जो रंक होते हैं वे एक क्षणभर में राजा बन जाते हैं। यह भाग्य की प्रबलता नहीं तो और क्या है ! पाठकों को इस पर बरोदा नरेश का दृष्टान्त असरकारक मालूम होगा। जिन **मल्हारराव महाराजको** स्वप्न में भी भान न था कि मेरा राज्य जायगा और मैं पराधीनता की पराकाष्टा में पहुँच कारागृह में जीवन बीता मेरा आयुष्य पूर्ण करूंगा सो भी भविष्य के प्रबल होने से ऐसा समय मिला और ऐसा ही हुआ और एक सामान्य कुटुम्ब का बालक जो बिलकुल सामान्य स्थिति में पलता था जिसने स्वप्न में भी न सोचा होगा कि, मैं बरोड़ा के राज्यासन पर बैठूंगा और मैं गरीब मनुष्य महाराज **श्री सयाजीराव गायकवाड़ सरकार के** सुनाम से दुनियाँ में प्रसिद्ध होऊंगा और पहिचाना जाऊंगा ! परन्तु उसके शुभ भाग्योदय से यह समय मिल गया और बरोड़ा नरेश के नाम से प्रख्यात होने का समय भी आगया तथा घणी खम्मा गुर्जर नरेश गायकवाड सरकार **श्री सयाजीराव महाराजको** ऐसी बिरुदावली सुनने का समय भी प्राप्त हो गया। इसलिए इस संसार में सचमुच भाग्य ही बडा बलवान है। कहा है कि —

दैवं फलति सर्वत्र। न विद्या न च पौरुषम्।
पाषाणस्य कुतो विद्या। येन देवत्वमागत ॥ ३ ॥

अर्थात्:—सर्वत्र भाग्य ही फलता है, विद्या या पुरुषार्थ फलीभूत नहीं होते। उदाहरणार्थ पाषाण में विद्या या पुरुषार्थ कुछ नहीं है परन्तु सलावट के हाथ उसकी मूर्ति बनकर देवरूप बनती है और हजारों मनुष्य नमस्कार करते

विधिरेव मनुष्याणां । बलवान्प्रोच्यते बुधैः ।
शुभं वा यदि वाऽशुभं । तदाधीनं विवर्तते ॥२१॥



अर्थः— विद्वानों का कथन है कि, मनुष्यों का भाग्य ही बलवान है, शुभ या अशुभ कार्य उनके ही आधीन होते हैं। कर्म के सामने मनुष्यों का कोई भी बल काम नहीं दे सकता—नहीं चल सकता। प्रत्येक प्राणी सिर्फ प्रारब्ध कर्म देव के ही वशीभूत है।

भावार्थः इस मनुष्य लोगमें सचमुच प्राणियों का विधि (प्रारब्ध) ही बलवान है ऐसा प्राचीन पण्डितों का कथन है। शुभ या अशुभ कर्म प्रारब्ध के ही आधीन हैं। जब किसी कार्य में विजय होती है तो मनुष्य सोचता है कि, यह मेरी सामर्थ्य से हुआ है परन्तु ऐसा मिथ्याभिमान सर्वथा त्यागना चाहिए, कारण कि पूर्व प्रारब्ध ठीक हो तभी अपने कार्य सफल होते हैं ऐसा चौकस समझना चाहिये।

प्राय सब मनुष्य हमेशा सुख की आशा किया करते हैं, कोई भी प्राणी यह नहीं चाहता कि मुझे दु ख मिले, मेरे व्यापार में हानि हो परन्तु यह सब सुख होना अपने हाथ में नहीं है, पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्म के उदयानुसार जीव को हमेशा सुखदु ख का प्राप्ति होती है। भगवद् गीता में भी साफ २ कहा है कि —

यथा धेनु सहस्त्रेषु। वत्सो विदति मातरम्।
तथा पूर्वकृत कर्म। कर्तारमनु गच्छति ॥ ९ ॥

अर्थात्—ज्यों हजारों गो के झुण्ड में से बछड़ा अपनी माता को ढूंढ लेता है, उसी तरह पूर्वोपार्जित कर्म भी अपने कर्ता को ढूंढ लेते हैं। इस ससार म सब से बलवान कर्म ही है जैसा मनुष्य का भाग्य होता है वैसा ही उसे फल मिलता है, करोड़ों उपाय भी किये जायं परन्तु भविष्य कभी भी नहीं टलता। केशाकृति में कहा है कि —

❀ इन्द्र विजय छंद ❀

आतमा हरखाय निरतर जे सुजनी अति अद्भुत आशा,
ते सुख स्वप्न विषे पण दुलभ आपर सार घणाय तपास्या,

काल अरे ! विकराल धरे कर कोदण्ड त्यां अलगेंय देखानुं,
कोटि उपाय करो कदि केशव भाई भविष्य नहीं मटवानुं,
आवडुं पडवुं रडवुं मरवुं उगवुं सहुने शिर आवे,
सद्गुण दुर्गुण भाव अभाव विवेक विचार न कोई बनावे,
रूपण धापण आपण लायक होय न औषध कोई करवानुं,
कोटि उपाय करो कदि केशव भाई भविष्य नहीं मटवानुं ॥ २ ॥

जिसका भाग्य विपरीत है वह चाहे जितने फाँफे मारे परन्तु कुछ नहीं मिलता। अहा! प्रारब्ध की गति कैसी विचित्र है! कि जो बडे राजा होते हैं वे एक क्षणभर में रंक बन जाते हैं और जो रंक होते हैं वे एक क्षणभर में राजा बन जाते हैं। यह भाग्य की प्रबलता नहीं तो और क्या है? पाठकों को इस पर बरौदा नरेश का दृष्टान्त असरकारक मालूम होगा। जिन **मल्हारराव महाराजको** स्वप्नमें भी भान न था कि मेरा राज्य जायगा और मैं पराधीनता की पराकाष्ठा में पहुँच कारागृह में जीवन बीता मेरा आयुष्य पूर्ण करूंगा सो भी भविष्य के प्रबल होने से वैसा समय मिला और ऐसा ही हुआ और एक सामान्य कुटुम्ब का बालक जो बिलकुल सामान्य स्थिति में पलता था जिसने स्वप्न में भी न सोचा होगा कि, मैं बरोदा के राज्यासन पर बैठूंगा और मैं गरीब मनुष्य महाराज **श्री सयाजीराव गायकवाड सरकार के** सुनाम से दुनियाँ में प्रसिद्ध होऊंगा और पहिचाना जाऊंगा! परन्तु उसके शुभ भाग्योदय से वह समय मिल गया और बरोदा नरेश के नाम से प्रख्यात होने का समय भी आगया तथा धर्म्मी धम्मा गुर्जर नरेश गायकवाड सरकार **श्री सयाजीराव महाराजको** ऐसी बिरदावली सुनने का समय भी प्राप्त हो गया। इसलिए इस संसार में सचमुच भाग्य ही बडा बलवान है। कहा है कि —

भाग्यं फलति सर्वत्र। न विद्या न च पौरुषम्।
पाषाणस्य कुतो विद्या। येन देवत्वमागत ॥ १ ॥

अर्थात्:—सर्वत्र भाग्य ही फलता है, विद्या या पुरुषार्थ फलीभूत नहीं होते। उदाहरणार्थ पाषाण में विद्या या पुरुषार्थ कुछ नहीं है परन्तु संगतरास के हाथ उसकी मूर्ति बनकर देवरूप बनती है और हजारों मनुष्य नमस्कार करने

है तो कहिये भाग्य ही प्रबल हुआ न ? उस पाषाण ने जंगल में क्या उद्यम किया था ?

नाराच छंदः—वडोदरे वसेल जे सयाजीराव सांभरे,
अधिपति नसीबनी गति थई जुओ खरे;
धणी छतां मल्हारराव केदमां गयो अरे,
गति विचित्र कर्मनी तुं हर्षशोक शुं करे !

इसलिए कर्म की गति विचित्र है ! हमेशा प्राणी सुख की अभिलाषा रखते हैं परन्तु अचानक दु ख आ उपस्थित होजाता है तब लोग कहते हैं कि, यह तो भाई ! भूमि में से भाले निकले ! परन्तु वास्तविक ऐसा नहीं है, सच समझिये कि, हर्षपूर्वक पूर्वभव में किये हुए अपने ही कर्म के भाले निकल कर उदय में आये हैं, इसलिए विवेकी होते हैं तो समझ कर समभाव से सहन करते हैं और अज्ञानी हाय तोबा मचाते हैं उनको धिक्कारते हैं और अनेक नये कर्म उपार्जन कर लेते हैं। फिर भावी किसी से टाली नहीं टल सकती। दुनियां में प्रत्येक के उपाय हैं परन्तु भावी की प्रबलता मिटाने का कोई भी उपाय किसी के पास भी दृष्टिगत नहीं होता। चाहे जितने उपाय किये जाय परन्तु होनहार होकर ही रहता है, मिथ्या नहीं होता।

भावी मिथ्या नहीं होता इस पर श्री कृष्ण वासुदेव का दृष्टान्त.

श्री द्वारिका नगरी के महाराजा त्रिखंडाधिपति **श्रीकृष्ण वासुदेव** को द्वारिका नगरी का विनाश तथा हृदयभेदक अपने मृत्यु का समय भविष्य **सर्वज्ञ श्री नेमनाथ प्रभु ने** प्रश्नोतर में उनसे फरमाया और उसका उपाय भी बतलाया और कहा कि, **द्विपायन ऋषि** के हाथ से तुम्हारी नगरी का शराप से नाश होगा और तुम्हारे जरा नामक बन्धु तुम्हें मारेंगे। परन्तु जबतक तुम्हारी नगरी में आयंबिल का व्रत अखण्ड चलता रहेगा

तबतक उसके नाश करने का सामर्थ्य द्विपायन ऋषि में न आयगा । अहाहा! कैसा सरल उपाय! कैसा भविष्य! हमेशा नगरी में आयंबिल व्रत करने के लिये नरियल घुमाना प्रारम्भ किया । हमेशा जिस घर में नरियल जाता उस घर में एक आयंबिल हुए विना नहीं रहता और गांव से शराब भी निकलवा कर गिरनार की गहन खाई में फिकवा दी और किसी ने भी शराब का व्यवहार मत करना वैसा सख्त हुक्म निकाल दिया, उधर **जरा** नामक भाई की जिसके हाथ से अपनी मृत्यु होना ठहरा है वह **जरा कुंवर** भी अपने बंधु के बचाव के लिये राज्य वैभव के सुख त्याग कर कुसुम्बी नामक वन में जा रहा। इस तरह सब अनुकूल उपाय किये और अनिष्ट निवृत्ति टाल दी, परन्तु दैव की गति भिन्न ही है, **"भावि प्रवल के सामने कुछ नहीं चल सकता"** जहां दैव स्वयं ही प्रतिकूल है, वहां मनुष्य कृत प्रयत्न अनुकूल हुए तो काम दे सकते हैं? दैव कोपता है वहां देव भी धूजने लगते हैं, अन्त में उनके किये हुए प्रयत्न काम न आये और **भगवान श्री नेमनाथ** के कथनानुसार ही सब हुआ । नगरी का विनाश तथा अपना अन्त भी हुआ । उसका सब वर्णन हृदयभेदक है, उनका आदि समय और अन्त समय भले २ मनुष्यों के अश्रुपात करा देता है और मध्यम समय में जितना उन्हें सुख मिला है उसका वर्णन भी अशक्य है । वे बत्तीस हजार स्त्रियों के स्वामी थे, सोलह हजार मुकुटबन्ध राजाओं की मुकुटमणि की प्रभाजल से अपने चरणकमलों को धुलाते थे, ऐसे छत्रपति महाराज को ।

दोहा:-जन्मतां कोइये जाण्या नहीं, मरतां नहीं रोनार;
तरशे तरफडे त्रिकमो, नहिं कोई पाणीनो पानार.
क्यां जन्म्या क्यां उछर्या! क्यां लडया छे लाड!
तुलसी ए शरीरका, कहां पडेगा हाड!

हृदय को विव्हल बना देने वाला, चाहे जैसे कठिन मन वाले की चक्षुओं से भी आंसू गिराने वाला इन महा पुरुष का चरित्र सविस्तर पढ़ने की इच्छा रखने वाले प्रिय पाठक त्रिशष्टी शला का पुरुष चरित्र में देखें। सारांश कि -भारी

प्रबल अत्यन्त विचित्र हैं, मनुष्यकृत कारीगरी उसपर तनिक भी नहीं चल सकी। इतना सच है कि, मनुष्य का भविष्यकाल फिरता है तब उसकी मतिमें भी फरक हो जाता है, उसका परिणाम मालूम भी हो जाय तो भी वह कार्य निडर करता रहता है, जिस परसे समझ सके है कि, वह स्वयं ऐसा नहीं करता परन्तु उसका भविष्य भुलाकर उसे उस मार्ग में ले जाता है। स्वयं बहुत प्रयत्न करता है और अन्य लोग भी उसे उस कार्य को करने में निषेध करते हैं तो भी वह क्रिया ही करते हैं। कहा है कि –

पौलस्त्य कथमन्य दारहरणे दोष न विज्ञातवान्।
रामेणापि कथं न हेमहरिणस्या सम्भवा लक्षित ॥
अक्षश्चापि युधिष्ठिरेण रमता प्राप्तोह्यनर्थं कथं।
प्रत्यासन्न विपत्ति मूढ मनसां प्रायो मति क्षीयते ॥ १ ॥

अर्थात्—रावण परस्त्री के हरण करने में क्या कुछ दोष नहीं है ऐसा मानता था? तथा राम सुवर्ण का मृग होना असम्भव है ऐसा न समझते थे? तथा जुए खेलने में अनर्थ है ऐसा युधिष्ठिर नल आदि न जानते थे? परन्तु प्राय मनुष्य का विपत्तिकाल समीप आता है तब उस की मति भ्रष्ट हो जाती है और वह उन्मार्ग पर लग जाता है। नहीं तो भावि बलवान होता है वह कैसे सिद्ध हो सका है! चाहे जिस तरह प्राणी को भुला देता है, सन्मार्ग दर्शक कट्टर शत्रु समझे जाते हैं। लोग विरुद्ध कार्य कर रहा हूँ ऐसा स्वयं समझता है परन्तु किया ही करते हैं। कर्म की बलिहारी इसी का नाम है कि, भावीभाव जैसा हो उस तरफ जल्दी खिंच जाता है।

कर्म के आधीन सब जगत है, कर्म जैसे नाच नचाते हैं सब नाचते हैं, ज्यों बन्दर को मदारी अपनी इच्छानुसार खिलाता है। कर्म के लिये ऐसा समझना। बड़े २ मुनियों को भी वह पछाड देता है, सयम मार्ग से भ्रष्ट कर गृहस्थाश्रमी बना देता है। **नंदीषेण मुनि, आर्द्रकुमार मुनि, आषाढ़ भूति अणगार, अरणीक मुनि** इत्यादि अनेक महात्माओं को भी पद भ्रष्ट कर कर्म ने इच्छानुसार नचाये, खिलाये, रमाये और आत्मभान से भ्रष्ट किए।

कर्म ने एलायची कुमार को अनेक वैभवोंसे भ्रष्टकर नट बनाया, जो हजारों को आनन्द दे सकता था उसे आनन्द प्राप्त करने का पिपासु बनाया, एवन्ता मुनि से पानी में पात्र रख रम्मत कराई। इसी तरह तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव इत्यादि सब को रमाये। जो कर्म क्षणभर में हँसाते हैं, वे ही कर्म क्षणभर में रुलाते हैं, क्षणभर में आनन्दसागर में डुबाते हैं, तो क्षणभर में भयकर परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं। इस तरह अनेक रंग से इस आत्मा को रमाते हैं। जिसके समस्त दुनिया प्रतिकूल हो और एक सिर्फ भाग्य ही अनुकूल हो तो किसी की सामर्थ्य नहीं कि, उसका कोई कुछ कर सके। और जिसके समस्त दुनिया अनुकूल हो और सिर्फ एक दैव ही प्रतिकूल हो तो किसी की सामर्थ्य नहीं कि, उसके भाग्य को फिरा सकें और उसका बचाव कर सकें। लाख प्रयत्न करने पर भी भाग्य नहीं टल सकता। कहा है कि —

सकलापि कला कलावतां। विफला पुण्य कलाविना किल।
सकले नयने वृथा यथा। तनुभाजां हि कनीनिकां विना ॥१॥

अर्थात् —कलावालों की सब कलाएं पुण्य बिना निष्फल हैं। जैसे आंख की पुतली बिना दोनों आंख कुछ काम नहीं दे सकतीं।

चंद्रकान्त नामक गुजराती प्रेस बम्बई वाले के वेदान्त ग्रन्थ में एक बात है कि, रावण के घर पुत्री हुई विधाताने उसके लेख लिखे, लिख कर जब वह जाने लगी तब रावण ने पूछा कि, बोल तूने क्या लिखा है? विधाताने कहा कि कर्मानुसार फल लिख दिये हैं, उसका पति तुम्हारा विष्ठा उठाने वाला मेहतर ही होगा जिससे रावण बड़ा क्रोधित हुआ और ऐसा न हो इस लिये उसने उस मेहतर का अंगूठा काटकर महा सागर में जहां कोई मनुष्य न हो ऐसे निर्जन द्वीप में उसे रखवा दिया परंतु अन्त में उस कन्या का वही पति हुआ। वाह वाह! संसार में भाग्यबल की भी कैसी अद्भुत विचित्रता है। दुनिया में क्या फलता है?

नेवाकृतिः फलति नैव कुलं च शीलं।
विद्याऽपि नैव न च यत्नकृतापि सेवा॥
भाग्यानि पूर्व तपसा खलु संचितानि।
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः॥२॥

अर्थात्:—आकृति, कुल, शील, विद्या, अत्यन्त यत्नपूर्वक की हुई प्रति सेवा तथा पुरुषार्थ इत्यादि कुछ नहीं फलीभूत होता परन्तु पूर्वभव में जप, तप आदि से सञ्चित किये हुए पुण्य ही पुरुष के फलते हैं ज्यों समय पाकर वृक्ष फलते हैं त्यों शुभाशुभ कर्म ही प्राणियों के फलते हैं। इसलिये विवेकी पुरुषों को सुखदुःख आदि में समभाव रख कर सब सहन करना चाहिये। सुखदुःख दिन में सूर्य की तरह घूमा करते हैं। कहा है कि—

दोहा-संकट आवे सैकड़ों, धीरज धरे सुजाण,
मूरख जन मुंजाई मरे, भूले भान निदान;
विश्व विषे वसनारने, सुखदुःख पडे अपार,
धैर्य धर्मथी सुख मिले, बनवानुं बननार.

इसलिये जो फल होने वाला है वह अवश्य होकर रहता है विना हुए नहीं रहता। उसके सामने अनेक यत्न कोटि उपाय भी काम नहीं दे सकते तो भी कितने ही भावी की प्रबलता मिटाने का प्रयत्न किया ही करते हैं, परन्तु अन्त में वैसा ही होता है तब पश्चात्ताप करते हैं क्योंकि उनका खुद का कुछ भी जोर नहीं चल सका, **"लिखा लेख मिथ्या हो न एक"** अब इसपर **आर्द्रकुमार मुनि** का दृष्टांत कहते हैं—

निर्माण भोग अवश्य भोगना पड़ते हैं :—
आर्द्रकुमार मुनि का दृष्टांत.

अनार्य अरबस्तान देश में, आर्द्रक नामकी ऋद्धिसिद्धि से भरपूर और मनोहर एक नगरी थी वहां **आर्द्रक** नामक राजा राज्य करता था, उसके **गुणसुन्दरी** नामक पटरानी थी। वह रूप और शियल गुण से पूर्ण तथा चौसठ कला में प्रवीण थी, यथा नाम तथा गुण वाली रानी के साथ सुख भोगते राजा आर्द्रक के एक पुत्र पैदा हुआ। उसका बारहवें दिन महोत्सव कर मातापिता ने। **आर्द्रक कुमार** नाम रखा जब कुमार आठ वर्ष का हुआ

तब मातापिता ने उसे पढ़ने भेजा और थोड़े ही दिनों में वह पढ़ लिख कर बहत्तर कला में पारांगत विद्वान होगया और पश्चात् सोलह वर्ष का हुआ तब मातापिता ने रूपवान, कुलवान तथा गुणवती स्त्री के साथ उसका व्याह कर दिया।

एक दिन उस **आद्रक नगरी** के व्योपारी किराना भर कर देशावर व्योपारार्थ गए, वे अनेक गाव घूमते फिरते **मगधदेश** में **राजगृही** नामक नगरी में आये वहां **श्रेणिक** नामक राजा राज्य करते थे। उनके **अभयकुमार** नामक पुत्र थे, वे चार बुद्धि के निधान और जैन धर्म में महा दृढ़ परिणाम वाले और सत्याग्रही परम् अचल हठी थे।

श्रेणिक राजा के साथ सभा में कुमार बैठे थे, उस समय आद्रक नगरी के व्योपारियों ने आकर श्रेणिक राजा को भेंट दी। उस समय अभयकुमार ने उस देश के क्षेमकुशल समाचार पूछे, तब आद्रक नगरी के व्यापारियों ने उस नगरी के वर्णन के साथ २ आद्रकुमार का भी हाल कहा कि हमारे राजकुमार भी आप जैसे ही गुणवान, रूप, कला के निधान और अत्यंत बुद्धिमान हैं यह सुन कर **अभयकुमार** ने कहा कि तुम अपने देश जाओ तब मुझे मिलकर जाना। अत में वे व्योपारी स्वदेश जाते समय अभयकुमार से मिले उस समय अभयकुमार ने राजी खुशी का पत्र लिख कर व्योपारियों को दे दिया, उसमें लिखा था कि "मैं आपसे मिलने के लिये अत्यंत आतुर हूं। आपके कोमल हस्तलिखित पत्र पढ़ने की मैं हमेशा इच्छा रखता हूं, इसलिये आप अपनी खुश खबरी निरंतर लिख भेज कर संतोष प्रदान करेंगे।" यह पत्र व्योपारियों ने अपने देश में जाकर आद्रकुमार को दिया, उस पत्र को पढ़कर आद्रकुमार बहुत प्रसन्न हुआ और मिलने जैसा आनंद माना तथा उन व्यापारियों से कहा कि भाई तुम फिर कभी उस देश को जाओ तो मुझ से जरूर मिलकर जाना। व्योपारी आज्ञा ले अपने घर आये। पश्चात् आद्रकुमार अपने मन में सोचने लगे कि मैं ऐसे गुणवान पुरुष से कब मिलूं? और उन्हें अच्छी से अच्छी वस्तु क्या भेजूं? ऐसा सोच उन्हों ने बहुत मूल्य वाले आभरण आदि एक डिब्बे में बंद कर उस पर आद्रकुमार का नाम लिख तैयार रक्खा। पश्चात् एक समय जब व्योपारी किराना आदि लेकर जाने लगे तब

तरह से मुझे फसाने की व्यवस्था हो रही है, इसलिये वे दृढ रहे और दोनों पाँव पकड कर खडी रहीं, श्रीमती से एकदम पाँव छुडाकर तिर्छी निगाह देखते चलते बने। कुमारी विचारी अफसोस करती वहीं खडी रही। राजा को खबर लगते ही उन्होंने रत्न लेने के लिये मनुष्य भेजे, परन्तु देवने उन्हें रोक दिये और कहा कि, जो इस कुमारी को व्याहेगा वही इन रत्नों का मालिक होगा। फिर मातापिता को खबर हुई वे वहा आये और कुमारी को घर चलने के लिये खूब समझाने लगे और सब धन भी उसके ही घर ले जाने के लिये देव ने भी फरमा दिया था परन्तु कुमारी ने मन में निश्चय कर लिया था कि,— " यदि व्याहूंगी तो उन्हीं के साथ, दूसरे तो सब भाई बाप हैं " ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा धारण कर वहीं उपस्थित रही और दानपुण्य करती संतोष से वहीं रह कर दिन व्यतीत करने लगी।

जब मुनि श्री आर्द्रकुमार उससे छूटे तब उन्होंने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि, अब इस शहर में नहीं आना ही अच्छा है! परन्तु कर्म बलवान है उसके समीप तक कौन पहुच सकता है? भावीप्रबल के योग से वे ही मुनि फिरते २ बारह वर्ष बाद नगरी में पधारें और मासक्षमण के पारणे आहारादि लेने के लिए भीक्षाचारी करते उस गाव में आयें, उस समय उस श्रीमती कुमारी ने अपने महल के झरोखे से उस मुनि को देखा, उनके चरण कमल में एक पद्म का चिन्ह था वह उसने अपने कब्जे से छूटने के समय चमकता देखा था उसी संकेत से पहिचान उन्हें दासी द्वारा ऊपर बुलायें और आहार लेने के बहाने बुलाया। ऊपर चढते ही कुमारी ने सब द्वार खिडकियां बन्द करने का हुक्म फरमाया। जब ऊपर मुनि आये तब मिष्ट मोदक की एक थाल भर कर सामने लाई और संसार सम्बधी मन मोहक शब्द सुनाने लगी और विशेष में कहा कि हे मेरे प्रियतम प्राणनाथ! मंदिर से छिटक गये थे परन्तु अब यहा से कैसे जाओगे? कहां जाना चाहते हो? बारह वर्ष पहले मंदिर से आपने मेरे साथ सम्बध किया था वही मैं आपकी स्त्री हूं। ऐसा कह उन्हें पकडने के लिए अत्यंत आतुर हो आग्रह के साथ नम्रता और विनयपूरित प्रेम वचनों से उन्हें खूब समझाने लगी।

उस समय वह देव भी वहां उपस्थित होगया और बोला कि हे महानुभाव! समझो २! यह समय मनोहर है। हे मुनि! सच समझिये कि, आपके

भाग्य में एक स्त्री अवश्य है। इसलिए इस देवांगना के समान स्वरूपवान स्त्री से ब्याह करो और उसकी प्रेम पूर्ण मांग स्वीकार करो। नहीं तो कोई ऐसी क्लेशित मिलेगी कि, अवश्य तुम्हें संसार दुःखमय ही जचेगा। इसलिए "लक्ष्मी आती हुई को त्याग कर मुंह धोने न बैठो" ऐसा कह देव तो चलागया तो भी मुनि करात्कार नीचे उतरने लगे तो जीने में एक दासी बैठी हुई देखी, उन्होंने एक खिड़की जो खुली हुई थी उस ओर दृष्टि फेंक मन में सोचा कि, मैं चाहूं तो लब्धि द्वारा इस खिड़की से नीचे उतर जा सकता हूं, यदि मैं यहां रहना ही पसंद करूं तो यह बिचारी कन्या मेरा क्या कर सकती है?

आप में नीचे उतर जाने की पूर्ण शक्ति-अपूर्व सामर्थ्य थी परन्तु आप हृदय के साथ सोचने लगे कि, जो भाग्य में होगा वह तो अवश्य ही भोगना होगा, बिना भोगे छुटकारा होगा ही नहीं इसलिये भावी प्रबल है, तीनों लोक में कौन फिरा सकता है? कहा है कि—

यत्कर्म विधिना ललाटे लिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः।

इस वचन पर ध्यान दे अपने क्रोध को रोक आप अन्त में यहीं रहे, यहां संसार के सुख भोग भोगते आपको जब बारह वर्ष व्यतीत होगए तब आपके एक पुत्र भी होगया, आप ने स्वयं घर में बारह वर्ष तक रहने का निश्चय किया था अतः प्रातःकाल उठ कर अपने मोक्षपुरी पहोंचाने वाले के उपकरण लेकर चले जाना चाहा। इसकी खबर स्त्री को लग गई तब उसने एक युक्ति की। एक चर्खा लेकर कातने बैठ गई तब बालकुमार ने आश्चर्यान्वित हो माता से पूछा कि, यह क्या है? माता ने कहा कि, भाई! तेरे पिता अभी तो सोये हैं, परन्तु सवेरे उठकर दीक्षा ले चले जायगे। यह सुन कर बालक बोला कि, नहीं जाने दूंगा। ला यह सूत ला मैं इसके तंतुओं से पलंग के साथ उन्हें बांध देता हूं। ऐसा कह उसने सूत की एक कुकड़ी ले पिता को बांधने के लिये बारह आंटे लगाये। जब आर्द्रकुमार को मालूम हुआ तब उन्होंने मोह से सोचा कि, अहा! पुत्र का कितना प्रेम है? मुझे बांधने के लिये कितना प्रयत्न कर रहा है? उस पुत्र के प्रेम के कारण वे पुत्र से बोले कि, हे पुत्र! तूने जितने सूत के आंटों से मुझे बांधा है उतने वर्ष और मैं यहां रहूंगा, जा खुशी हो।

जब आंटे गिने गये तो बारह थे इसलिये वे बारह वर्ष तक और यहां रहे फिर अन्त में अपना उत्तम भेष पहन दीक्षा धारण कर प्रति बँध रहित भूमंडल में

तरह से मुझ फसाने की व्यवस्था हो रही है, इसलिये वे दृढ़ रहे और दोनों पाँव पकड़ कर खड़ी रहीं, श्रीमती से एकदम पाँव छुडाकर तिर्छी निगाह देखते चलते बने। कुमारी विचारी अफसोस करती वहीं खडी रही। राजा को खबर लगते ही उन्होंने रत्न लेने के लिये मनुष्य भेजे, परन्तु देवने उन्हें रोक दिये और कहा कि, जो इस कुमारी को व्याहेगा वही इन रत्नों का मालिक होगा। फिर मातापिता को खबर हुई वे वहां आये और कुमारी को घर चलने के लिये खूब समझाने लगे और सब धन भी उसके ही घर ले जाने के लिये देव ने भी फरमा दिया था परन्तु कुमारी ने मन में निश्चय कर लिया था। कि:—
" यदि व्याहूंगी तो उन्हीं के साथ, दूसरे तो सब भाई बाप हैं " ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा धारण कर वहीं उपस्थित रही और दानपुण्य करती संतोष से वहीं रह कर दिन व्यतीत करने लगी।

जब मुनि श्री आर्द्रकुमार उससे छूटे तब उन्होंने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि, अब इस शहर में नहीं आना ही अच्छा है। परन्तु कर्म बलवान है उसके समीप तक कौन पहुंच सकता है ? भावीप्रबल के योग से वे ही मुनि फिरते २ बारह वर्ष बाद नगरी में पधारे और मासक्षमण के पारणे आहारादि लेने के लिए गोचरी करते उस गांव में आये, उस समय उस श्रीमती कुमारी ने अपने महल के झरोखे से उस मुनि को देखा, उनके चरण कमल में एक पद्म का चिन्ह था वह उसने अपने कब्जे से छूटने के समय चमकता देखा था उसी संकेत से पहिचान उन्हें दासी द्वारा ऊपर बुलाये और आहार लेने के बहाने बुलाया। ऊपर चढते ही कुमारी ने सब द्वार खिडकियां बन्द करने का हुक्म फरमाया। जब ऊपर मुनि आये तब मिष्ट मोदक की एक थाल भर कर सामने लाई और संसार सम्बधी मन मोहक शब्द सुनाने लगी और विशेष में कहा कि हे मेरे प्रियतम प्राणनाथ! मंदिर से छिटक गये थे परन्तु अब यहां से कैसे जाओगे ? कहां जाना चाहते हो ? बारह वर्ष पहले मंदिर से आपने मेरे साथ सम्बध किया था वही मैं आपकी स्त्री हूं। ऐसा कह उन्हें पकड़ने के लिए अत्यंत आतुर हो आग्रह के साथ नम्रता और विनयपूरित प्रेम वचनों से उन्हें खूब समझाने लगी।

उस समय वह देव भी वहां उपस्थित होगया और बोला कि हे महानुभाव ! समझो २ ! यह समय मनोहर है। हे मुनि ! सच समझिये कि, आपके

भाग्य में एक स्त्री अवश्य है। इसलिए इस देवांगना के समान स्वरूपवान स्त्री से ब्याह करो और उसकी प्रेम पूर्ण माँग स्वीकार करो। नहीं तो कोई ऐसी क्लेशित मिलेगी कि, अवश्य तुम्हें संसार दुःखमय ही जचेगा। इसलिए "लक्ष्मी आती हुई को त्याग कर मुंह धोने न बैठो" ऐसा कह देव तो चलागया तो भी मुनि बलात्कार नीचे उतरने लगे तो जीने में एक दासी बैठी हुई देखी, उन्होंने एक खिड़की जो खुली हुई थी उस ओर दृष्टि फैंक मन में सोचा कि, मैं चाहूं तो लब्धि द्वारा इस खिड़की से नीचे उतर जा सकता हूं, यदि मैं यहां रहना ही पसंद करूं तो यह विचारी कन्या मेरा क्या कर सकती है?

आप में नीचे उतर जाने की पूर्ण शक्ति-अपूर्व सामर्थ्य थी परन्तु आप हृदय के साथ सोचने लगे कि, जो भाग्य में होगा वह तो अवश्य ही भोगना होगा, बिना भोगे छुटकारा होगा ही नहीं इसलिये भावी प्रबल है, तीनों लोक में कौन फिरा सकता है? कहा है कि —

यत्कर्म विधिना ललाट लिखित तन्मार्जितुं कः क्षम।

इस वचन पर ध्यान दे अपने क्रोध को रोक आप अन्त में वहीं रहे, वहां संसार के सुख भोग भोगते आपको जब बारह वर्ष व्यतीत होगए तब आपके एक पुत्र भी होगया, आप ने स्वयं घर में बारह वर्ष तक रहने का निश्चय किया था अतः प्रातःकाल उठ कर अपने मोक्षपुरी पहुंचाने वाले के उपकरण लेकर चले जाना चाहा। इसकी खबर स्त्री को लग गई तब उसने एक युक्ति की। एक चर्खा लेकर कातने बैठ गई तब बालकुमार ने आश्चर्यान्वित हो माता से पूछा कि, यह क्या है? माता ने कहा कि, भाई! तेरे पिता अभी तो सोये हैं, परन्तु सवेरे उठकर दीक्षा ले चले जायगे। यह सुन कर बालक बोला कि, नहीं जाने दूंगा। ला यह सूत ला मैं इसके तंतुओं से पलंग के साथ उन्हें बांध देता हूं। ऐसा कह उसने सूत की एक कूकड़ी ले पिता को बांधने के लिये बारह आंटे लगाये। जब आर्द्रकुमार को मालूम हुआ तब उन्होंने मोह से सोचा कि, अहा! पुत्र का कितना प्रेम है? मुझे बांधने के लिये कितना प्रयत्न कर रहा है? उस पुत्र के प्रेम के कारण वे पुत्र से बोले कि, हे पुत्र! तूने जितने सूत के आंटों से मुझे बांधा है उतने वर्ष और मैं यहां रहूंगा, जा खुशी हो।

जब आंटे गिने गये तो बारह थे इसलिये वे बारह वर्ष तक और वहां रहे फिर अंत में अपना उत्तम भेष पहन दीक्षा धारण कर प्रति बंध रहित भूमंडल में

विचरने लगे। पश्चात् अपने संसारपत्ती महोपकारी अपने परम प्रिय मित्र श्री **अभयकुमार** से मिले और फिर **श्री महावीर प्रभु** के पवित्र दर्शन किये। महान तपश्चर्या रूपी अग्नि द्वारा सब कर्मरूपी ईन्धन का दहन कर आपने **केवल ज्ञान** प्राप्त किया और अन्त में आप सब कर्म का क्षय कर मोक्षरूपी नगर में पधारे और अक्षय सुख भोगी बने। इस दृष्टान्त का सार यह है कि

❀ राग धनाश्री ❀

भावी मिथ्या नव थाय, भविजन भावी मिथ्या नव थाय.
कोटि प्रयत्नो करो उमंगे, तोये पण शुं थाय?
देशथी छटक्या भोगथी अटक्या, भटक्यारे वनमांय.
पण अरे भावीप्रबले पटक्या, जुओ आर्द्र मुनिराय.
हेम हरणमां मोह्या रघुवीर, सती सीताजी हराय.
जाण्या छतां द्युत दुर्गुणकारी, नल पांडवो रमाय.
राज्य रिद्धि ने रमणी गुमावी, भिक्षुक जेम भमाय.
कर्म कीधां जेह रंगे उमंगे, ते केम फोगट थाय.
देव दानव ने मानव सर्वे, भावी प्रबल वश्य थाय.
विनय मुनि शुभ धर्म धरीने, पामो सुख सदाय.

जगत में सब कर्म के ही आधीन है। भावी प्रबल होनेसे **आर्द्रकुमार मुनि** को फिराने के लिये कितने प्रयत्न हुए परन्तु अन्त में निन्यानवे के निन्यानवे उन्हें भावी प्रबल के वश होना ही पड़ा और अपने भोगावली कर्म भोगना ही पड़े। इसलिए हे विवेकी मनुष्यों! तुम चाहे जितना प्रयत्न करो परन्तु कहा है कि —

दोहाः—मानव जाणे हुं करूं, करतल बीजो कोय;
आदरेलुं अधवच रहे, कर्म करे सो होय.
प्रारब्धको पेखणा और देख दिवस का खेल ;
विभीषण को राज मिला और हनुमान को तेल.

इसलिए व्यर्थ फाफे मार कर कर्म न बांधो और अप्राप्य वस्तु की इच्छा ही न करो कारण भाग्य बिना कुछ नहीं मिल सकता।



कामांध कोपांध मदांधकाश्च ।
लोभांध मोहांध भवांधकाश्च ॥
भवंति लोके किल षडविधांधा ।
आंत्यो हि भद्रं लभते न शेषाः ॥ २२ ॥



अर्थ—इस संसार में छः प्रकार के अन्धे हैं जैसे कामांध, क्रोधांध, मदांध, लोभान्ध, मोहांध और छठा जन्मांध ये शास्त्रकार ने छः अंधे बताये हैं। जिनमें अन्तिम जन्मांध तो कभी सद्भाग्योदय से आत्म कल्याण कर मोक्षगति पा सकता है, परन्तु पहिले कहे हुए पांच अन्ध तो कभी नहीं पासकते ॥२२॥

भावार्थ—इस लोक में छः प्रकार के अंधे बताये हैं वे निम्नांकित हैं (१) कामांध (२) क्रोधांध (३) मदांध (४) लोभांध (५) मोहांध (६) और छठा जन्मांध ये छः प्रकार के अंधों में से अन्तिम जन्मांध तो कदाचित् अपने पूर्वोपार्जित शुभ पुण्योदय से कल्याण प्राप्तकर सकता है परन्तु आदि के पांच अंध तो कभी भी कल्याण का मार्ग ग्रहण कर अक्षय मोक्षलक्ष्मी नहीं पासकते कारण कि पहिले पांच, कर्म से ही अंधे हैं, अर्थात् मैं शुभ करता हूं या अशुभ ऐसा वे हृदयचक्षु से नहीं देख सकते, उदाहरणार्थ—यारहया

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त की चूलणी, नाम की माता कामान्ध बनी हुई जब उसने अपने प्रिय प्राण प्यारे पुत्र को भी लाक्षागृह में जलाकर भस्मीभूत करने में तनिक भी संकोच न किया था तथा महात्मा राजर्षि श्री नमीराज की माता पर अत्यन्त आशक्त बन कामांध मणीरथ नामक राजा अपने छोटे भाई युगवाहु को विद्युत समान चमकती तलवार से शिरच्छेद करते तनिक भी न डरा था ऐसे अनेक उदाहरण शास्त्रों में प्रस्तुत हैं।

फिर क्रोध से अन्ध बना हुआ पालक नामक प्रधान मुक्ति महिला को प्राप्त करने के लिये तत्पर बने, पवित्र मन वाले, लघुकर्मी, खंदक नामक गुरुवर्य के साथ रहे हुए केलीगर्भ समान कोमल पांचसो शिष्यों को दुष्ट हृदय से कोल्हू में पिलते देख तनिक भी न हिचका। इसी तरह राजऋद्धि में मदांध बन प्रथम चक्रवर्ती ने अपने प्यारे बन्धु बाहुबल पर शिरच्छेद करने वाला चक्र निर्दय मन से छोडते तनिक भी विचार न किया था।

तथा लोभ में अंध बन आठवाँ चक्रवर्ती शंभूम भी विपरीत बुद्धि से सातवाँ खंड साधने तत्पर हुआ और मध्य महासागर के गहन गम्भीर जल में पड मरण की शरण पाया तथा अपने पुत्र के मोह से अंध बनी हुई माता ने अयंवता सुकुमाल की दीक्षा की आज्ञा के समय पवित्र उपदेश देकर मोक्षमार्ग में प्रवर्ताने वाले तरण तारण की नाव समान अपने धर्मगुरु को, चोर, लुच्चे, बदमाश, धर्म धुतारे, ठगारे-इत्यादि कनिष्ट शब्द कहते तनिक भी संकोच न किया था। अहा! मोहदशा संसार में कितनी बलवान है। इत्यादि-अनेक उदाहरण सिद्धान्त सागर में परम तीर्थंकर श्री महावीर पिता ने मोहमुग्ध हृदयों को समझाने के लिये समर्पण किये हैं। पहले पांच अंध से, अंतिम जमांध बहुत श्रेष्ठ है, ऐसा तत्वज्ञ पुरुषों का कथन है। ऐसा समझ कर अतिशय काम क्रोधादिक की आसक्तता त्यागकर एक पवित्र धर्म का ही सर्वदा यथाशक्ति संचय करना श्रेयस्कर है।

यह सच है कि चाहे जैसा धर्मात्मा हो परन्तु जब उसके हृदय में काम क्रोधादिक का उदय होता है तब वह अपनी धर्मवृत्ति भूल जाता है और कुमति

के कुफंद में पड कर अकृत्य करने पर तत्पर होजाता है। उस समय वह अपने मन में तनिक भी नही हिचपिचाता और तनिक भी नहीं डरता है । सुन्दरदास कवि ने कहा है कि —

कवित्तः—काम जब जागे तव, गनत न कोऊ शंक,
जाने सब जोई करी, देखत न माधी है;
क्रोध जब जागे तब, नेकु न संभारी शके,
ऐसी विधि मुलकी, अविद्या जिन साधी है;
लोभ जब जागे तव, तृपती न क्यांय होय,
सुंदर कहत इन ऐसे ही में खाधी है;
मोह मतवारो निशिदिन हि फिरत रहे,
मनसो न कहुं हम देख्यो अपराधी है;
फिर कहा है किः—

कवित्तः—एही कायनगरी में चिदानंद राज करे,
मायासी राणी, सब रंग होय रह्यो है;
क्रोध हुवो कोटवाल, मोह हुवो फोजदार,
लोभ तो वजीर, सबे लूंट अनुसर्यो है;
मान जैसो काजी जाकु, लीनको न अदलमान,
काम तो वकानी देश, वाको आन ग्रह्यो है;
अपनी राजधानीमें, सबी गुण भूल गयो,
जबे सुद्ध पड़ी, तब काल आन गृह्यो है;

मतलब यह है कि इन पांचों प्रकार से अंध बन कर मनुष्य महाक्रूर कर्म करते हैं और चोरासी लाख जीवयोनि में परिभ्रमण करते फिरते हैं। ये पांचों ही प्रकार जिसके हृदय में भरपूर भरे हों उस मनुष्य का तो विवेकी पुरुषों को कभी विश्वास ही न करना चाहिये या उसका साथ ही न करना चाहिये कारण कि वह कभी महान् हानि में उतार देता है तथा ऐसों से कभी छेड छाड भी न करना चाहिये कारण ये निर्दय परिणामी प्राण लेते भी नहीं चूकते कारण कि उनके हृदय में परभव का तनिक भी डर नहीं रहता, वे दया को तो देश निकाला ही दे देते हैं, पाप पुण्य को तो गिनते ही नहीं, उनके हृदय में तो एक तरह का खून ही भरा रहता है कि, मारू या मरू। उनको हितशिक्षा का उपदेश भी सांप को दूध पिलाने के समान वृथा जाता है और उलटा विष ही उत्पन्न करता है इसलिये उन्हें तो तनिक भी न छेडना। विवेकी पुरुषों ने ऐसा समझ कर मन में सन्तोष करना चाहिए कि —

यथाग्निना पच्यतेचान्न। फलकालेन पच्यते।
कुमित्रै पच्यते राजा। पापी पापेन पच्यते॥ १॥

अर्थात्—जैसे अग्निसे अन्न पच जाता है, कालानुसार फल पच जाता है, खराब मित्रों से राजा पच जाता है उसी तरह पापी मनुष्य पाप द्वारा पच रहे हैं। पाप का घडा भर जाने पर अन्त में फूट ही निकलता है, अपने २ कर्म सबको अवश्य भोगना होंगे, **"जो करेंगे वे भरेंगे और जो विष खावेंगे वे मरेंगे"** अब मनुष्य विषयांध हो कैसे २ दुष्ट कर्म करते हैं और वे कितने निर्दय होते हैं। इस पर एक व्यभिचारिणी रूपवती सेठानी का दृष्टान्त कहते हैं।

पुत्र पति का घात करने वाली, कच्छवासी कुलटा सेठानी की कथा.

कच्छ देश के एक शहर में कोई विख्यात गृहस्थ की मान्या खूबसूरत स्त्री व्यभिचारिणी थी। **'कामी कुल न ओलखे'** इस कहावत अनुसार वह रूपवती बाई एक समय विष्ठा उठाने वाले मेहतर के साथ विषय प्यार में फँस गई, इतने में उसका छोटा लडका पाठशाला से आगया और माता का

ऐसा खराब चाल चलन देखकर शरमाया, तुरन्त ही पीछे फिर कर बोला कि "कहूंगा मैं अपने पिता से" उपरोक्त शब्द सुनते ही वह व्याभिचारिणी और काम से अलग हुई तथा एकदम उस लड़के के पास आई, लड़के को पकड़ कर उसका गला घोंट उसने मार डालना चाहा परन्तु उस समय मेहतर ने दया लाकर उसे मना किया तो भी शरम जाने के डर से लड़के को उसने मार डाला और उसकी गठड़ी बांधकर ऊपर मंजिल पर जहां कंडे भरे थे उनमें छुपा दी और मन में निश्चय किया कि रात को एकान्त स्थान में फेंक आऊंगी। उस लड़के के नाक से खून वह रहा था, भोजन के समय बड़े लड़के के साथ सेठ रसोई में पास ही भोजन करने बैठे। भोजन रखा जाता है इतने ही उस बड़े लड़के के थाल में खून का बूंद गिरा जिससे पिता पुत्र चमक पड़े जब सेठानी से पूछा तो उसने सन्देह पूरित उत्तर दिया, इसलिये अपना विश्वास दृढ़ करने के लिये वे दोनों मंजिल पर चढ़े तब रूपवती बाई घबराई ओह मा! आज मेरी लाज गई, आज गजब हो गया! वह चट उठी और शरम रखने की उम्मेद से द्वार बन्द कर नीचे उतर आई और जहां घास भरा था वहां एक दियासलाई लगाकर फेंक आग लगाकर बाहर निकल घर को ताला लगाकर अपने पियर चली गई। दोनों पुत्र और सेठ ये तीनों रूपवती बाई के प्रताप से जल बल कर भस्म हो गए। अहा! विषय रस कैसा निर्दयता से पूर्ण खराब काम कराता है? अन्त में पुलिस को खबर लगी और न्याय कचहरी में खूनी रूपवती बाई को उपस्थित किया और न्यायानुसार जिन्दगी भर काले पानी की सजा हुई ऐसी स्त्री माता तो नहीं परन्तु सचमुच जीवित डाकिन सर्पिन कहलाती है। सर्पिन हजारों अण्डे देती है और खा भी जाती है।

इस दृष्टांत का सार यह है कि जो मनुष्य उपरोक्त पांच प्रकारों में किसी प्रकार से भी अन्धे बनते हैं वे पीछे फिर कर नहीं देख सकते। जिससे उन्हें कामान्ध तथा कर्म चांडाल भी कहा है।

कूटसाक्षी सुहृद्द्रोही। कृतघ्नी दीर्घरोषवान्।
चत्वार कर्मचांडाला। जातिचंडाल पंचम ॥ १ ॥

अर्थात्—मिथ्या साक्षी भरने वाले, मित्र पर द्रोह करने वाले, किये गुण से अजान तथा अत्यन्त क्रोध वाले ये चारों सचमुच कर्म चांडाल हैं और पांचवा जाति चांडाल है यह तो कदाचित् सुधर भी सकता है। इसलिये

जन्मांध त .ा जाति चांडाल तो वहुत श्रेय है कि कभी समय आने पर वे अपना आत्महित सिद्ध कर सकते ह और जन्म सफल कर सकते है, परतु कर्मचाडाल तो कभी आत्म कल्याण कर ही नही सकते।



प्राप्ये मं वर मानुषत्व ममलं मंदात्मनां दुर्लभं।
रामाराम रमादि भोगनिरता धर्मं न कुर्वंतिये॥
त्यक्त्वात्वा शुतितीर्षवः प्रवहणं गृहंति तुंगोपलं।
ते नूनं भववारिधौ निरवधौ मज्जंति पौनः पुनः॥२३॥



अर्थः-मदभागी प्राणी अत्यत दुर्लभ और सम्पूर्ण उत्तम मनुष्य भव पाकर स्त्री, पुत्र, मित्र, लक्ष्मी आदि कामभोग में लीन हो मोहित होजाते हैं और धर्म नहीं करते है वे सचमुच महासागर तिरने की आशा से एक बडे पत्थर के वाहन को लेकर जल में तिरने की इच्छा रखते ह परतु उलटे महा सागर में तिरने के बदले अगाध समुद्र के गहन जल में बार २ डूब जाते हैं और प्राण रहित बन जाते है॥ २३॥

भावार्थ-जो जीवात्मा इस उत्तम मनुष्य भव को पाकर (मदात्मना दुर्लभ) अर्थात् मदभागी आत्मा, पापिष्ट आत्मा के लिये अत्यत दुर्लभ ऐसा मनुष्य भव पाकर (रामाराम रमादि भोग निरता) रामा-स्त्री आराम-बाग बगीचे बनवाडी इत्यादि रम्य स्थानों में हिरने फिरने का शौक, रमा-लक्ष्मी इत्यादि में अत्यत आसक्त बन धर्म नहीं करते है वे सचमुच तिरने की आशा रखते हुए भी पानी में तिराने वाले काष्ट के वाहन को त्याग कर एक बडा पत्थर पकड कर तिरना चाहते है परतु अत में वे विचारे मदभागी आत्मा अपार-अगाध भवसागर में बार २ डुबकियें लगा कर डूब जाते है और असह्य दुःख सहन करते हमेशा भटका ही करते हैं।

यह आत्मा अनतकाल से इस भवाब्धि में अज्ञानता के कारण परिभ्रमण कर रहा है अनेक उच्च नीच अवतार ले जन्म मरण कर रहा है परन्तु अभी

तक सद्गुरु या सद्धर्म के अभाव से उसे शांति नहीं मिल सकी । जिस सम्बंध में बोधमाला नामक एक पुस्तक में आत्माराम सप्तविशी इस नाम की कविता एक अध्यात्मज्ञानी महात्मा ने रच कर लिखी है वह सचमुच पढने, विचारने और मनन करने योग्य है । वह अपने आत्माराम (जीव) को खासकर समझाने योग्य हैं उसमें कुछ यहा नीचे लिखते हैं ।

आत्माराम सप्तविशी अध्यात्म-ज्ञान फटको.

(हरीभजन विना दुःख दरिया संसार का पार न आवे) यह राग.

सुण आत्माराम ! काल अनंत ढल्यो रे ! अज्ञाननी झालमा,
मत भ्रम करी, तत्त्व स्वभावे झपायो हिंसामत झालमा,
तुतो दुषम आरे सचरियो, विषय कषाये दुर्गुणे भरीयो,
तुतो खतरीना कुलमा अवतरीयो सुण आत्माराम० १
तुज प्यारो पचद्री वध करतो, वली अध्ये चढीने जन तसकरतो,
एम पापे करीने पिंडज भरतो. सुण आत्माराम० २
एक कुमति नीच कुलनी नारी, तेनो ताग जनमनो दातारी
एम वुकस कुल हाथी कारी. सुण आत्माराम० ३
तारा भूरकर्म जन्मांतरना, तेथी ऊंच नीच कुलमा चरना,
तुज हते कहु गर्व चडना. सुण आत्माराम० ४
तिहा पूरन पुण्य तरू फलीया, तेथी जीवनराम गुरु मलीया,
तस बोधे दुष्कृत्य सब टलीया सुण आत्माराम० ५
तिहा समकित ज्ञान संजम धरीओ, तेंतो सर्व आश्रवनो वैराग करियो,
तेतो ज्ञानामृते निज घट भरीयो सुण आत्माराम० ६
तीण समे कांसा मोहनी घलीओ, अहो ! आत्माराम तुने छलियो,
तारो मर्कट चीत चौपे चलियो सुण आत्माराम० ७
तारे गले चारित्र मोहनो फांसो, तुतो समकित ज्ञानथी पडयो पाछो,
तेथी ज्ञान दर्शने आवे हांसो सुण आत्माराम० ८
तेंतो मूल जीवनराम गुरु तजीया, तेंतो मूढ दशाथी कुगुरु भजिया,
तेंतो दुर्गतिना शण-गार सजीया सुण आत्माराम० ९
तुतो नीति मार्गथी ओसरीओ, तुतो जीव दयानो कोशरीयो,
तुतो महा मोहनी स्थानक धरीओ. सुण आत्माराम० १०

जन्मांध तथा जाति चांडाल तो बहुत श्रेष्ठ है कि कभी समय आने पर वे अपना आत्महित सिद्ध कर सकते हैं और जन्म सफल कर सकते हैं, परन्तु कर्मचांडाल तो कभी आत्म कल्याण कर ही नहीं सकते।



प्राप्ये मं वर मानुषत्व ममलं मंदात्मनां दुर्लभं।
रामाराम रमादि भोगनिरता धर्मं न कुर्वंतिये॥
त्यक्त्वात्वा शुतितीर्षवः प्रवहणं गृहंति तुंगोपलं।
ते नूनं भववारिधौ निरवधौ मज्जंति पौनः पुनः॥२३॥



अर्थः-मंदभागी प्राणी अत्यंत दुर्लभ और सम्पूर्ण उत्तम मनुष्य भव पाकर स्त्री, पुत्र, मित्र, लक्ष्मी आदि कामभोग में लीन हो मोहित होजाते हैं और धर्म नहीं करते हैं वे सचमुच महासागर तिरने की आशा से एक बड़े पत्थर के वाहन को लेकर जल में तिरने की इच्छा रखते हैं परन्तु उलटे महासागर में तिरने के बदले अगाध समुद्र के गहन जल में बार २ डूब जाते हैं और प्राण रहित बन जाते हैं॥ २३॥

भावार्थ-जो जीवात्मा इस उत्तम मनुष्य भव को पाकर (मंदात्मनां दुर्लभ) अर्थात् मंदभागी आत्मा, पापिष्ट आत्मा के लिये अत्यंत दुर्लभ ऐसा मनुष्य भव, पाकर (रामाराम रमादि भोग निरता) रामा-स्त्री आराम-बाग बगीचे-वनवाडी इत्यादि रम्य स्थानों में हिरने फिरने का शोक, रमा-लक्ष्मी इत्यादि में अत्यंत आसक्त बन धर्म नहीं करते हैं वे सचमुच तिरने की आशा रखते हुए भी पानी में तिराने वाले काष्ट के वाहन को त्याग कर एक बड़ा पत्थर पकड़ कर तिरना चाहते हैं परन्तु अंत में वे विचारे मंदभागी आत्मा अपार-अगाध भवसागर में बार २ डुबकियें लगा कर डूब जाते हैं और असह्य दुःख सहन करते हमेशा भटका ही करते हैं।

यह आत्मा अनंतकाल से इस भवाब्धि में अज्ञानता के कारण परिभ्रमण कर रहा है अनेक उच्च नीच अवतार ले जन्म मरण कर रहा है परन्तु अभी

पर निंदा थकी जन जेह डरशे, आतमारामनी जेह निंदा करशे,
तेतो भवसागर वेलो तरशे। सुण आतमाराम० २६
जोग कषाय आतमाने वारी, एक ज्ञानदर्शन चेतन गुणकारी,
चेत चेत ने आतमाराम बलिहारी सुण आतमाराम० २७

यह मनुष्य गति सचमुच तैरनेकी एक अमूल्य दुकान है नारकी, तिर्यंच, देव गति में जितना नहीं तैरा जा सकता उतना इस दुकानसे तैरा जा सकता है तो भी हतभाग्य मनुष्य समस्त जीवन प्रमाद में ही बिताते हैं और आत्महित की ओर तनिक भी लक्ष नहीं देते, वे अन्त में पछताते हैं। कहा है कि —

आयुर्वर्ष शतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं।
तस्यार्धस्य परस्यचार्धमपरं वै बाल्य वृद्धत्वयो ॥
शेषं व्याधि वियोग दु ख सहितं सेवादिभिर्नीयते।
जीवेवारितरंग चंचल तरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ॥ १ ॥

अर्थात् —मनुष्य का आयुष्य इस वर्तमान समय में अगर माना जाय तो करीब सौ वर्ष का ही होता है, उसमें से पचास वर्ष तो रात को निद्रा में ही व्यतीत हो जाते हैं, बाकी रहे हुए पचास वर्ष में साढे बारह वर्ष कि जो बचपन ही बीत जाते हैं और अंतिम साढे बारह वर्ष तो सचमुच उनके वृद्धापन काल में व्यतीत हो जाते हैं, बाकी रहे हुए पचीस वर्ष कि जो नाना प्रकार के रोग और कुटुम्ब के वियोग का दुःख तथा लक्ष्मी आदि प्राप्त करने के प्रयत्न में बीत जाते हैं तथा वेही पचीस वर्ष मनुष्य धनवानों की सेवा आदि में गुमा देते हैं इसलिये जीव को जल के तरंग समान अत्यन्त चंचल जीवन में सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ?

बाल्यावस्था, यौवन, और वृद्धावस्था इन तीन अवस्थाओं में जिंदगी व्यतीत हो जाती है, जिसमें बाल्यावस्था और वृद्धावस्था तो बिलकुल व्यर्थ है। हारना या जीतना सिर्फ मध्यम अवस्था में ही होता है, गन्ने का पहिला तथा अन्तिम भाग व्यर्थ ही जाता है और मध्य भाग के लिये ही लोग पैसे खर्च करते हैं फिर भाग्यानुसार सड़ा या गला उसमें से रस निकलता है यही इस मनुष्य भव की हालत है। बाल्यावस्था म तो कोई भाग्य से ही चेतते हैं कारण कि अवस्था तो सिर्फ खेलकूद में ही निरर्थक बीत जाती है। कैशर ऋषि में कहा है कि —

त्यांथी सतरे पाप लई नीकलीओ, तेमा तुतो अढारमो मिथ्यात्व भलीओ,
तेथी अज्ञानीना मनमा अलीओ सुण आत्माराम० ११
तु तो अह मद्रा वादमा मतवालो, वली दया वैराग्य थकी टालो
तु तो कर्म कर्दमथी वोत आलो. सुण आत्माराम० १२
एम लोक माहि गतागत करतो, अंते भावनगरमा पग धरतो,
तिहा मोहनी राहु बुद्धि चद्र नडतो. सुण आत्माराम० १३
भावनगरथी तु भरमाणो, तो हवे कयाथी ठरवानो ठाणो,
त्यारे आव्यो हवे चोगत आणो सुण आत्माराम० १४
तिहा भ्रम प्रसार रचो माया, ते तो लय करवाने खटकाया,
तारे करुणा रस उरमे नाया सुण आत्माराम० १५
तें तो समता मृत तरुने धाम्यो, तेथी कटुक द्वेष लीमडी पाम्यो,
तिहा विष फल सघला काम्यो सुण आत्माराम० १६
आप सुरतमा भूल्यो आत्मा, तेथी वाद रच्यो रति गातमा,
तुने हुकमे हलावी दीधो साथमा सुण आत्माराम० १७
तुं तो सुरत छोडी कठोरे पडीयो, तिहां पूर्व दुष्कृत्य कर्म नडीओ,
तिहा निंदा तणो सरगस चडीओ सुण आत्माराम० १८
तें तो निंदा तणा किरतन घडिआ, तेने मुग्ध गायनमा भुके अडीआ,
तारा कर्मारोपणथी धोका जडीआ सुण आत्माराम० १९
एम केटलो काल त्या निरगमीओ, त्यानी स्थिति तयथी दुजे भमीओ,
चोप निर्लज तारो शल्य नहीं समीओ सुण आत्माराम० २०
तारा दुष्कृत्य कर्म चरित्र भाभा, मूल मर्म सूचवता आवे लाजा,
हु तो धर्म तणी न मेलु माजा सुण आत्माराम० २१
तारा हेत भणी कहे गुरु ज्ञानी, तोय सान समजे नहीं वैमानी,
तारी विद्वजनोमां घणी नादानी सुण आत्माराम० २२
तुतो बाललीलामा जई फशीयो, तुतो ढीगला ढीगली तणो रसीओ,
जेम अमेध मधे कीटक वसीओ सुण आत्माराम० २३
परपच तजने जरगा वृथा, तुतो आतम तत्व राई थीरथा,
तु तो आपे भुकता आपे करता सुण आत्माराम० २४
में तो हिरयो नहीं कोई प्राणीने, अनुसारे कह्यु जिन वाणी ने ;
एनो अर्थ करो गुण जाणीने सुण आत्माराम० २५

" वृद्धावस्था में धर्म सामग्री प्राप्त करने की सामर्थ्य नहीं रह सकती। सरकारी दरबारी खाते में भी नौकरी करने वाले नौकरों को वृद्ध होने से पेन्शन ठहरा कर नौकरी से छुट्टी दे दी जाती है, वे भी जानते हैं कि वृद्धावस्था होने से नौकरी करने योग्य दशा नहीं रह सकती, तो फिर ईश्वर की नौकरी करने योग्य दशा कैसे रह सकती है? तन मन से परिश्रमपूर्वक सेवा करने की सामर्थ्य कैसे रह सकती है? इसलिये जो कुछ करना हो वृद्धावस्था आने के पहिले ही कर लेना श्रेष्ठ है। पानी पहिले पाल बांधना यही उत्तम मनुष्यों का लक्षण है। कहा है कि—

❋ शार्दूल विक्रीडित वृत ❋

काया कंपी जशे गति अटकशे, दांतो पड़ी सहु जशे,
आंखे भांख थशे न कान सुणशे, लारो मुखे आवशे,
बुद्धि मंद थशे जिह्वा अटकशे, काठी गृही चालशे,
एवुं वृधत्व आवतां श्रीपतिनी भक्ति शी रीते थशे !

इसलिये वृद्धावस्था पर विश्वास न रख चाहे जितना परिश्रम कर युवावस्था में ही धर्मध्यान सञ्चय कर लेना चाहिये, ऐसा कुछ नियम भी नहीं है तथा निश्चय भी नहीं है कि प्रत्येक मनुष्य वृद्धावस्था देख ही सकते हैं। विचार कर देखो तो बहुत से मनुष्य वृद्ध होने के पहिले ही मर जाते हैं और सब मन की इच्छाएं मन में ही रह जाती हैं। इसलिये भगवान ने फरमाया है कि "काल का विश्वास मत करो" अर्थात् काल कब आयगा यह किसी को खबर नहीं है।

सब हारने जीतने की अवस्था युवानी ही है परन्तु बहुत से मनुष्य इस अवस्था में मोहजाल में फँस जाते हैं, घरबार बनाने, स्त्री ब्याहने, व्यौपारादि करने कूडकपट कर अनेक कर्म बांध लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये दौड़धूप किया करते हैं, अकृत्य कार्य में फँस, अन्धे बन, धन प्राप्त करने के लिये महापाप सञ्चय करते हैं, कितने ही तो मोहविलास में पड़ परभव से तनिक भी नहीं डरते और परलोक में क्या होगा इसका होश तक भूल जाते हैं और ऐहिक सुख में

❀ हरिगीत छन्द ❀

जन्म्या पछी मातापिताना अंगपर आलोटतां,
नाना प्रकार तणी रमतमां एक चित्ते चोटतां.
रमतां अने भमतां सदा गमता बधाने गेलमां,
अज्ञानना आवरणमां खोया बधा दिन खेलमां. १
गेडीदड़ा भारे भमरड़ा चोर आंख मिंचामणी,
नागेरिया गोफण तती मलकुस्तीनी क्रीड़ा घणी,
कजीआ अने कंकास कीधा मूर्खताना महेलमां,
अज्ञानना आवरणमां खोया बधा दिन खेलमां. २

इस तरह अनेक खेलकूद में अनेक पाप कर्म कर बाल्यावस्था केवल अज्ञानता में ही खो देते हैं पश्चात् वृद्धावस्था में भी सब तरह शरीर शिथिल हो जाता है जिससे धर्म करने का मनोबल बिलकुल नहीं रहता तथा उस समय मरण समय समीप समझ कितने ही वृद्ध तो अज्ञानता से हायवोय करने लगते हैं. अनेक नई २ पिपासाओं, इच्छाओं की उत्पत्ति होती है इसलिये यह अवस्था भी प्रांत काल के चन्द्र बिम्ब की तरह निस्तेज है। कोई विरले विवेकी पुरूष ही वृद्धावस्था में ममत्व घटा शांतता से विचरते हैं। ज्ञानी पुरुष तो मृत्यु समय को भी महोत्सव के समान समझते हैं। गीता जी में अ० २ श्लोक २२ में कहा है कि.—

> वासांसि जीर्णानि यथा विहाय। नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
> तथा शरीराणि विहाय जीर्णा। न्यन्यानि सयाति नवानि देही ॥ १ ॥

अर्थात्—ज्यों इस संसार में मनुष्य पुराने वस्त्र त्याग कर नये वस्त्र धारण करते हैं उसी तरह प्राणी भी इस प्राचीन शरीर को त्यागकर नया धारण करते हैं तो इसमें दुःख कौनसा है ? परन्तु ऐसा विचार क्वचित ही करते हैं।

वृद्धावस्था में धर्म सामग्री प्राप्त करने की सामर्थ्य नहीं रह सकती। सरकारी दरबारी खाते में भी नौकरी करने वाले नौकरों को वृद्ध होने से पेन्शन ठहरा कर नौकरी से छुट्टी दे दी जाती है, वे भी जानते हैं कि वृद्धावस्था होने से नौकरी करने योग्य दशा नहीं रह सकती, तो, फिर ईश्वर की नौकरी करने योग्य दशा कैसे रह सकती है ? तन मन से परिश्रमपूर्वक सेवा करने की सामर्थ्य कैसे रह सकती है ? इसलिये जो कुछ करना हो वृद्धावस्था आने के पहिले ही कर लेना श्रेष्ठ है। पानी पहिले पाल बांधना यही उत्तम मनुष्यों का सकेत है। कहा है कि —

❋ शार्दूल विक्रीडित वृत ❋

काया कंपी जशे गति अटकशे, दांतो पड़ी सहु जशे,
आंखे झांख थशे न कान सुणशे, लारो मुखे आवशे,
बुद्धि मंद थशे जिह्वा अटकशे, काठी गृही चालशे,
एवं वृधत्व आवतां श्रीपतिनी भक्ति शी रीतें थशे !

इसलिये वृद्धावस्था पर विश्वास न रख चाहे जितना परिश्रम कर युवावस्था में ही धर्मध्यान सञ्चय कर लेना चाहिये, ऐसा कुछ नियम भी नहीं है तथा निश्चय भी नहीं है कि प्रत्येक मनुष्य वृद्धावस्था देख ही सकते हैं। विचार कर देखो तो बहुत से मनुष्य वृद्ध होने के पहिले ही मर जाते हैं और सब मन की इच्छाएं मन में ही रह जाती हैं। इसलिये भगवान ने फरमाया है कि **"काल का विश्वास मत करो"** अर्थात् काल कब आयगा यह किसी को खबर नहीं है।

सब हारने जीतने की अवस्था युवानी ही है परन्तु बहुत से मनुष्य उस अवस्था में मोहजाल में फँस जाते हैं, घरबार बनाने, स्त्री ब्याहने, व्यौपारादि करने कूडकपट कर अनेक कर्म बांध लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये दौड़धूप किया करते हैं, अकृत्य कर्म में फँस, अन्धे बन, धन प्राप्त करने के लिये महापाप सञ्चय करते हैं, कितने ही तो मोहविलास में पड़ धरमर्य से तनिक भी नहीं डरते और परलोक में क्या होगा इसका होश तक भूल जाते हैं और पौद्गलिक सुख में

ही आनन्द मानते हैं। परन्तु हे पामर प्राणी! यह सब असार है। एक समय इन सब को त्याग तुम्हें परलोक का प्रवास करना होगा। इस पृथ्वी पर अनेक राजा राणा हो गए परन्तु किसी के भी साथ कुछ नहीं गया परन्तु लक्ष्मी आदि प्राप्त करने के लिये जितने भी उन्होंने कर्म बांधे वेही साथ गए। आयुष्य बिलकुल कम हैं, अति क्षणभंगुर और नाशवान है और जीव के आशा तरंगों का कुछ पार ही नहीं है। कहा है कि:—

कवित्तः-आयुष्य है अल्प तामे, जीव करे शोचपोच;
करवेको बहोत कहो, कहां कहां कीजिये ?
पार नहीं पुराणहुको, वेदहुको अंत नहीं,
गिरामें अनेक रस, कहां चित्त दीजिये ?
काव्यकी कला अनंत, छंदका प्रबंध बहोत,
राग तो रसीक अहो, कहां रस पीजिये ?
तुलसी बताय जात, विचारो अपने ही आत,
सौ बातकी एक बात, राम नाम लीजिये ?

मतलब यह है कि दुनिया में चाहे जितना प्राप्त करो परन्तु परलोक में तो वह कुछ काम नहीं दे सकता। कितने ही जवान तो बिचारे अनेक प्रकार की आशा रखते हुए भूमि पर सो जाते हैं, कितने ही विदेश में पैदा करने जाते हैं तो वहीं रह जाते हैं। युवानी में लोभ राजा की सेना आने से धर्म आराधन नहीं हो सकता, युवानी में मति बहरी हो जाती है, चक्षु अन्ध बन जाते हैं, अन्याय अनीति करने में मन नहीं हिचकिचाता, परस्त्री गमन के कुकर्म में गिर पडते हैं, हसी मजाक कर धर्मध्यान करने वालों धर्म मण्डली का मजाक उडा महा कर्म बांधते हैं, कदाचित् धनवान हुए तो इस युवावस्था को ऐश आराम में, हिरनेफिरने में, नाटक चेटक इत्यादि देखने में तथा नये २ इस्त्रीदार कपड़े पहिन घमड से चलने में और छैलछटाऊ बन मौजशौक करने में व्यर्थ गुमा देते हैं और ग़रीब स्थिति हो तो लक्ष्मी आदि प्राप्त करने में फँस जाते हैं।

विचारे धन्धे से फुरसत तक नहीं पाते और हमेशा चिन्ता में ही दिन व्यतीत करते हैं इसलिये युवावस्था, यह अज्ञानता का एक बड़ा मन्दिर ही है और पाप का भंडार ही है। कहा है कि—

रागस्यागार मेकं नरक शत महादु:ख सताप हेतु।
मोहस्योत्पत्ति बीजं जलधर पटलं ज्ञानताराधिपस्य ॥
कंदर्पस्यैक मित्रं प्रकटित विविध स्पष्ट दोष प्रवर्ध।
लोकेऽस्मिन्नर्हनर्थं वृज कुसुमवनं यौवनादन्यदस्ति ॥ १ ॥

अर्थात्:—यौवन यह राग का एक घर है, नरक के सैंकड़ों महादु:ख प्राप्त करने की निशानी है, मोह उत्पन्न होने का कारण है और ज्ञान रूपी चंद्र को मेघ के बादल समान है, अर्थात् ज्ञान को छिपाने वाला है। कामदेव का तो मुख्य मित्र है, अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न कर देता है।—इस लोक में अनेक अनर्थों के समुदाय का कुसुमवन यौवन बिना एक भी नहीं खिल पाता। इस तरह युवावस्था में भी चेतने का समय प्राप्त नहीं हो सकता, गन्ने का रस मिष्ट निकलना चाहिये था उसके बदले खट्टा निकला, जिसके लिये मूल्य दिया था, वे पैसे छूट पड़े, लक्ष्मी आदि में मोहमुग्ध बन यों समस्त जीवन व्यर्थ गुमा देते हैं। संसार सागर तिरने के लिये नाव को त्याग एक बड़ा पत्थर लेकर तिरने की इच्छा रखते हैं परंतु यह कैसे हो सकता है? वह तो डूबेगा ही। इस असार संसार में कुछ भी सार न ढूंढा, लक्ष्मी की चंचलता नहीं समझी, लक्ष्मी का स्वभाव विद्युत प्रभा के समान है, उसे जाते भी देर नहीं लगती, व आते भी देर नहीं लगती। घड़ी भर में गद्दी तकिये पर सुलाती है तो घड़ी भर में भीख मंगाती है। कहा है कि—

दोहा—काया माया कामनी, त्रणे भगिनी गणाय;
तन मन दई रक्षण करे, तो पण विणसी जाय.

इसलिये इसकी चाहे जितनी प्रतिपालना की जाय, तो भी इसका नाश हुए बिना नहीं रहता, अब इस पर एक बनिये का दृष्टांत कहते हैं।

मायामोहिनी की विचित्र घटना, सेठ मुनीम की कथा.

कोई एक बनिया व्यौपार में दिवाला निकल जाने से मुनीम के साथ

परदेश में लक्ष्मी कमाने निकला। दूर देश में जाकर उन्होंने दुकान की। सुभाग्योदय से उन्हें व्योपार में बहुत अधिक नफा मिला। दूसरे वर्ष उन्होंने बडा भारी व्योपार किया उसमें भी लाभ ही मिला। जब पुण्योदय होता है तब उलटे डालने से भी पासे सुलटे ही पडते है और जब पापोदय होता है तब सुलटे डालने से भी पासे उलटे पडते हैं। सेठ का भाग्यरूपी सूर्य अब तक अस्त था, वह अब मध्यान्ह में आया, जिससे हर तरह लाभ ही मिलने लगा, ऐसे बारह वर्ष व्यतीत होगा। अपने--स्त्री पुत्र इत्यादि भी वहा बुला लिये, जिससे हृदय की उचाटता भी कम होगई, बारह वर्ष के पश्चात् मुनीम से कहा कि, भाई अब अपने देश चलना चाहिये, "अति लोभ तो पाप का मूल है" फिर दोनो की सम्मति मिल जाने से उन्होंने जाने की तैयारी की और उच्च मूल्य की वस्तुएं तथा जवाहरात इत्यादि के बारह जहाज भरे और शुभ मुहूर्त से स्त्री पुत्रादि को ले चले। कितने दिन तक जहाज समुद्र में चले पश्चात् एक रात को दुर्भाग्योदय से समुद्र में अति भारी तुफान आया, अतिशय तुफानी और भयकर वायु चलने लगी, हृदय को त्रस्त करने वाली बडी २ लहरें एक के बाद एक यों आने लगी, आकाश भी बादलों से घिर गया और गर्जारव विद्युत प्रकाश के साथ २ बरसात भी प्रारम्भ हो गई। ऐसे कुसमय में, उनका कोई भी सहायक न था, नाविकों ने अनेक प्रयत्न किये परन्तु जब प्रारब्ध ही प्रतिकूल होता है तो प्रयत्न क्या काम दे सके है? थोडी ही देर में एक बडा भारी चट्टान से जहाज टकराया जिससे शढ और सुकान दोनों टूट गए, तब सबने जीने की आशा छोड दी। फिर जहाज टकराने से बिलकुल ही टूट गया, मालमिलकत, लक्ष्मी, जर जवाहरात, पुत्र मित्र कलत्र इत्यादि सब कुटुम्ब क्षण-भर में मृत्यु पागया। देवकी गति ही भिन्न है! सुभाग्य से सेठ और मुनीम को एक २ पटिया हाथ लग गया जिससे ये दोनों बच गए। अहा! अस्थिर लक्ष्मी का क्या विश्वास है?

छप्पय,—शी मूरच्छा अस्थिर वित्तनी विचारो,
थाय घडीमां जाय लक्ष्मी चपला धारो,
शुभ कामे ववराय खर्ची ने लावो ले छे,

कुलदीपक दातार दाम तृण तुल्य गणे छे,
थोके थोके वावरो ज्यां नोक वंधाय छे,
कीर्ति तेनी जगतमां सुरनर किन्नर गाय छे,

दोनों जनों के हाथ पटिया आगया जिससे दोनों ने एक दूसरे के पटिये डोरी से बाध लिये। फिर तिरते २ जल जतुओं से त्रास पाते २ शेष आयुष्य के बल से सातवे दिन वे पटिये द्वारा किसी गाव के किनारे आये। सेठ किनारे आये तब बोले कि कर्मों ने ठग लिया! यह सुनकर मुनीम ने कहा, सेठ जी अब क्या ठगना बाकी रहा है? कि जिससे आप ऐसे वाक्य कह रहे हो। लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र, मित्र, भारी २ जवाहरात इत्यादि तो सब डूब गए, अब और क्या ठगना रहा है? तब सेठजी हिम्मत रखकर बोले कि भाई तू समझा नहीं? 'शरीर सही सलामत तो पगड़ी बहुतेरी' अपने जब देश से आये थे तब क्या लाये थे? यह तो भाग्य का खेल है, रोने कूटने से कुछ दुःख नष्ट नहीं हो जाता। 'जीता हुआ नर भद्रा प्राप्त कर सक्ता है' कहा है कि—

छप्पय—जीवे जो निरधन जन कोई दिन धनने पामे;
जीवे जो दुःखी देह कोई दिन दुःखने वामे:
जीवे जो वांझियो नर कोई दिन प्रगटे पुत्र;
जीवे जो कोई रांक सारू पामे घर सूत्र.
जीवतो नर भद्र पामशे, मुवा पछी कांई नहीं मले;
आ तकमां तो टालो करो, कोई दिवस ईश्वर फले.

इसलिये भाई! दुःख में हिम्मत रख उससे बचने का उपाय सोचो। जो हुआ सो अच्छा ही हुआ, इसलिये ले यह मेरी उगली में एक हीरे जवाहरात

शरमा गया और नीची निगाह कर खड़ा रहा और अपनी भूलका पूर्ण पश्चात्ताप करता हुआ क्षमा मांगने लगा। पश्चात् दयालु सेठ ने शांत हो उसे संतोष दिया उसके दोष की ओर ध्यान न दे "वैर की औषधि प्यार" इस महा वाक्य को स्वीकार किया। जल्दी ही उसे वहां स्नान कराये सुन्दर पौशाक पहनाई और फिर मुनीम बनालिया। सचमुच गुणी पुरुष ऐसे ही होते हैं। जिनके लिये कहा है कि :—

कवित्त—सहत संताप आप, परको मिटावे ताप।
करुणा को द्रुम शुभ, छाया सुखकारी है॥
शूरवीर क्षमावान, कोटीपति मान नहि।
ज्ञानको निधान, भाण गंभीर गुणधारी है।
दोष दिल नहि लेवे, शरण आवे सुख देवे॥
परमारथ वृति जाकु, सदा प्राणप्यारी है॥
कहत है कवि गंग, सुनो मेरे दिल्लीपति!
विश्व में विरल नर, सज्जन की बलिहारी॥

इसी तरह इससे विपरीत व्यवहार करनेवाले दुर्गुणी मनुष्यों के भी गुण श्री गंग कवि ने अकबर बादशाह के सामने वर्णन किये हैं —

कवित्त—अकारण द्वेष करे, ईर्ष्या में अंग झरे।
रंग देखी रीझे नहि, दृष्टि दोष खड़ो है॥
आपको न करे काज, परको करे अकाज।
लोकनकी छोड़ीलाज, असुया में अड्यो है॥
मन वाणी काया क्रूर, औरको सतावे शूर।

काम क्रोध हो हजूर, विधिने क्युं घड्यो है॥
कहत है कवि गंग, सुणो मेरे दिल्ली पति!
दुनिया में दु ख एक दुर्जन को वड़ो है॥

सेठ जी ने सज्जनता करने में त्रुटि न की और उसके मुनीम ने दुर्जनता दिखाने में भी कमी न रक्खी। पश्चात् एक समय सेठजी ने मुनीम से कहा भाई तुझे याद है कि समुद्र के किनारे अपन जब दोनों आये थे तब मैंने कहा था कि भाग्य ने अपन को ठगा ही था। तब तुमने उस पर टीका की थी परन्तु यह पगडी सलामत रही तो इनसे भी विशेष माल प्राप्त हो गया। फिर स्त्री, पुत्र आदिक सब कुटुम्ब भी मिल गया कहा है कि —

दोहा—संपत गई ते सांपड़े, गयां वले छे वहाण।
गत अवसर आवे नहीं, गया न आवे प्राण॥
विश्व विषे वसनारने, सुखदु ख पड़े अपार।
धैर्य धर्मथी सुख मिले, जेम रतिसार कुमार॥

इसलिये मनुष्य जिंदगी में सुखदु ख तो आता ही रहता है। यह तो समुद्र की आती हुई लहरों और सूर्य की गति के समान है। जैसे सूर्य प्रताप देव की भी एक ही दिन में तीन अवस्थाएं बदलती है तो मन्दभागी मनुष्य के लिए तो कहना ही क्या है? परन्तु धीर पुरुष संकट के समय कायर नहीं होते हैं वे धैर्यता का सहारा ले सत्यता का व्यवहार करते हैं, धर्म की शरण नहीं त्यागते। लक्ष्मी, सत्य और धर्म से ही बधी रहती है। धैर्य दरिद्रता का अमूल्य आभूषण है। कहा है कि —

दरिद्रदशा धैर्य से शोभा देती है, कुरूपता शियल से शोभा देती है, कुभोजन उष्णता से शोभा पाता है, जीर्ण वस्त्र भी स्वच्छता से शोभा पाते हैं इसलिए संकट के समय मन को पत्थर के समान कठिन बनाकर सब सहन करना चाहिये। धन की आशा से अन्याय की ओर न झुकना चाहिये यही श्रेष्ठता है। यह सुन सेठ जी के वचन मुनीम ने आदरपूर्वक माने

और खराब दशा मे अपने से हुई भूल की क्षमा मांगी । इस दृष्टान्त का सार यह है कि दुनिया में सङ्कट के समय मनुष्यों की बुद्धि बिगड जाती है। इस सेठ की बात से यह उपदेश मिलता है कि सङ्कट में भी सत्य तथा हिम्मत न छोड़नी चाहिये। अधर्म नहीं आचरना चाहिये । खराब दशा में भी अगर अपने से भूल होजाय तो उसे न छिपा अपनी भूल का पश्चात्ताप करना चाहिये। स्त्रीपुत्रादिक म अत्यन्त आसक्त हो मनुष्य का कर्तव्य न भूल जाना चाहिये, यही मनुष्य जन्म पाने का परम सार है। इसी से यह जीव उच्च श्रेणी चढ सक्ता है। इसलिये यह उत्तम मनुष्य भव पाकर थोड़ा या अधिक धर्मध्यान कर जिंदगी सफल कर लेना श्रेष्ठ है ।

ज्ञानं नाधिगतं कुकर्मदहनं दत्तं न दानं वरं।
नो लेभे गुण गौरवं गुरुजनादाषि प्रसादे मुदम्॥
संतापत्रय वारणोऽमित गुणो धर्मो न धत्तस्तथा।
हाहा मुग्ध धियामयाहि भगवन्! मोघीकृतंमानुषम्॥२४

अर्थ-इस संसार में अवतार ले कुकर्म हनन करने के लिए ज्ञान सम्पादन नहीं किया, उत्तम दान भी नहीं दिया, सद्गुरु की सेवा कर उनके अन्तःकरण से गुण भरा आशीर्वाद रूपी मिष्ट प्रसाद भी हर्षपूर्वक नहीं पाया तथा तीन ताप का हनन करने वाला अनेक उत्तम गुण वाला पवित्र धर्म भी धारण नहीं किया तो हे भगवान! मोह में मैं मुग्ध बन मूढ हो इस अमूल्य मनुष्य भव को सिर्फ निष्फल व्यर्थ ही खो दिया।

भावार्थ-इस लोक म रत्नचिन्तामणि के समान मनुष्यावतार को ग्रहण कर अति पवित्र तथा कनिष्ट कर्मों का दहन करने वाला ज्ञान भी प्राप्त न किया, दान भी नहीं दिया, गुण से पूर्णगौरवान्वित हर्षपूर्वक गुरुजनों द्वारा आशीर्वाद रूपी मिष्ट प्रासाद भी नहीं पाया तथा संसार के विविध जाति के जन्म, जरा

और मरण रूपी संतापों को नष्ट करने वाला तथा बाह्याभ्यन्तर अनेक गुणों से पूरित ऐसा पवित्र धर्म भी नहीं पाया अर्थात् धर्म भी संचय न किया तो सचमुच हे भगवान! मोह में अत्यन्त आसक्त बन मैंने अत्यन्त दुर्लभ मनुष्यजन्म सिर्फ निष्फल ही खो दिया है जैसा किसी एक ब्राह्मण को चिन्तामणिरत्न प्राप्त हो गया जिससे वह अपनी इच्छानुसार वैभव प्राप्त कर सात माल की हवेलियों में सात स्त्रियों से सुख भोगने लग गया इतने में कां कां करता हुआ एक कौआ वहां आ बैठा जिसके कर्ण कठोर कर्कश शब्द सुनकर क्रोधातुर हो क्रोध में ही उस ब्राह्मण ने उस चिन्तामणिरत्न को उस कौए पर फैंक मारा कि सब वस्तुएं नष्ट हो गईं। पश्चात् वह पूर्ण पश्चात्ताप करने लगा। कहा है कि —

मनहर—जेवी रीते ब्राह्मणने चिंतामणिरत्न मल्युं।
तेहमांथी थया सात माल सात नारियो ॥
सोगठांबाजीए रमे काग आवे तेवे समे।
कां कां करे तो उडाडे लई कांकरीओ ॥
फरी फरी आवे त्यारे क्रोधातुर खूब थावे।
चिन्तामणिरत्न वडे वायस उडाडिओ ॥
वदे मुनि विनयचंद सुणजो भविक वृन्द।
हारी बेठो सकल विलास निरभागीओ ॥

इस जीव के लिये भी वैसा ही समझो। धनधाम, धरा इत्यादि संसार के सुखवैभवों में आसक्त बन मनुष्य जन्म व्यर्थ गमा देता है और कुछ भी धर्म-ध्यान कर आत्महित नहीं साधने यह पूर्ण खेद की बात है। ज्ञान यह अत्यन्त उत्तम वस्तु है जिसके पास ज्ञान है वह कभी संकट में भी हिम्मत नहीं हार सकता। ज्ञान से उसका मन शांत रहता है और सुखदुःखादि आ पड़ते हैं तब एकदम न घबराते उन्हें शांतभाव से सहन करता है दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्याय में भगवान ने साफ फरमाया है कि —

इसलिये इस पंचमकाल में ज्ञान ही मुमुक्षु प्राणियों का सच्चा आधार है। इसलिये हे भगवान ! संसार के विषय में गच्च पडे हुए इस मूढ़ आत्माने तनिक भी ज्ञान सम्पादन नहीं किया और कदाचित् प्राप्त भी किया तो स्वार्थी ज्ञान, परन्तु कुकर्म जलाने वाला ज्ञान न सीखा कारण कि दुराचार आदि दुर्गुणों का त्याग करना ही ज्ञान प्राप्त करने का सार है । ज्ञान से क्रोधादि कषाय नहीं छूटे, कंचनकामिनी आदि को विषय वासना न टली, दुराचार आदि दुर्गुण दूर न हुए तो वह ज्ञान नहीं परन्तु अन्य लोगों को मिष्ट वचन विलास से मोहित करने वाली स्वार्थ साधक विद्या ही है । कहा है कि —

आवुं साधुपणुं शुं कामनुं ?

राग भैरवी गजल.

(अथवा जीने आपको जोया नहि—ए राग)

साधु बन्यो जोगी बन्यो बावो बन्यो बहु वार तुं,
नहि आत्मनी सिद्धि थई नास्युं नहि मारुं ने हुं ॥ साधु०
संसारनां जे मूल रागादिक दोष टल्या नहि,
निज हृदयना सद्भावथी भवबीजने बाल्यां नहि॥साधु०
मद मदन माया मोहरायामां रमे मनडुं सदा,
नहि हृदयमां आवी अरे नीजआत्मनीचिंताकदा॥साधु०
नहि हृदयनी जड़ता टली न वली विषयनी वासना,
वाणी वदे वैराग्यनी पण मन मोह विलासमां॥साधु०
शुं थाय ! मस्तक मुंडवाथी चुंटवाथी केशने ?
नहि काम क्रोध तजायतो शुं थाय, धरवे वेशने ? साधु०

शुं थाय ! कपड़ां पेरवाथी विविध रे साधु तणां,
मायातणा पड़दा विषे घाटो घड़े अवला घणा ॥साधु०
साधु बनी संसारनी खटपट अहोनिश आदरे ।
नहि आहारमां विहारमां व्यवहारमां शुद्धि धरे ॥साधु०
एवुं अरे ! साधुपणुं संसारमां शुं कामनुं !
नहि भवभ्रमणने भांगशे साधुपणुं ए नामनुं ॥ साधु०
सर्वज्ञनां वचनो तणी श्रद्धा नहि अंतर विषे ।
नहि हृदयना रोगो जशे कल्याण शी रीते थशे। साधु०
रमणी तणा रंगभोगमां मनडुं रमे दिनरातरे ।
उपदेश आपे अन्यने पण हृदय कोरूं भातरे ॥साधु०
कष्टो करो कोटी भले पण मोक्षपद छे वेगले ।
मुनि विनय कंचन कामिनीनो त्याग विना शुं वले ॥साधु०

कई साधु बहुत सुन्दर व्याख्यान देते हैं, लोगों को मधुर वाणी से
रिझाते हैं, ऊपर से सदाचार का भारी आडम्बर करते हैं परन्तु अन्तर में उनके
दुराचार का पार ही नहीं रहता। विषयविकार से हृदय पूर्ण भरा रहता है।
महिला भक्तों को रिझाने के लिये दुगनी छाप डालते हैं, रजनी में पढ़ाने के
लिये भी महा उपकारी बनते हैं तो दिन का तो पूछना ही क्या है ? पुरुष से भी
स्त्री को पहिले मोक्ष में भेज देना, ऐसे परोपकारी महात्माओं की क्यों प्रबल
भावना होगी ? चेली के पहिले चेले का क्या काम है ? चेली का कदाचित
अविनय भी हो जाय तो वह सराग भाव के कारण शक्कर ज्यों मीठा लगता है
परन्तु चेला का हुआ अविनय तो चुटकी ज्यों प्रभाव डालता है। चेली चाहे
जितने कठोर वचन कह दे परन्तु यों समझते हैं कि फूल झड़ रहे हैं और आनंद

इसलिये इस पंचमकाल में ज्ञान ही मुमुक्षु प्राणियों का सच्चा आधार है। इसलिये हे भगवान! संसार के विषय में गच्च पडे हुए इस मूढ़ आत्माने तनिक भी ज्ञान सम्पादन नहीं किया और कदाचित् प्राप्त भी किया तो स्वार्थी ज्ञान, परन्तु कुकर्म जलाने वाला ज्ञान न सीखा कारण कि दुराचार आदि दुर्गुणों का त्याग करना ही ज्ञान प्राप्त करने का सार है। ज्ञान से क्रोधादि कषाय नहीं छूटे, कंचनकामिनी आदि की विषयवासना न टली, दुराचार आदि दुर्गुण दूर न हुए तो वह ज्ञान नहीं परन्तु अज्ञ लोगों को मिष्ट वचन विलास से मोहित करने वाली स्वार्थ साधक विद्या ही है। कहा है कि—

आवुं साधुपणुं शुं कामनुं ?

राग भैरवी गजल.

(अथवा जीने आपको जोया नहि- ए राग)

साधु बन्यो जोगी बन्यो बावो बन्यो बहु वार तुं,
नहि आत्मनी सिद्धि थई नास्युं नहि मारुं ने हुं ॥ साधु०
संसारनां जे मूल रागादिक दोष टल्या नहि,
निज हृदयना सद्भावथी भवबीजने बाल्यां नहि॥साधु०
मद मदन माया मोहरायामां रमे मनडुं सदा,
नहि हृदयमां आवी अरे नीजआत्मनीचिंताकदा॥साधु०
नहि हृदयनी जड़ता टली न बली विषयनी वासना,
वाणी वदे वैराग्यनी पण मन मोह विलासमां॥साधु०
शुं थाय ! मस्तक मुंडवाथी चुंटवाथी केशने ?
नहि काम क्रोध तजायतो शुं थाय, धरवे वेशने ? साधु०

वाले, विषय कीच में गहन पैठने वाले, गुप्त तथा बाहर एक दो चेलीदासी रखने वाले, लोभिया के सरदार, आशा तृष्णा तथा विषय के भिखारी अनाचारी कंचन कामिनी के भोगी, दम्भी इत्यादि अनेक दुर्गुणों के भंडार रूप कुगुरु की भक्ति करने से आत्मा का कुछ भी सार्थक नहीं होता। जो स्वयं ही विषय गार में डूब रहे हैं वे दूसरों को कैसे निकाल सकते हैं? सछिद्र जहाज पेसेंजरों को तट पर कैसे पहुंचायेगा वह तो मध्य सागर के गहन जल में ही डुबा देगा परन्तु यह मोह मुग्ध जीव लोभ में इतना तो फंस रहा है कि किसी के पास मिथ्या बाहरी चमत्कार देखा कि उसे ही चट सच्चा सद्गुरु तथा प्रभु समझ लिया। तरण तारण की जहाज अनाथों का आधार, जगत का सच्चा सहायक, भगवान मान रात दिन उनकी अत्यंत भाव भक्ति से सेवा करने लगा और हमेशा वहीं पड़ा रहने लगा और निर्लोभी सच्चे गुरु को झूठे समझने लगा। कोई तो धन आदिक की आशा में कुगुरु को भी सद्गुरु मानते हैं और वे जैसा कहते हैं उसे पत्थर की लकीर समझ उनकी बातों पर विश्वास करते हैं, उन्हें अत्यन्त आदरपूर्वक स्वीकार करते हैं परन्तु अन्त में जब उन धर्म धूर्तों के ठग जाल में ठगा जाते हैं तब इतने लाचार होते हैं कि जिन्दगी तक पश्चात्ताप करते भी बाज नहीं आते। इसलिये हे अभ्युदय के अभिलाषी विवेकी सज्जनो! ऐसे कुगुरु को सर्वथा तिलांजली दे आत्मोद्धारक निर्लोभी निर्विषयी पवित्र सद्गुरु का समागम कर उनकी सेवा भक्ति से कृपापूर्वक प्राप्त हुए आशीर्वाद रूपी मीठा प्रसाद खा खाओ कि जिससे आत्मा दुःखसागर से बचे और परम पद पा सके इस लिए हे भगवान! विषय में लुब्ध हो मैंने अध पतनीय अत्यन्त क्रूर कर्म किये हैं, जरा, जन्म और मृत्यु आधि, व्याधि और उपाधि इत्यादि दुःख नष्ट करने वाला दयामय धर्म भी मैंने नहीं आराधा है और मोहविलास में गिर कर मैंने मेरा न होते हुए भी सबका मेरा समझकर लक्ष्मी आदि के लिये जहां तहां भटका भूला भ्रमा फिरा हूं और लोभ सागर में डूब कुगुरु की बदफैली फंद में फंस मैंने मिथ्यात्व में लुभा कुकर्म क्लिष्ट कर्म ही किये हैं। कहा है कि —

शार्दूलविक्रीड़ित वृत्त.

कीधां कर्म अनेक निन्दित नहीं राखी जरा लाजने।
ईर्ष्या ने अविवेक दंभ थकी ते पीड़ा करी लाखने॥

मानते हैं परन्तु इसमें किस का दोष है ? संसार ऐसा ही मन मोहक है, स्त्री के प्रत्येक अवयव में मेसमेरीजम या मोहनी विद्या भरी है या कुछ और है ? समझ में नहीं आता। विरले भाग्यशाली पुरुष ही (चाहे वे जोगी हों या भोगी) इस चमत्कारी वशीकरण विद्या के फंदे में नहीं फंसते होंगे इस विषैली लपट से बचने वालों को मेरा कोटि २ नमस्कार है। याद रखना कि, ऐसे स्वार्थ साधक प्रपंची ज्ञान से कभी आत्मा का उद्धार नहीं होगा । **वैराग्य रंगः पर वंचनाय। धर्मोपदेशो जन रंजनाय॥** अर्थात् —जिनका वैराग्य, परपंच—दूसरों को ठगने के लिए ही है और धर्मोपदेश मनुष्यों को रिझाने के लिये ही है वहां दीपक नीचे अंधेरा ही समझो। इसलिये हे भगवान! कर्म भस्म करने वाला, भव समुद्र को सुखाने वाला, आत्मोद्धारक वरिष्ट ज्ञान जब तक प्राप्त नहीं हुआ तथा दारिद्र का नाश करने वाला पाप समूह को हरने वाला पवित्र और मुक्ति नगर के समीप पहोचाने वाला चित्त, वित्त और पात्र ये तीनों संयोग मिलाकर उत्तम सुपात्र दान भी नहीं दिया तब तक यह जीवन व्यर्थ है। दान में कितने गुण हैं। कहा है कि :—

छप्पयः—धन्य दाता अवतार, धन्य दाता की माता।
दाता दिल दरियाव, दीन दुःखी को सुखदाता
जगतपूज्य कर धरे, दान दाता के पास
तीर्थंकर कर अधो, उर्द्धव दाता को थाशे
दाता नाम मंगल सदा, सहु प्रति संभारशे।
श्री श्रेयांस नृपति परे, मोक्ष महेलमें महालशे

दान में अपार और अपूर्व गुण हैं। कोई सदभाग्योदय से ही सुपात्र दान दिया जाता है परन्तु कपीला दासी जैसी दान देने में भी भाग्यशाली नहीं हो सकती। दान यह मोक्षपुरी का प्रथम सोपान है तथा जिन्होंने सद्गुरु का समागम कर उनकी निराशाभाव से भक्ति कर प्रेमपूर्वक गहन अन्त करण का आशीर्वाद रूपी मीठा प्रासाद भी नहीं पाया। गाजे फूकने वाले, चिलमें उडनो

यति महाराज ने फरमा दिया कि, मेरे पास तो एक बूटी की क्षार है, यह एक तोले सीसे में डाल दी जाय तो वह सीसा सुवर्ण हो जाता है। एक दिन एक मनुष्य ने वायदा कर सोना करने के लिये एक दिन ठहराया। इस तरह कई मनुष्यों ने भिन्न २ वायदे किये और धन लालच से भ्रान्ति में पड़ अन्धा गये। चन्द्रविजय यति जाति का यति था वह मूल से लिखने का कार्य अधिक करता था जब उसके पास लोग आते थे वह कुछ न कुछ लिखा ही करता था। वह कलमों में पीछे की तरफ एक २ तागे की सोने की रेखा रखता था और उस कलम के अन्त में मेण लगा कर स्याही पोत रखता था। एक समय धनपाल सेठ आया और कहने लगा कि महाराज आज मेरा बताइये ! कृपा कर बता दें तो अच्छा, तब चन्द्रविजय बोला कि, हां मैं बनाता हूं वैसा करो। एक अंगीठी लाओ, कोयले भरो और मध्य में एक लोहे की कुलकी रक्खो फिर उसमें एक तोला सीसा डालो फिर जो चांदी की अक्सीर मैं दूंगा उसे सीसे पर डालना फिर उसमें हवा का प्रभाव न पहुंचे इतनी जल्दी से दूसरी अक्सीर डाल देना और सीसे को खूब धमना फिर सोना बन जायगा। सेठ ने सब सामग्री एकत्रित की और कुलकी में सीसा रक्खा फिर चन्द्रविजय गुरु जी ने एक डिबिया में से एक वाल भर अक्सीर दी वह उसमें डाल दी। जब सीसा पिघल कर एक हो गया तब धनपाल कहने लगा महाराज ! आप आकर देखो तो दूसरी एक अक्सीर डालने का समय होगया पश्चात् गुरु जी आये और एकदम घबरा कर कहने लगे सडासी लाओ ? सडासी लाओ ? और दिखाने की फूर्ती करने लगे।

पश्चात् आपने अपने कान से कलम उतार कर यह सीसा हिलाया कलम थोडी सी जल गई और सोना का टुकडा सीसे में गिर पडा। फिर गुरु जी बोले —धाण ठंडा हो गया इसलिये खूब धमो धनपाल तो खूब धमने लगा और सीसा फुकने लगा। सीसा जब सब जल गया तब गुरु जी बोले अब तो हुआ होगा। पश्चात् धनपाल ने सीसा निकाल कर देखा तो तीस रुपये तोले का सोना कुन्दन बना हुआ दृष्टिगत हुआ। यह देखकर उस विचारे बनिये का हृदय उथलपुथल होने लगा कि यह कीमिया मुझे आजावे तो फिर क्या कमी रहे। हर्षित होकर दोनों हाथ जोड कर वह बोला कि, 'महाराज ! मुझे आपको जरूर सिखाना होगा बिना सिखाए नहीं चलेगा। फिर महाराज ने कहा कि, भाई अक्सीर बनाने का धाण थोडी चीज का नहीं होता। कम से

दीनोने दुःख आपवुं प्रतिदिने ते तो गम्युं तें वर।
भावे भाइ! भजाय जो प्रभु हवे तो तो घणुं सुन्दर॥
खोयुं बालपणुं बधुं रमतमां ते अज्ञतामां रह्युं।
भोगोमां विषयो विषे तरुणीमां तारुण्य ते तो गयुं॥
स्त्रीपुत्रादिक ने गण्यां सुखकरा संसारनी अन्दर।
भावे भाई! भजाय जो प्रभु हवे तो तो घणुं सुन्दर॥

इसलिए हे भगवान! यह महगा मानव जन्म ससार के विषय सुख में पड कर कुकर्म कर मैंने व्यर्थ ही खो दिया है। ससार में अत्यन्त आसक्त होने वाले और धन प्राप्त करने के लिये इधर उधर फाके मारने वाले जीव मन में तनिक भी विचार नहीं लाते और जादूगर यात्री तथा कीमिया करनेवालों के सग रह कर लोभ की आशा से कसे ठगे जाते हैं और अन्त म कितने दुःखी होते हैं, इस पर एक धन लोभी धनपाल शाह के दृष्टान्त को पढ़ने और मनन करने की शिक्षा देते हुए उनका दृष्टान्त लिखते हैं।

कपट कला कुशल धूर्तागार यति की ठग विद्या.

एक शहर में परदेश से कोई यति आया उसका नाम **चन्द्रविजय** था वह यति से पहिचाना जाता था परन्तु उसमें शास्त्रों में कहे हुए गुणों में से एक भी गुण न था। फक्त वह नामधारी यति ही था उसके कार्य तो सब ससारी ही थे। वह जादूगरी का धन्धा कर भोले लोगों को भुला ठग जहा तहा हाथ मार लेता था। वह यति उस गाव के श्रावकों के मुहल्ले में आकर रहा। श्रावक बनिया के यहा वह लेने के लिये जाता और पका हुआ भोजन माग लाता पश्चात् शांतता से अपने मकान में बैठा रहता अथवा शौक करने के लिये घूमने निकल जाता। रोज बालकों को पेंडे, कलाकन्द, मुरमरे, सेव, मिष्टान्न इत्यादि बाटता और रोज नये २ झाड के पत्ते ला पीस लेता—कूट लेता तथा नित्य यों माथा पच्ची करता था। पश्चात् श्रावकों ने आपस में बातचीत की कि अपने यति महाराज के पास तो कीमिया है इसलिये उनके पीछे पडगए और एक दिन

तीन तो और अच्छे ह कि, वे जीव लेकर छुटकारा कर देते हैं। बाकी के तीन तो जीव और जोखिम (काया वगैरह सामान) इत्यादि लेकर लौटते हैं। इसलिये कीमियागरी को व्यर्थ समझ जो इनसे दूर रहेंगे वे ही सुखी होंगे। नहीं तो पीछे से पश्चात्ताप करेंगे।

इस दृष्टान्त का सार यह है कि, लक्ष्मी का अभिलाषी मनुष्य जहां तहां अत्याक फस जाते हैं और ध्यान, दान, तप, शीयल इत्यादि से भ्रष्ट हो अधोगत गामी बनते हैं और हर्सी के पात्र बन अन्त में महा दुःखी होते हैं। इसलिये विवेकी पुरुषों को जहां तहा चाहें न भरते सतोष रखना और धर्म सचय करना चाहिये। यही मनुष्य जीवन का कर्तव्य और मनुष्यत्व है। कहा है कि –

सवैया.

मलशे नहीं जन्म मनुष्यतणो अघटित कर्यां हत उछलशे।
वलसे नहीं पाप पछी सवरा तुज सकट कोई न साभलशे॥
भलशे दुःख आवी अनेक वीजां,उभगनी पेठे अति उछलशे।
छलशे जमदूत कहे दलपत पछी तुज पाप पुरा मळशे॥ १॥

नूनं नमन्ति सहकार महीरुहश्च।
युक्ताः फलैरधि भवन्ति तथा यथा च॥
लोके लभन्त उदधेर्दुहितार मत्र।
नम्री भवन्ति नितरां किलसत्पुमांसः॥२५

अर्थ -सचमुच इस लोक में आम्र वृक्ष आम फल देते हैं वैसे २ नम जाते हैं, इसी तरह सत्पुरुष ज्यों २ लक्ष्मी प्राप्त करते जाते हैं वैसे २ अत्य नम्र होते जाते हैं, परन्तु अभिमान के वश नहीं होते। वे उद्धत न बनते गरीब धारण करते जाते हैं ॥ २५ ॥

कम पांच तोला सोना चाहिये जब अकसीर बनता है, उस पांच तोले सोने का १६० वाल वजन हुआ और आधा तोला सीसे में एक वाल अकसीर चाहिये। इतनी अकसीर में से अस्सी तोला सोना होगा वह तीस रुपये तोले के हिसाब से चौबीस सौ रुपये का सोना हुआ और इस कार्य में दूसरा खर्च भी करना पडता है वह सुनो! बांस के भुङ्गले हाथ २ ऊचे होते हैं वह लाना उसके बीच में पारा रखना और आगल पीछे कस्तूरी भरी जानेके पश्चात् यह भुङ्गलें जमीन में ११ दिन तक दबा कर रखना, उसमें पांच तोले सोना डालकर भट्टी करना और उसमें बुट्टी का रस डालते जाना चाहिये जब अकसीर बनता है।

एक तोला कस्तूरी तथा आधा तोला पारा हर एक भुङ्गले में भरना चाहिये। आपकी मरजी हो तो सामान ले आना।

यह बनिया जल्दी वहां से उठा और अपने घर गया। रास्ते में विचार किया कि यह बात किसी से कहने की नहीं है क्योंकि सरकार जान लेवेगी तो मुझको पकड लेवेगी और मेरे से सोना बनवावेगी सो फिर कभी धीरे २ सोना बनावेंगे। इस वर्ष में तो एक लाख रुपये का सोना बनालूंगा फिर चीन में दुकान खोले बिना क्या काम चल सकेगा? चीन से फिटकडी की पेटिया मगाऊंगा और अपने घर से करोडों रुपयों का सोना बेचूंगा। लोग समझेंगे कि यह चीन से पेटिया लाता है और सोना बेचता है ऐसे अनेक घाट घडता वह बनिया घर को गया।

घर जाते ही सेठ सामान एकत्रित करने लगा। चारसो रुपये की कस्तूरी ली तथा उसमें जितना पारा चाहिये था उतना लिया। पांच तोला कुंदन भी लिया। बाजार से सो मण सीसा भी लिया। यह सब सामान ले सेठ गुरुजी के पास गए। गुरुजी उसी रात को बेरागी बन पोबारह कर गए और अब तक नहीं आये।

पदार्थ ज्ञानानन्द कहते है — कि किसी मनुष्य को खूब कूदना याद है परन्तु वह अकारण ही कुआ क्यों कूदेगा? इसी तरह अपने कामण्टुमण से अत्यत सावधान रहते हैं तो भी इस मिथ्या बात में पडने से अपने को मतलब ही क्या है?

इसलिये चतुर मनुष्यों को खास ध्यान में रखना चाहिये कि, बाघ, सर्प, सोमल, कीमयागर, जादूगर, चोर ये सब एक माता के पुत्र हैं जिसमें से पहिले

तीन तो और अच्छे हैं कि, वे जीव लेकर छुटकारा कर देते हैं। बाकी के तीन तो जीव और जोखिम (रुपया वगैरह सामान) इत्यादि लेकर छोड़ते हैं। इसलिये कीमियागरी को व्यर्थ समझ जो इनसे दूर रहेंगे वे ही सुखी होंगे। नहीं तो पीछे से पश्चात्ताप करेंगे।

इस दृष्टान्त का सार यह है कि, लक्ष्मी का अभिलाषी मनुष्य जहां तहां अचानक फस जाते हैं और दान, दान, तप, शीयल इत्यादि से भ्रष्ट हो अधोगत गामी बनते हैं और इसी के पात्र बन अन्त में महा दुःखी होते हैं। इसलिये विवेकी पुरुषों को जहां तहां वाहें न भरते सतोष रखना और धर्म संचय करना चाहिये। यही मनुष्य जीवन का कर्तव्य और मनुष्यत्व है। कहा है कि –

सवैया.

मलशे नहीं जन्म मनुष्यतणो अवरित कर्यो तुज उफलशे।
वलशे नहीं पाप पछी सघला तुज सकट कोइ न साभरशे ॥
भलशे दुःख आवी अनेक धीजा,उभरानी पेठे अति उछलशे।
छलशे जमदूत कहे दलपत पछी तुज पाप पुरा मळशे ॥ १॥

नूनं नमन्ति सहकार महीरुहश्च ।
युक्ताः फलैरधि भवन्ति तथा यथा च ॥
लोके लभन्त उदधेर्दुहितार मत्र ।
नम्री भवन्ति नितरां किलसत्पुमांसः ॥२५॥

अर्थ –सचमुच इस लोक में आम्र वृक्ष आम फल देते हैं वैसे २ नमते जाते हैं, इसी तरह सत्पुरुष ज्यों २ लक्ष्मी प्राप्त करते जाते हैं वैसे २ अत्यन्त नम्र होते जाते हैं, परन्तु अभिमान के वश नहीं होते। वे उद्धत न बनते गरीबपन धारण करते जाते हैं ॥ २५ ॥

भावार्थ :—नम्रता यह शत्रुओं को वश करने का महा मंत्र है और सच्चे पुरुषों का यह प्राकृतिक स्वभाव ही है। इस शरीर में चार जगह चार देवियों का निवास है। मस्तक के भाग मे नम्रता देवी, चक्षु के भाग में लज्जा देवी, वक्षस्थल के भाग में हिम्मत देवी और उदर के भाग में विचार शक्ति देवी है। इन चारों में से एक २ भी समस्त विश्व को वश करने का सामर्थ्य रखती है तो जहा चारों का प्रेमपूर्वक निवास हो वहा कहना ही क्या है? ये चारो देविया आत्मा को अत्यंत लाभदायक हैं। सद्भाग्य बिना ये चारों मनुष्य को प्राप्त हो ही नहीं सक्ती।

परन्तु ये देवियां अपनी जगह स्थिर नहीं रह सक्तीं, कारण कि जिस घर में ये रहती हैं वह घर उनके स्वतंत्र भोगने में नहीं आ सका है। वह घर मिश्रित है जिसमें अन्य भागीदार भी रहते हैं। तब इन्हें यह घर त्याग कर चले जाना पडता है क्योंकि उनमें और इनमें परस्पर अनादि सिद्ध वैर है। दारू और अग्नि तथा चूहा और बिल्ली में जैसे बनता है वैसा ही इनमें बनता है क्योंकि परस्पर अनादि वैर है।

ये देवियां जहां रहती हैं वहा चार राक्षस भी रहते हैं। मस्तक में अभिमान, चक्षु में लोभ, वक्षस्थल में भय और उदर में क्रोध, ये चारों राक्षस चारों जगह रहते हैं। इन चारों की सामर्थ्य भी कुछ कम नहीं। इन चारों में से एक २ भी समस्त ससार को थर २ धुजा देते हैं तो जहां ये चारों राक्षस मिल जाते हैं वहां जो ये न करें उतना ही थोडा है। ये चारों राक्षस प्रथम उन चारों देवियों को निकाल देते हैं जब अभिमान राक्षस मस्तिष्क में पैठता है तब शरम विदा हो जाती है और वक्षस्थल में जब भय राक्षस घुसता है तब नम्रता देवी चली जाती है। चक्षु में जब लोभ राक्षस घुसता है तब हिम्मत नष्ट हो जाती है और उदर में जब क्रोध राक्षस पैठता है तब विचारना शक्ति कार्य करने की शक्ति भी चली जाती है और अनेक पापिष्ट अनर्थ कर बैठते हैं।

सारांश कि, नम्रता देवी समस्त विश्व को वश करने की सामर्थ्य रखती है, यह विनय के नाम से पहिचानी जाती है। विनय यह धर्म का मूल है। विनय के बिना सब सद्गुण शोभा नहीं देते। दशवैकालिक सूत्र में कहा है कि—

गाथा :—विणओ जिण सासणो मूला। विणओ निव्वाण साहगो ॥
विणओ विप्पमुक्कस । कओ धम्मो कओ तवो ॥ १ ॥
मूलाओखधो पभवोदुमस । खंधा उपच्छा समुविन्तिसाहा ॥
साहा पसाहाविरुहंति पत्ता । तउसेपुप्फंच फलं रसोय ॥२॥

अर्थात् :—विनय करना यह जैन धर्म का मूल है तथा विनय से मोक्ष पद का आराधन भी हो सकता है। जिन्होंने विनय का त्याग कर दिया है उनके सामने धर्म क्या है ? और तप क्या है ? ज्यों वृक्ष के प्रथम मूल पीछे शाखा निकलती है और फिर शाखा में से छोटी शाखा तथा छोटी टहनियां निकलती है और पश्चात् पत्ते फलफूल लगते हैं और फूल में रस प्राप्त होता है इसी तरह मोक्ष आराधन करने के लिये विनय यह धर्मरूप वृक्ष का उत्तम मूल है लोक प्रसिद्ध कहावत है कि "विनय वैरी को भी वश कर लेता है, हुआ अपराध माफ करा लेते हैं, नमा वह सबने गमा।" इतना अवश्य है कि कोई भी पदार्थ बिना नमे प्राप्त नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ —जब स्त्रियां कुए पर पानी भरने जाती है और कुए में घड़ा डाल पानी भरने के लिये रस्सी हिलाती है तब नमती है कारण कि जब तक घड़ा झुका कर देखा न करेगी तबतक उसमें पानी न भर सकेगा। इसलिये उस घड़े को नमा उसमें पानी भरती हैं। भरा जाने पश्चात् स्त्री को भी वह घड़ा बाहर लेने के लिये नमना पड़ता है, कारण कि चारों होकर खींचने से वह घड़ा बाहर निकलता है तथा जब अपन शाकभाजी इत्यादि कोई चीज बाहर लेने जाते हैं वहां भी लेने वाले तराजू का पलड़ा झुका हुआ हो तब लेना अच्छा लगता है। गोबर इत्यादि कुछ भी उठाना हो तो जमीन पर से उठाने के लिये झुकना ही पड़ेगा। खड़े २ कोई भी पदार्थ हाथ में न आ सकेगा। इस तरह जब सांसारिक पदार्थ ही नमने से प्राप्त होते हैं तो मोक्षसुख की प्राप्ति के लिये नम्रता की आवश्यकता क्या न होगी ? नम्रता यही महा मंत्र है। यही वशीकरण है। देव भी कुपित हुए हों तो नमने से कोप त्याग देते हैं। महात्मा भी कारणवशात् क्रुद्ध हो गये हों तो नम्रता धारण करने से उनका भी क्रोध शांत हो जाता है इसलिये उत्तम पद प्राप्त करने के अर्थ सज्जनों को नम्रता धारण करना ही चाहिये। नम्रता में अनेक गुण गर्भित हैं। कहा है कि —

दोहाः—लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर।
कीडी सकर स्वाद ले, कुंजर के मुख धूर ॥

इसलिये प्रभुपद लघुता से प्राप्त होता है, परन्तु प्रभुता से नहीं। सज्जन पुरुष ज्यों २ लक्ष्मी प्राप्त करते जाते हैं त्यों २ नम्रता लघुता गरीबाई धारण करते जाते हैं, जिससे वे हमेशा गरीब ही गिनाते हैं तथा हलके मनुष्य जो कदाचित् सौभाग्य से पैसा प्राप्त कर लेते हैं तो अभिमान से तन जाते हैं। उदाहरणार्थ –एक गाव का गरीब नाई बम्बई जैसे शहर में जा हजार रुपये कमा लाया जिससे वह अपने प्राचीन झोपडे में रह आनन्द से घी शक्कर जीमता था।

एक समय उसे अभिमान आया और विचार किया कि, अच्छा मैं रोज दूध, घी, चावल, शक्कर खाता हू इसकी लोगों को कैसे खबर होसक्ती है ? वे तो विचारे जानते होंगे कि यह जुआर की गाव खाता होगा इसलिये अपनी खूराक लोगों को दिखाने के लिये एक दिन वह थाली में दूध चावल शक्कर लेकर अपनी झोपडी में दियासलाई लगाकर एकदम भपका हो ऐसी जगह रख जीमता २ बाहर आकर बडे जोर से चिल्लाने लगा कि, दौडियो दौडियो मेरे घर में आग लग गई। यह सुन गाव के लोग एकदम दौड आये और घर में आग लगने का कारण पूछने लगे तब वह बोला कि भाई! यह दूध चावल और शक्कर मैं जीमता था तो एकदम घर में भपका हुआ ऐसा कह उसने लोगा को थाली दिखाई। लोगों ने कहा, कि अब तेरे दूध चावल देख लिये परन्तु हे मूर्खाभिमानी! अब उसे बुझा तो सही। फिर सबने मिलकर उस घर की आग बुझाई और उस नाई के अभिमान की हसी करते २ सब अपने २ घर गए। देखो! अभिमानी के क्या लक्षण हैं।

साराश यह है कि, नीच मनुष्यों के पास थोडा भी पैसा आजाता है कि वे जल्द ही अभिमानी बन जाते हैं और उद्धताई में तनाते जाते हैं उनके मन में नम्रता तो एक अंश भी नहीं रहती वे बिलकुल बेढगे हो जाते हैं। कहा है कि :—

नमन्ति शालिनो वृक्षा। न नमन्ति गुणिनो नरा।
मूर्खाश्च शुष्क काष्ठाश्च। न नमन्ति कदाचन् ॥

अर्थात् :—आम्र वृक्ष तथा गुणी मनुष्य हमेशा नमते हैं परन्तु मूर्ख मनुष्य और सूखे लकड़ कभी नहीं नमते कारण कि जो नीच पात्र होते हैं वे अभिमान में मस्त हो अकड़ जाते हैं इसलिये उत्तम पुरुषों को हमेशा नम्रता रखनी चाहिये। इस संसार में आम्रवृक्ष ज्यों २ फलीभूत होते जाते हैं ज्यों २ आम आते जाते हैं वैसे २ वे अधिक २ नमते जाते हैं। इसी तरह उत्तम पुरुषों को भी ज्यों२ लक्ष्मी प्राप्त होती जाती है त्यों २ अधिक नम्रता आती जाती हैं। स्वभाव से ही शान्त रहते हैं वे सब के साथ निरभिमानी बन सरलभाव से व्यवहार करते और महान गुणों के स्वामी कहलाते हैं। वे पुरुष दूसरों के गुणानुवाद करने में ही अपनी उन्नति समझते हैं। कहा है कि —

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान्गुणान्ख्यापयन्तः ।
स्वार्थान्संपादयन्तो विततपृथुतरारम्भयत्नाः परार्थे ।
क्षान्त्यैवाऽऽक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्जनान्दूषयन्तः ॥
सन्तः साश्चर्यचर्याजगति बहुमताः कस्यनोऽभ्यर्चनीया ॥

अर्थात्:—सत्पुरुष नम्रता से उन्नति पाते हैं (नमने से अन्य कोई उच्च नहीं बन सके परन्तु सच्चे मनुष्य तो नमने से ही उच्च बनते हैं अर्थात् श्रेष्ठ गिने जाते हैं यही उनकी आश्चर्यकारक घटना है) सत्पुरुष दूसरों के गुणानुवाद से अपने गुण प्रसिद्ध करते हैं (परोपकार के लिये बड़े यत्न से काम प्रारम्भ करते हैं और अपना कार्य सिद्ध करते हैं) और तिरस्कृत कठोर वाणी वाले दुर्जनों को वे क्षमा से भी दोष मुक्त कर देते हैं। आश्चर्यकारक व्यवहार और अत्यन्त माननीय पुरुष किसके पूज्य नहीं हो सकते ? अर्थात् वे सबके पूज्य हैं और सबके मान पाने योग्य हैं।

गरीब लोग देखने में गरीब दिखते हैं परन्तु उनका घमंड सातवें आसमान पर बैठता है। लक्ष्मीवान देखने में धनवान दिखते हैं परन्तु वे सब के साथ नम्रता से व्यवहार करते और अपनी दीनता दिखाते हैं इसलिये उन्हें गरीब कहे हैं और धनवान अगर मान में मस्त हो जाते हैं तो उन्हें ,तवंगर कहे है। कहावत है कि " **कमज़ोर और गुस्सा बहुत** " अर्थात् शक्ति तो कम है परन्तु अभिमान का पार ही नहीं। इस पर एक दृष्टान्त कहते हैं।

गुरु, शिष्य, कठियारा और राजा की उपदेशप्रद कथा.

किसी जंगल में एक झोंपड़ी बना कर गुरु शिष्य रहते थे वे स्वयं सार्थी फक्कड़ थे। एक समय समीप के तालाब में कठियारा लोग जंगल से लक्कड़ की भारी ले वहां विश्रांति लेने बैठे। उन्होंने भारियां तो जमीन पर डालदी और हाथ पांव धोने के लिये तालाब की पाळ पर आकर बैठे। उस समय उस झोंपड़ी में बैठे हुए चेले को इन लोगों की दीन अवस्था देखकर दया आई और गुरु से बोला कि, हे कृपालु गुरुवर ! आहाहा ! देखो तो ये किनारे लोग कितनी गरीब स्थिति में है ? जिनके सिर पर गज हो नगा है, शरीर पर वस्त्र भी अत्यंत जीर्ण और फटे हुए हैं इसलिये हे कृपालु ! मुझे तो ये लोग अत्यंत गरीब जच रहे हैं और इनकी स्थिति से दयालु पुरुषों का अवश्य दया उत्पन्न हो जाती है। यह सब बात हृदय से सुनकर गुरु ने उत्तर दिया कि —

ओहो शिष्य ! नहीं २ ये लोग बड़े मालदार है, जो तुम्हें इसका विश्वास न हो तो जाओ उनकी लकड़ी की भारियों में से एक लकड़ी लाओ यह सुन चेला अपना विश्वास दृढ़ करने के लिये वहां जा शुद्ध हृदय से भारियों में से एक २ लक्कड़ खींचने लगा। उस समय सब कठियारे तालाब के सामने मुँह कर हाथ पांव धोने के कार्य में लग रहे थे इसलिये चेला जी का यह कृत्य उन्हें ज्ञात न हुआ परन्तु इतने में एक कठियारे की दृष्टि अचानक उन पर पड़ी वह सब को चिताने के लिये एकदम चिल्ला कर बोला कि अहो ! दोड़ो ! तो उधर देखो यह योगी अपनी भारियां तोड़ रहा है यह सुन सब एकदम उधर दौड़ पड़े और क्रोध से धमधमायमान हो चेले को मारने लगे। चेला तो भयभीत बन गया। उसने कहा देखो भाई ! हमारे गुरु ने कहा है कि, जिसलिये हम लकड़ियां इकट्ठी कर रहे हैं परन्तु वे तो क्रोधित हो बोले, कि जान दे गुरुवाले ! देखे तेरे गुरु ! यहां क्या तेरे बाप का रक्खा है तो लेजाता है। हमें लाने में कितना श्रम उठाना पड़ा है, कुछ मुफ्त में मिले हैं क्या ? ऐसा कह वे फिर खूब मारने लगे। चेला तो एकदम घबरा गया और लकड़ियां वहीं छोड़ और गुरु के पास जाकर कहने लगा कि महाराज मुझे बचाओ !! बचाओ !!! ये मुझे मारते हैं ये तो बहुत घमंडी हैं इन्होंने मुझे बहुत पीटा और कठोर गालियां भी दीं तब गुरु ने कहा कि तुमतो मुझसे कहते थे कि ये बहुत गरीब हैं। तब चेले ने कहा हां मैंने कहा था परन्तु मेरे कहने में गलती हो गई। आप का

कहा सच है ये कठियारे गरीब नहीं परन्तु बहुत धनवान हैं या घमंडी हैं। हमने प्रत्यक्ष प्रमाण से आंखों से देख लिये।

फिर थोड़ी देर बाद एक दूसरा दृश्य दृष्टिगत हुआ कि एक बड़े शहर का राजा वहां आया जिसके आगे पीछे वंदीजन बिरुदावली पुकार रहे थे और चार भोई लोग जिसकी सुखपाल उठाये चलते थे। जिसकी सवारी धीरे २ उस झोंपड़ी से कुछ ही दूर अपने गाव की ओर चली जारही थी।

यह दृश्य देख गुरु से चेला कहने लगा, आहा हा! कैसा धनवान है! देखो तो महाराज! जिसके आगे पीछे सिपाही लोग दौड़ रहे हैं भोई लोग जिसकी पालकी उठाये हैं इसलिये वह बहुत धनवान आदमी नजर आता है। यह सुन गुरु ने कहा कि नहीं रे चेला! यह तो बहुत गरीब आदमी है। चेले ने कहा नहीं तो महाराज! देखो तो! कैसे समारंभ के साथ सवारी जारही है। यह गरीब कैसे होसकता है? तब गुरुजी ने कहा, देखो बचा! यह तो बहुत गरीब है। इसका तुम्हें विश्वास न हो तो तुम वहां जाओ। वहां जाकर उस पालकी का डंडा पकड़ खड़े रहना। तब शिष्य ने कहा देखो महाराज! आप हुक्म फरमाते हो इसलिये मैं जाता हूं परन्तु उन कठियारों की मार मैं न भूला हूं। तब गुरु जी ने कहा, ये नहीं मारेंगे तुम बेधड़क से जाओ यह आदमी तो बहुत गरीब और अच्छा है।

तब चेला एकदम वहां जोश से गया और पालकी का पाया पकड़ खड़ा रहा ये भोई लोग उसका तिरस्कार कर पालकी छुड़ाने लगे जिससे पालकी ऊंची नीची होने लगी। यह देख अन्दर बैठे हुए महाराज बोले कि यह कौन है? और पालकी क्यों ऊंची नीची होती है। यह सुन भोई लोग बोले, साहेब! यह एक योगी आपकी पालकी का पाया पकड़ खड़ा है। महाराज योगी का नाम सुनते ही पालकी का परदा उठा कर तुरन्त नीचे उतर हाथ जोड़ नम्रतापूर्वक बोले कि, क्यों योगी महाराज! आपको क्या कुछ चाहिये? आपने पालकी का पाया क्यों पकड़ा है? योगी ने कहा बच्चा हमें तो कुछ भी मालूम नहीं है। हमारे गुरु ने कहा है। तब राजा बोले, चलिये! आपके गुरु कहां हैं? ऐसा कह गुरु के समीप शिष्य के साथ राजा चल गए और गुरु को देखते ही हाथ जोड़ दंडवत् प्रणाम कर सविनय बोले कि गुरु जी! आपको क्या चाहता है? कुछ खाने पीने की जरूरत है? यहां छोटा सा बंगला आपके रहने के लिये बनादूं?

अथवा और कोई मेरे योग्य कामकाज होतो कृपा करके फरमाइये। यह आपका दास बराबर हुक्म उठावेगा। आप जैसे महात्माओं की सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है।

तब गुरु बोले :—महाराजाधिराज! हमें कुछ भी चाह नहीं है। तुम्हारे गांव के सती सेवकों द्वारा रोटी पानी मिलता है वह सब तुम्हारा है। बगला भी हम नहीं चाहते। हम व्यर्थ बला में क्यों पड़ें? आपकी इस जमीन में मढ़ैया बनाकर जंगल में मंगल मनाते रहते हैं और आपको दुआ देते हैं कि आप हमेशा खुशीआनंद में रहें और प्रजा की अच्छी तरह प्रतिपालना कर उनकी आशीष लें। साधु संत की सेवा भक्ति करें और गरीबों को दान देकर सुखी करें और आप भी सदा सुखी रहें। यही हमारी सदा और सर्वदा आपके लिये आशीष है।

ऐसे कोमल मनोहर और आशीर्वाद के नम्र वचनामृत सुन राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़ सविनय साष्टांग प्रणाम कर अपने स्थान पर गया। यह स्वयं दृश्य आंखों से देख आश्चर्य चकित हो चेला सहर्ष बोला कि गुरु जी! आहा हा! ये महाराज कैसे भक्तिवान और मायालु हैं? तब गुरु बोले, नहीं चेला, यह तो बड़ा धनवान है तू कहता था? तब शिष्य बोला हां, गुरुजी, मैंने ऐसा अवश्य कहा था परन्तु मैं भूल गया। आपका कहना सच है तब गुरुजी ने कहा —बच्चा जो बड़े भागवान आदमी होते हैं उन्हें गर्व नहीं होता है और जो गरीब लोग होते हैं वे थोड़े पैसों से बड़े अभिमानी बन जाते हैं इसलिये उन्हें शास्त्र में महा धनवान आदमी कहा है उनका मान में, मगरूरी में ही समस्त जीवन व्यतीत होता है।

इस दृष्टांत का सार यह है कि जो भाग्यशाली मनुष्य हैं वे लक्ष्मी प्राप्त करते २ अत्यंत नम्र सरल हो सबके साथ गरीबना का व्यवहार करते रहते हैं। लक्ष्मी को शास्त्र में सुरी और पैसे को आसुरी सम्पति कहा है। लक्ष्मी देवीरूप है वह उच्च विचार और उच्च कार्य ही करती है तब पैसा नीच विचार और नीच कार्य ही कराता है। कहावत है कि "पैसा बड़ा पाप" मतलब यह कि पाप की राह बतलाने वाली आसुरी सम्पत्ति है इसलिये हमेशा लक्ष्मी प्राप्त कर नम्रता धारण करनी चाहिये परंतु गर्व शृंग पर चढ़ उद्धता न करनी चाहिये। इस मतलब का एक श्लोक श्री भर्तृहरी शतक में भी कहा है.

शालिनी वृत छंद।

भवति नम्रास्तरव फलोद्गमैर्नवा वुभिर्भूरी विलम्बिनो घनाः ॥
अनुद्धता सत्पुरुषा समृद्धिभि । स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥

अर्थात:—फल आने से वृक्ष नम जाते हे। नये जल से मेघ नम जाते हैं। इसी तरह समृद्धि से सत्पुरुष नम जाते हैं अर्थात् वे सबके साथ नम्रता का व्यवहार और भले काम कर सब जगह भलाई लेते हैं। परोपकारियों का ऐसा ही स्वभाव हे। इसलिये उत्तम पुरुषों को लक्ष्मी प्राप्त होकर नम्र होना चाहिये परन्तु उद्धताई धारण नहीं करनी चाहिये। नम्रता और सरलता मही उत्तमता है।

(पाद पूर्ति)

भव्यानराः ! स्याद्यदि मोक्षकांक्षा।
गुरोरवश्यं शरणं व्रजन्तु ॥
गुरुं विना मोक्षकांक्षा वृथेव।
सिंदूर विंदुर्विधवा ललाटे ॥२६॥

अर्थ:—हे भव्य पुरुषो ! तुम्हें मोक्ष सुख प्राप्त करने की इच्छा हो तो प्रथम सद्गुरु की शरण में जाओ, कारण कि गुरु बिना मोक्ष सुख की अभिलाषा रखना वृथा है। ज्यों विधवा स्त्री के माथे में किया हुआ कंकू का तिलक शोभा नहीं देता और वह व्यर्थ समझा जाता है और उलटी निंदा होती है उसी तरह बिना गुरु के मोक्ष की आकांक्षा भी वृथा है।

भावार्थ:—हे भव्य पुरुषो ! जो तुम्हें सचमुच मोक्ष ही की आकांक्षा (चाह) हो तो प्रथम सद्गुरु की सेवना करो कारण कि बिना गुरु के मोक्ष की अभिलाषा करना व्यर्थ है। केवल निरर्थक ही वैसे है। जैसे कि विधवा स्त्री के माथे में हिंगुल का तिलक वृथा और निरर्थक है इसी तरह बिना गुरु के मोक्ष की इच्छा निरर्थक है। गुरु एक भवसागर तिरने का मुख्य साधन है। अन्धेरे में

भूले हुए जीव को ज्यों दीपक की खास जरूरत है वैसे ही इस भवसागर में इधर उधर घूमते भूले भमते भटकते इस विकल जीव को सद्गुरु दीपक के समान ही सच्चे आधारभूत है। कहा है कि—

दोहा—गुरु दीवो गुरु देवता, गुरु विना घोर अंधार।
जे गुरु अन्तर भेटिया, ते न पड्या संसार ॥१॥
समदृष्टि शीतल सदा अद्भूत जांकी चाल।
सुन्दर ऐसा गुरु कीजिये, तो पल में करे निहाल॥
विघन हरण मंगल करण, सुखदाता गुरुराय।
भाव धरीने भेटतां, दुःखदारिद्र दूर जाय ॥३॥

हमेशा शरण उत्तम पुरुषों का ही लिया जाता है परन्तु जो गरीब होता है वह धनवानों का आश्रय ढूंढ़ता है और यही रिवाज भी है परन्तु श्रीमत कभी गरीबों का सहारा नहीं ढूंढते उसी तरह सद्गुरु हमेशा शरण लेने योग्य है कारण कि वे ज्ञान क्षमा, दया, संतोष, सत्य और शील इत्यादि सद्गुणों से अलकृत होने से श्रीमत हैं। अपन अज्ञानरूपी अन्धेरे में घिरे हुए होने से गरीब भिक्षुक के समान है इसलिये सत्पुरुषों का समागम कर उनकी शरण लेनी चाहिये। दुनिया में सब वस्तुऐं मिलना सरल हैं परन्तु सत्संगति अर्थात् उत्तम पुरुषों का समागम पाना कठिन है। पूरे सद्भाग्योदय विना सद्गुरु का समागम कभी होता ही नहीं। इसके लिये श्रीसुन्दरदास जी ने कहा है कि—

इन्द्रविजय छंद.

तात मिले पुनि मात मिले, सुत भ्रात मिले युवती सुखदाई,
राज मिले गजराज मिले, सब साज मिले मनवांछित पाई;
लोक मिले सुरलोक मिले, विधिलोक मिले वैकुंठ को जाई,
सुन्दर और मिले सब ही, सुख संतसमागम दुर्लभ भाई.

सारांश कि, ऐसे सत्पुरुषों का समागम अत्यन्त ही दुर्लभ है। महान् भाग्योदय से ऐसा योग मिलता है। दुनिया में जितने बाबा, साधु, सन्यासी, योगी, यती, फकीर इत्यादि भेषधारी और त्यागी हैं वे सब गुरु सत्संग करने योग्य नहीं। उत्तम पुरुष तो कचित् ही सद्भाग्य से मिलते हैं। सब पर्वतों से कुछ हीरे माणिक रत्नों की खान नहीं निकलती। कहा है कि —

दृश्यन्ते भुवि भूरि निम्बतरवः कुत्रापि ते चन्दनाः।
पाषाणैः परिपूरिता वसुमती वज्रो मणिर्दुर्लभः॥
श्रूयन्ते करटारवाश्च सततं चैत्रे कुहूकूजितं।
तन्मन्ये खलसंकुलं जगदिदं द्वित्राः क्वचित्सज्जनाः॥
शैले शैले न माणिक्यं। मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने॥

अर्थात्—इस पृथ्वी पर नीम के, बबूल के वृक्ष तो खूब दृष्टिगत होते हैं परन्तु चन्दन तो कहीं ही नजर आता है इसी तरह पत्थर पाषाण तो सब जगह नजर आता है परन्तु वज्रमणि तो कहीं ही दृष्टिगत होता है तथा तीतर चील, होला, परेवा इत्यादि के शब्द तो जहां तहां सुनाई देते हैं परन्तु कोयल की मधुर कुहुक तो वसंतऋतु में ही सुनाई देती है इसी तरह दुर्जन मनुष्य तो तमाम पृथ्वी पर भरे हैं परन्तु सत्पुरुष तो कहीं विरले ही दिखते हैं। इसी तरह सद्गुरु भी विरले ही सुभागी नरों को प्राप्त होते हैं।

जहां देखें वहां धर्म का ढोंग रच बैठे हुए विषय के कीच में डूबे हुए क्रोधादि कषाय से भरपूर, मोह के गाढ बन्धन से और अनेक दोषों से भरपूर, स्त्री आदि के कुसंग में भ्रष्ट हो कलंकित बने हुए और अनेक प्रकार के गांजा तम्बाकू इत्यादि व्यसन वाले, चिलमों के फूंकने वाले और फुंकाने वाले अज्ञान रूपी अंधेरे में आत्म कर्त्तव्य से विमुख बने हुए दुराचार और दुर्गुण के भण्डार स्वरूप ऐसे कितने ही नामधारी साधु और त्यागी घरबारी होने पर भी धर्मगुरु के नाम से पहिचाने जाते हैं वे सब आशा के ही भिखारी हैं। अपनी आत्मा का ही वे बिगाड़ देते हैं और शरणागत दूसरों को विरुद्ध रस्ता दिखा अवनति के मार्ग पर लगा देते हैं। चर्पटपञ्जरी ग्रन्थ में कहा है कि —

जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः। काषायाम्बर बहुकृतवेशः॥
पश्यन्नपि न च पश्यति लोकः। उदरनिमित्तं बहुकृतशोक॥

अग्नेवहि पृष्ठ भानु । रात्रौ चिनुकसमर्पित जानु ।
करतल भिक्षा तस्तलवासस्तदपि न मुचत्याशापाशम् ॥

अर्थात्—कितने ही जटाधारी सन्यासी तथा केशों को लाच करने वाले साधु कोई पीले या श्वेत भिन्न २ वस्त्र पहिनते हैं परन्तु वे सब पेट के लिये पाखण्ड रचते हैं। कितने ही हाथ में रख भिक्षा लाते हैं। पचधुनी तापते हैं, रात को भी कुछ न ओढ कर सोजाते हैं। वृक्षों के नीचे निवास करते हैं, इत्यादि अनेक विकट सकट सदा सहते हैं तो भी आशा रूपी मोह से उनका छुटकारा नही हुआ है। हृदय में कचन और कामिनी की चाह लगी हुई है आखें होते भी लोकस्थिति नहीं देख रहे हैं जो अपने ही कर्मों से अनेक प्रकार के बधनों से—मोहमाया में बधते हैं वे विचारे दूसरों को क्या छुडा सकते हैं ? वे क्या ज्ञान बोध देसके हैं ?

दोहा—गुरुगुरु नाम धरावे, गुरुने घरे ढांढाने ढोर ;
पछी एना ए वलावा, ने एना ए चोर.

ससारी पुरुष भी घरबार खेतीवाडी स्त्रीपुत्र धनधान्यादिक रखते हैं और साधु भी घरबार दुकान हवेली खेती वाडी स्त्री, धन धान्य इत्यादि रखते हैं तो फिर ससारी से साधुओं में क्या विशेषता है ? इसलिये ऐसे भेषधारी की माया के शिकार होने से तो आत्मा का तनिक भी श्रेय न होगा परन्तु उलटी आत्मा को ऐसे गुरु अवनति में ही ढकेल देंगे। कहा है कि —

दोहा—गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेलें दाव ;
दोनु बिचारे डूब गये, बैठ के पत्थर नाव.

कवित.

जपतप करत, धरत व्रत जत सत् ,
मन वच क्रम भ्रम कस सहत तन.

वल्कल वसन, अशन फलपत्र जल,
कसत रसन रस, तजत वसत वन;
जरत मरत नर, गरत परत सर,
कहत लहत हय, गजदल बलधन;
पचत पचत भव, भयन डरत शठ,
घटघट प्रगट रहत, न लखत जन.

यह आत्मा अनादिकाल से चार गति में परिभ्रमण कर रही है इसका कारण यही है कि, इसे अबतक सद्गुरु का संयोग न मिला।

दोहा—सद्गुरु के शरण विना, भमियो काल अनंत;
भवसागर भय टालवा, शोधो शाणो संत.

ज्यों कोई पुरुष कैसा ही तिरैया हो परन्तु महासागर तिरने के लिये तो उसे भी जहाज की ही आवश्यकता होती है परन्तु तिराने वाला मुख्य साधन रूप नाव छिद्र वाला हो तो किनारे तक पहुचने की स्वप्न में भी आशा रखना भूल है। वह तो अधबीच में ही डूबकर समुद्र तल में जा बैठेगा और पैसेंजरों के प्राण लेलेगा इसलिये छिद्र वाले जहाज में बैठना ही न चाहिये।

इसी तरह इस आत्मा को भव समुद्र तिराने वाले मुख्य साधन रूप साधु संत का शरण है परन्तु वे स्वयं ही मोहसागर में लीन हो तो आशा नदी में रमते हो, स्त्री आदिक के विषय में अनुरक्त हो कामभोग रूपी चिकने कीच में फस रहते हों, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, ईर्षा, क्लेश, इत्यादि दुर्गुणों के भंडार हो, सदाचार के शत्रु और दुराचार के मित्र हो, आशा के दास हों, विषय के भिखारी हो, ऐसे कुगुरुओं के पल्ले पड़ आत्मा को जोखम में न डालना चाहिये। जो शान्ति देते हैं वे ही संत हैं। चोर से बचनेके लिये रास्ते में साथी होते हैं परन्तु वह पलायन हो राह में लूट ले तो ऐसे साथी से अकेले जाना ही श्रेष्ठ है इसलिये सद्गुरु को ढूंढ कर उनका सेवा करनी चाहिये उन सद्गुरु के लक्षण यह है।

कवित्त—तरणतारण गुरु, तारे भव पार ए;
पांचे इंद्री संवरत, नव विधि ब्रह्मवृत;
सुमति गुपति सार, माता जयकार ए,
ऐसे गुन गुरु होय षट काय पाले शोय;
गौतम उपम जोय, मुक्तिदातार ए,
भणे मुनि बालचंद, सुन हो भविकवृन्द;
तरणतारण गुरु, तारे भव पार ए,

ऐसे उत्तम पुरुष अपना कल्याण क्यों नहीं कर सक्ते है ? सचमुच ऐसे पुरुषों के दर्शन मात्र से ही अपने सब पाप नष्ट होजाते है तो सच्चे अन्तःकरण से उनका शरण लेने में बेडा पार होजाय तो इसमें क्या आश्चर्य है। सुन्दरदास जी ने भी उत्तम साधुओं के लक्षण बताते हुए साफ कहा है कि —

इन्द्रविजय छंद.

कोउक निंदत कोउक वंदत, कोउक देत ही आई जु भक्षण।
कोउक आय लगावत चन्दन, कोउक डारत धूली ततक्षण॥
कोउक कहे यह मूरख दीसत कोउक कहे यह आही विचक्षण।
सुन्दर काहूसो राग न द्वेष न, यह सब जाणिये साधु के लक्षण॥

ऐसे उत्तम गुणा से युक्त गुरु की शरण लेने से भवसागर का डर मिट जाता है परन्तु कुगुरु ना विषैले सर्प, बाघ और तालपुट विष से भी अधिक खराब हैं कारण ये तीन तो एक समय प्राण लेते हैं परन्तु धर्म गुरु के नाम से पहिचाने जाते धर्म धूर्त भेषधारी कुगुरु तो अज्ञानी भोले भक्तों को मोह पास में फसा उलटी राह दिखाते हैं और भवभ्रमण में भटकाते हैं जिससे दया हीन, विषयी, लम्पटी, कुगुरु से तो साप, बाघ, और विषही बहुत अच्छे हैं। इसलिए हे विवेकी बधुओं ! ऐसे दुराचारी, पाखंडी, दंभी को मोहजाल में

समर्थ सद्गुरु का शरण ग्रहण करना। ये सद्गुरु इस आत्मा का अनादिकाल का अज्ञान रूपी मैल उतार देंगे और उलटे राह से अनुकूल राह दिखायेंगे। अब सद्गुरु का शरण कैसा सुखदाई है और भयंकर भवसमुद्र से इस आत्मा का वे किस तरह उद्धार करते हैं इस पर हास्यजनक परन्तु सुबोधक एक भोले भील का दृष्टान्त यहां है।

सत्संग महिमा विषे साधु और भोले भील का दृष्टांत.

कोई एक साधु महात्मा विहार कर दूसरे गांव जाते थे। रास्ते में उन्हों ने एक आश्चर्य देखा कि, एक भोला भील वृक्ष पर चढ़ एक डाल काट रहा था, वह उलटा बैठा था जिससे डाल के कट जाने पर वह स्वयं ही नीचे गिर जाने वाला था, यह देख महात्मा जी को प्रथम तो उसकी अज्ञानता पर हंसी आई, पीछे दया लाकर उसके सामने देखकर बोले कि हे भाई! यह तू क्या करता है? तू उलटा बैठ डाल काट रहा है तो डाल कट जाने पर स्वयं तू भी नीचे गिर पड़ेगा। तुझे दुःख होगा? यह सुन वह भील एकदम क्रोधित होकर बोला अरे पागल भिखमंगे साधुड़ा! तुझे किसने पूछा है। अब चला जा यहां से, तू चतुर है सो मैं जानता हूं। तुझे किसने बुलाया था? मैं गिरूंगा तो मैं मरूंगा इस में तेरे बाप का क्या बिगड़ता है। तू बड़ा भगवानभगवान बनकर आया है सो मैं गिरूंगा यह तूने जान लिया? इसलिये तू चला जा व्यर्थ बक २ मत कर मुफ्त में मगज मत पचा, जो हमने अच्छा समझ रक्खा है वह कर रहे हैं, हम तुझ से चतुर ही हैं।

यह सुन महात्मा जी विशेष हंसे, परन्तु उनके वचनों से बुरा न माने मन में बोले कि :"—उपदेशोहि मूर्खाणां प्रकोपाय न शांतये" इस वाक्य को मन में ला चलते बने। भील डाल काटने लगा, डाल कटी कि आप और डाल दोनों नीचे गिर पड़े। भील को बहुत लगा परन्तु उसे कुछ न गिन वह विचार करने लगा कि, वह कहता था वही सच हुआ। जगत में भगवान २ लोग जपते हैं वे आज भगवान साक्षात् मिल गए उन भगवान के पांव धोकर जाय तो मेरा अवश्य भला हो जाय और कोटी कोटी कल्याण हो, उन्होंने मेरे गिरने की बात जान ली थी इसलिये उन के पास जाऊं।

परन्तु उन्हें तो मैंने गाली दी थी और भगवान को तो सब ही शोभते हैं इसलिये चलूं तो मैं उनके पास जाऊं, ऐसा सोच वह एकदम दौडा और दूर से चिल्लाने लगा कि, हे भगवान! खडे रहो! खडे रहो! महात्मा जी समझ गये कि, इसे स्वयं अनुभव हो गया है। भाई साहब पडे होंगे इसलिये दौडे हैं। फिर खडे रहे इतने में भील एकदम दौडा आया और पांव में पड कर बोला कि, मेरे प्रभु! आप सच्चे हो मा बाप! आप त्रिकालज्ञ भगवान ज्ञान होते हो मेरी भूल माफ करियो हम तो आपके बालबच्चे हैं परन्तु अब मुझे भी आप जैसा भगवान बनाओ। आप चेला और मैं गुरू ऐसा करो। प्रभु मैं रोज आपकी भक्ति करूंगा और जैसा कहोगे वैसा करूंगा। साधु उसके भोले वचन और निष्कपट प्रेम पर हंस कर बोले कि भाई! ऐसा नहीं कहना चाहिये। तू तो चेला बनने योग्य है इसलिये प्रथम चेला हो फिर गुरू बन।

तब वह भोला भील बोला—नहीं मुझे तो अपना गुरू ही बनाओ, मैं जैसी आप कहोगे वैसी सेवा भक्ति जरूर करूंगा इसलिये मुझे अपना गुरू करो पश्चात् गुरुजी को उसके भोलापन पर विशेष हंसी आई परन्तु आंतरिक इच्छा शुद्ध और सच्ची समझी। मैं इसको आगे जाकर सुधार अच्छी लाइन पर ले आऊंगा ऐसा सोच उसकी तीव्र इच्छा देख उसे साधु का भेष पहनाया फिर वे आगे चले। राह में साधु को हितशिक्षा देते हुए कहा कि देख भाई! अब तू गुरू हो गया तुझे गुरू ही बनना था। तब वह कहने लगा हां महाराज! अब मैं गुरु हो गया। अब आप कहोगे वैसा करूंगा। तब महात्मा जी ने कहा आज अपन बने गांव में चलेंगे वहां राजादि अपने पास पडे तो उस समय 'जी" के सिवाय कुछ मत बोलना चुपचाप रहना कारण कि **विभूषणं मौनम पंडितानाम्** अर्थात्—अनपढ़ो को, मूर्खों को तो चुप रहना ही भूषण है इसलिये तुझसे कोई बोले तो भी तू "जी" के सिवाय कुछ मत बोलना।

इतने में गांव आया और यथास्थान उतर गये। उस गांव का राजा धर्मिष्ट और भक्तिवान् था उसे खबर होते ही वह नमस्कार करने आया। नये साधु ने पहिले सिखाये मुजिब "जी" शब्द ही कहा। राजा जी ने महात्माजी का उपदेश सुना। सुनने पर गुरु जी से पूछा कि, ये साधु क्या पढ़े हैं? तब महात्मा जी ने सोचा कि, राजा को सच कहेंगे तो वह समझेगा कि ऐसे मूर्ख

भगवद् का वह हूं से पकड़ लावें ? इसलिये कहा कि, ये बड़े हैं। बहुत विद्वान हैं और मौन गुणधारी हैं, किसी से कुछ नहीं बोलते, उपदेश नहीं देते। ऐसे स्तुत्य वचन सुन राजा की नये साधु पर विशेष प्रीति उत्पन्न होगई और हर्षपूर्वक गुरु सहित उनके पास आ प्रेमपूर्वक नमस्कार की और कहने लगे कि, हे गुणगंभीर विद्वान महात्माजी ! मुझे तो कुछ आपके भी मुख की वाणी सुनाओ। कृपा कर कुछ उपदेश दीजिये ऐसा कहने पर भी वह मौनसाधु कुछ न बोला। थोड़ा ही बाद उस रास्ते से एक बकरियों का झुंड निकला वह देख उस मूर्ख से न रहा गया और रास्ते में दी हुई शिक्षा भूल गया जिससे राजा के सामने ही बकरियों के झुंड की ओर देख वह अपने हमेशा के स्वभावानुसार बोला कि

“**तक तक तक फररररर फुऊं**” यह विचित्र वाक्य सुन हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ राजा विस्मय पाया। गुरु भी समझ गए कि इसको बोलने की मनाही कर दी थी इसने बोल कर सब बिगाड़ दिया। इससे राजा को सन्देह न हो इसलिये राजा को अपने पास बुलाकर कहा कि हे महाराजा ! आपके अहोभाग्य हैं कि, ये किसी से न बोलते आज आप पर कृपादृष्टि कर इतना बोले, तब राजा कहने लगा कि ये क्या बोले ? महाराज मैं तो कुछ नहीं समझा, तब गुरु ने कहा, ये विद्वान महात्मा कभी अचानक बोलते हैं तो गूढ वाणी में सूत्र रूप बोलते हैं इसलिये आज भी तुम पर कृपा कर महा गंभीर अर्थ का सूत्र ही उच्चारण किया है उसका अर्थ मैं तुम से कहता हूं वह एकाग्र हो ध्यान देकर सुनो।

इन महात्मा ने जो गंभीर सूत्र उच्चारण किया है उसमें अपूर्व उपदेश निकलता है वे कहते हैं कि “तक तक तक” यह अमूल्य तक जाती हैं, जाती है। सचमुच यह मनुष्य जन्म अमूल्य तक है। भाई ! इसी में खेलने का अवसर है। पुण्य योग से सब सामग्री अनुकूल तुम्हें प्राप्त हुई हैं, इसमें तनिक भी आलस्य करोगे तो बहुत हानि उठाओगे, फिर आगे कुछ भी न बन सकेगा। कहा है कि

इन्द्रविजय छंद.

इंद्रिय सर्व अखंडित छे तन साव निरोगी अने बल पुरुं,
बुद्धि विचार विवेक सहायक साधन अन्य न कोई अधुरुं;

ईश्वरनो उपकार गयो विसरी वलमां सुख सांपड़े शानुं ?
केशव आलस आज करो पण पाछलथी नहि कांई थवानुं.
उठ अरे अभिमान तजी कर उद्यम केम रह्यो कर जोड़ी,
वेश घणा धरवा तुझने पण पाछल रात रही बहु थोड़ी.
सुन्दर आ तन ते क्षणभंगुर भाई ! अचानक छे पडवानुं,
केशव आलस आजकरो पण पाछलथी नहि कांई थवानुं.

इसलिये हे राजा ! इन्हो ने इस सूत्र से थोड़े में अपनों को बहुत अधिक उपदेश दिया है कि "चेत, चेत" नहीं तो इस पृथ्वी पर आगे तू भी अनेकों राजा की तरह "फररररर फुऊ" होजायगा अर्थात् वायु में तृण की तरह कहीं उड़ जायगा।

दोहा—मात पिता खेलता, राता माता भूप,
जाता जोया जमपुरे, माता विनाना भूप ;

इसलिये हे राजा जी ! इस अमूल्य अवसर पर चित्त को सावधान कर दानपुण्य कर लाभ लीजिये, साधु संतों को संतुष्ट कीजिये। यही इन महात्मा के एक सूत्र का उपदेश है।

यह अर्थ सुन राजा जी बहुत खुश हुए और उन अल्पभाषी महात्माओं के अन्य उपदेश सुनने की जिज्ञासा बतलाते हुए कहा तबतो मैं इन महात्माओं से अन्य भी बहुत से सूत्र सुनूंगा। गुरू ने सोचा कि इस एक वाक्य को तो सुधार कर अनुकूल अर्थ लगाया और जो कुछ दूसरा उलटासुलटा बक देगा तो फिर विचार करना पड़ेगा। ऐसा सोच राजा जी से कहा कि हे राजाजी ! अब ये फिर नहीं बोलेंगे, यह तो आपके सद्भाग्य से एक समय बोल गए। पश्चात राजा जी नमस्कार कर अपने घर गये।

गुरु शिष्य भी दूसरे दिन वहां से विहार कर गये। फिर धीरे २ उसे सुभाग तो एक दो वर्ष में वह सीधी राह पर आगया और "मुझे गुरु बनाओ" इस अज्ञानता के वाक्य की और अपनी भूल की माफी मागने लगा तथा गुरु के किये हुये उपकार को नम्रतापूर्वक अत्यन्त प्रसन्नता के साथ बहुत २ स्तुति करने लगा।

(गुरु स्तुति राग गीत)

उपकारी गुरु म्हारा, धर्म सारथी अधम उद्धरनारा,
भाग्या भवन भारा, पतितने पावन हो करनारा.
नोधारा आधारा, कर्मरिपुदलना हो दलनारा,
वंदु चरण तुमारा, पड़ता मुझ मनका हो आधारा.
सद्गुणका भंडारा, समकिती का साचा शणगारा,
अनंग का हरनारा, विशुद्ध शियल का हो धरनारा.
सदानन्द देनारा, फेली फंद में नहि फंसनारा,
ऐसा गुरुवर मारा, विनय मुनि वंदे गुरु सुखकारा.

हे गुरुजी! आपने तो मुझ पर अत्यन्त कृपा कर मुझ अधम को उद्धार कर दिया। दुर्गति में गिरते मुझे दया लाकर बचा लिया।

दोहा—सुन्दर सद्गुरु जगत में, पर उपकारी होय;
नीच ऊंच सब उद्धरे, शरणे ज्यों आवे कोय.

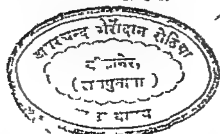
आपने मेरी अनादिकाल की भवभ्रमण मिटा कल्याण का मार्ग दिखाया। आप मेरे निष्काम परम उपकारी हैं, इत्यादि स्तुति करता उसकी अपूर्व भाव से भक्ति करने लगा और निज आत्मा का सुधार कर सद्गति पाया।

इस दृष्टान्त का सार यह है कि, अनादिकाल से यह आत्मा मूढ़ भटक

रही है। इसका सद्गुरु सन्मार्ग दिखा उद्धार कर देते है इसलिये अन्य कपटी, कामी, क्रोधी, लुच्चे, लालची इत्यादि कुगुरुओं के फंदे मे न फस सद्गुरु का शरण लेओ। यही इस उत्तम मानव जीवन पाने का परम सार है. बाकी तो सब मोह मायाजाल मिथ्या और क्षणभंगुर है।



इति श्री वैराग्य-शतकं-प्रथम-भागे-पूर्वार्धं-भागः



सर्वमान्य, सर्वप्रिय, सर्वोपयोगी, वैराग्य धर्मग्रन्थ

श्री वैराग्य शतक

अर्थ, भावार्थ, दृष्टान्त सहित

प्रथम भाग-(पूर्वार्ध)

लेखक—

कविराज पूज्य श्री उमेदचन्द जी महाराज के शिष्य

मुनि श्री विनयचन्द जी महाराज.

अनुवादक तथा प्रकाशक—

वाडीलाल एस. शाह.

ठे० नोघरा, किनारी बाजार, देहली

मूल्य मात्र

गयादत्त शर्मा के प्रबन्ध से गयादत्त प्रेस बड़ा दरीबा देहली में मुद्रित।

श्रीमान् सेठ केसरीमलजी साहब गुगलिया

का

आदर्श चरित्र

श्री भर्तृहरि जी नीति शतक में कहते हैं —

वाञ्छा सज्जन संगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम ॥
भक्ति:शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिःखलेष्वेते
येषु वसंति निर्मल गुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥

एक हिन्दी कवि इस श्लोक का भावान्तर इस प्रकार करते हैं —

जानें पर के गुण सदा महत् पुरुष का संग।
विद्या और निज भार्जा तिन में मन को रंग ॥
तिन में मन को रंग भक्ति प्रभु की दृढ़ राखें।
गुरु आज्ञा में नम्र रहें खल संग न भाखें ॥
ब्रह्म ज्ञान चित्त माहि दमन इन्द्रिय सुख मानें।
लाज याद को शक पुण्य ते नृप सम जानें ॥

संसार में जन्म उसी का सार्थक है जो "गुणि गण गणना" के समय स्मरण किया जाय। असंख्य प्राणी जन्मते हैं और फिर काल के गाल में समा जाते हैं। कुछ दिन बाद संसारी जन उनको इस प्रकार भूल जाते हैं मानो वे कभी पृथ्वी पर पैदा ही नहीं हुए थे। यदि किसी की छाप संसार के वक्षस्थल पर चिरस्थाई रहती है तो केवल उन्हीं सुजन जनों की जिन्होंने परोपकार कर लोकर आदर्श चरित्र का उदाहरण जनता के सामने रखा है। ऐसे लोगों के लिए

हों कहा गया है कि " नास्ति तेषा यश काये जरा मरणजं भयम् " उनके सुयश रूपी शरीर को जरा मरण का भय बिल्कुल नहीं रहा। उनके चरण चिन्हों पर चलकर अनेक भूले भटके सुमार्ग पर आते हैं। घामक के श्रीमान केसरीमलजी साहब गुगलिया हमारे चरित नायक भी ऐसे ही महानुभावों में से एक हैं। आप का चरित्र आदर्श चरित और विद्या व्यसन विश्व विख्यात है। शुभ कार्यों में मुक्त हस्त होकर आप दान वीरता का परिचय देते हैं।

सेठ जी का जन्म सम्वत् १६४७ में एक साधारण गृहस्थ के घर हुआ था आप के पिताश्री का नाम सेठ मगनीरामजी था। पर पर्व जन्मार्जित पुन्य प्रताप से आप बाल्यकाल में ही घामक के श्रीमान सेठ गम्भीरमलजी बख्तावरमल जी साहब ने आप को गोद ले लिया और इस प्रकार आप अतुल धन धान्य के मालिक हुए।

शिक्षा दीक्षा.

आपका लालन पालन बहुत अच्छी तरह किया गया पर शिक्षा के विचार से यह नहीं कहा जा सकता कि वह यथोचित रूप में मिली है। फिर भी आप विद्याप्रेमी महानुभाव हैं और साहित्य सेवियों का सर्वदा प्रसन्नतापूर्वक सत्कार करते हैं। यदि शिक्षा केवल विश्व विद्यालय की डिग्री प्राप्त करने का नाम हो तब तो दूसरी बात है, पर यदि शिक्षा आत्म सुधार और चरित्रोत्कर्ष सम्पादन से कुछ भी सम्बंध रखती है तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारे चरित नायक श्रीमान सेठ केसरीमलजी साहब गुगलिया किसीसे भी पीछे नहीं हैं आप का स्वभाव विनयशील है, विद्याप्रचार और ज्ञानप्रसार के शुभ कार्यों में आप सदैव यथेष्ठ भाग लेते हैं। पुस्तक प्रकाशकों को इकट्ठी पुस्तकें खरीद कर उत्साहित करते हैं। आप के द्वार पर जाकर विद्याप्रचारक कभी हतोत्साह होकर नहीं फिरेगा। यही वे गुण हैं जिन्हों ने आप को लोकप्रिय बना दिया है।

पारिवारिक जीवन.

सेठ जी का पारिवारिक जीवन सब प्रकार से आनन्दवर्धक है। प्रायः देखा जाता है कि जिनके घर धन धान्य की कमी नहीं होती वहां पारिवारिक जीवन में किसी न किसी प्रकार की कटुता होती है। किसी के घर धन नहीं है, कोई

धनवान हैं। पारिवारिक सुख होते हुए भी एक धन के लिये रोता है, दूसरा धन होते हुए भी पारिवारिक सुख के लिये तरसता है। यह विधना की विडम्बना समझिये या इसे किसी दूसरे नाम से पुकारिये। पर संसार में ऐसे ही उदाहरण आपको प्रचुर परिमाण में मिलेंगे। ऐसे बहुत कम पुण्य शील निकलेंगे जिन्हें दोनों सुख प्राप्त हैं।

सेठ केसरीमलजी महोदय का पहिला विवाह सम्वत् १९६१ वि० में हुआ था। आपकी भार्या, जामनेर वाले श्री० सेठ लक्ष्मीचन्द्र रामचन्द्र जी की सुपुत्री थीं। पर दैवदुर्विपाक से यह सम्बन्ध स्थाई प्रमाणित न हुआ। थोडे दिन पश्चात् ही आप को पत्नि वियोग से दुःखित होना पडा। ९ वर्ष के भीतर ही अर्थात् सम्वत् १९७० वि० में इनका देहावसान हो गया। जब द्वितीय विवाह का प्रसंग आया तो आपने केवल इस शर्त पर विवाह करना स्वीकार किया कन्या को विवाह से पहिले देखने का अवसर दिया जाय। मारवाडी समाज में यह बिल्कुल नई बात थी और कोई होता तो समाज के भय से इस प्रकार की बात मुंह से भी नहीं निकालता पर आपने अपूर्व दृढता का परिचय दिया। इस नवीन रीति से मारवाडी समाज में उथलपुथल मच गई, पर इन से भी आप के संकल्प पर कोई प्रभाव नहीं पडा। फलतः आपका द्वितीय विवाह सुखकर प्रमाणित हुआ। पत्नि पति में स्वर्गीय प्रेम की छटा दिखाई देने लगी। यदि सेठ जी चाहते तो बडे २ घरानों की कन्यायें आपके साथ विवाह सम्बंध स्थापना के लिये मौजूद थीं, पर आपको बडा घर नहीं देखना था, आप जिस चीज की खोज में थे वह "कुल" से भी ऊंची चीज है। अन्ततः आपने एक सामान्य घराने में उत्पन्न सुशीला कन्या का पाणिग्रहण किया। इस प्रकार विवाह सम्बंध होने के कारण पतिपत्नी में सदैव सद्भाव स्थापित रहा। पत्नी-पति के स्वभाव के अनुरूप ही मिली।

आपकी दृढता और आपका यह स्वजाति में चलती हुई कुरीतियों का सुधारने का उत्साह और प्रेम सर्वथा सराहनीय है। मारवाडी समाज के युवकों को इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

यह दूसरा विवाह भी, दैवदुर्विपाक से सम्वत् १९७९ तक ही रह सका। तीसरा विवाह इसी सम्वत् में वैसाख सुदी २ को भोजरवाले एक साधारण गृहस्थ श्रीयुत सेठ छगनीमलजी के यहां होगया। आप की इन सहधर्मिणी का नाम सौ० सज्जन कुंवरि है।

अब तक आप के चार सन्तानें हुईं। पहिली स्त्री से दो लड़कियाँ थी और दूसरी से दो पुत्र रत्न। दैवयोग से इस समय केवल एक लड़का जीवित है जिसकी अवस्था ५ वर्ष की है। परमात्मा इसको दीर्घायु प्रदान करें।

दीनबन्धुत्व और दानशीलता

आपके स्वभाव में आश्रय प्रदान मानो पूर्ण रूपेण दैवत हो चुका है। असहायों को सहारा देने में आपको बड़ी प्रसन्नता होती है प्राय सब पेशे वाले आपसे आश्रय पाते रहते हैं। आपको पहिले कुश्ती और सर्कस का बड़ा शौक था। इसके लिये आप ने पहलवान, घोड़े और नोकर चाकर रख छोड़े हैं। आपने एक गवैयो भी मुलाजिम रख लिया है जो फुर्सत के समय आपको जो बहलाने में होशियार है। पर जब से आपके बड़े लड़के का देहान्त हुआ है तब से इन मनोरञ्जन के कार्यों से भी आपका विराग हो गया है। एक प्रकार से यह कार्य स्वयं से ही घटे है।

आप स्थानकवासी जैन है, पर दान देते समय आप इस सकुचित परिधि से बाहर निकल जाते है। स्थानकवासी जैनों की सस्थायें भी आपकी दानशीलता से फलती फूलती है और मूर्तिपूजक समाज को भी आप की सहायता से वञ्चित नहीं रहना पड़ता। इन कार्यों से आप कभी आगा पीछा नहीं करते। आप तीन ब्राह्मण कन्याओं का अपनी जेब से विवाह कर चुके है। गवैये और पहलवान के विवाह भी आपने अपने खर्च से करवा दिये। सहायता तो थोड़ी बहुत अनेक लोगों को प्राप्त होती रहती है। आपकी दानशीलता किसी सम्प्रदाय तक बन्धी हुई नहीं है। यह बात नीचे दी हुई सूची से पाठकों को भली भांति विदित हो जायगी।

दान सूची

३१०००) जैन फंड में

१५०००) अमरावती के मुकद्दमे में

(यह मुकद्दमा स्थानकवासी मुनि कुन्दनमल जी महाराज पर अमरावती निवासी फतेराजजी फलोदिया ने चलाया था)

५०००) खानदेश संस्था में
११००) जामनेर संस्था में
३०००) जलगाव की पिंजरापोल में, धर्मशाला में, बालाजी के मंदिर में
२०००) जमनालाल स्कूल वर्धा
१०००) भादक तीर्थ में मंदिर आदि निर्माण के लिए
५०१) पंचगाज नासिक
१००) मारवाडी हितकारक में
४०००) अन्यान्य स्कूल आदि ज्ञानप्रचारक संस्थाओं के लिये

इसके अतिरिक्त युद्ध में वीर गति प्राप्त और हताहत सैनिकों तथा उनके सम्बंधियों की सहायता के लिये खोले गये फंड में एक चांदी का पानदान खरीद कर ११००) रु० आपने दिये थे।

सार्वजनिक कार्य.

आपके विचार बहुत ही उच्च है। आप सार्वजनिक कार्यों में भी भाग लेते रहते हैं। वक्तृत्व शक्ति आपकी वीरोचित है और सदैव निर्भय होकर स्पष्टोक्ति के लिये आप प्रसिद्ध है। आपको जाति का बडा ख्याल रहता है। यह आप ही का दम था कि अमरावती के मुकदमे में १५ हजार खर्च करके और तन मन धन लगाकर स्थानकवासी जैनों की लाज रख ली है। अपने देश मारवाड से आने वालों की आप खूब खातिर करते हैं। चाहे गरीब या मालदार, ओसवाल हो या किसी अन्य जाति वाला—माहेश्वरी, अग्रवाल, जाट, सुनार और कुम्हार आदि चाहे कोई हो आप उसका अवश्य सत्कार करेंगे। यदि कोई रोजगार की तलाश में जाता है तो प्रयत्न करके उसे अवश्य ठीले से लगा देते है। सरकार ने आपके शुभकार्यों और स्वभाव से प्रसन्न होकर आप को धामनगाव का आनरेरी मजिस्ट्रेट पद प्रदान किया है।

उपसंहार.

आपके सरल स्वभाव, उज्वल चरित्र, वन्दनीय वदान्यता, दीनबन्धुत्व, स्वजाति स्नेह और विद्यानुराग के सम्बन्ध में जितना भी लिखा जाय थोडा है हम यहा केवल परिचय मात्र देकर ही मौनावलम्बन करेंगे। आपको लगभग

पचास लाख की आसामी बताया जाता है। दश हजार मासिक से कम घर का खर्च नहीं है, इस पर भी युवावस्था है। सांसारिक प्रलोभनों के पूर्णरूप से समुपस्थित होते हुए भी जो महामना, धीर, विनम्र, सचरित्र, विद्यानुरागी, स्वजाति हितैषी और दीनबन्धु बना हुआ है क्या उसका विमल चरित्र प्रातः स्मरणीय नहीं है ?

हमें आशा है कि आगे चलकर आप और भी अधिकाधिक परिमाण में धार्मिक कार्यों में योग देंगे और पुण्यबल से प्राप्त लक्ष्मी का सदुपयोग कर नवयुवकों के आगे आदर्श रखेंगे और पुण्य के भागी होंगे। यही हमारी भावना है और यही कामना ! तथास्तु।

धर्मबन्धु :—

वाडीलाल एस. शाह.

देहली